वर्ष 38, अंक-6, नवंबर-दिसंबर, 2015

गगनांचल

साहित्य कला एवं संस्कृति का संगम

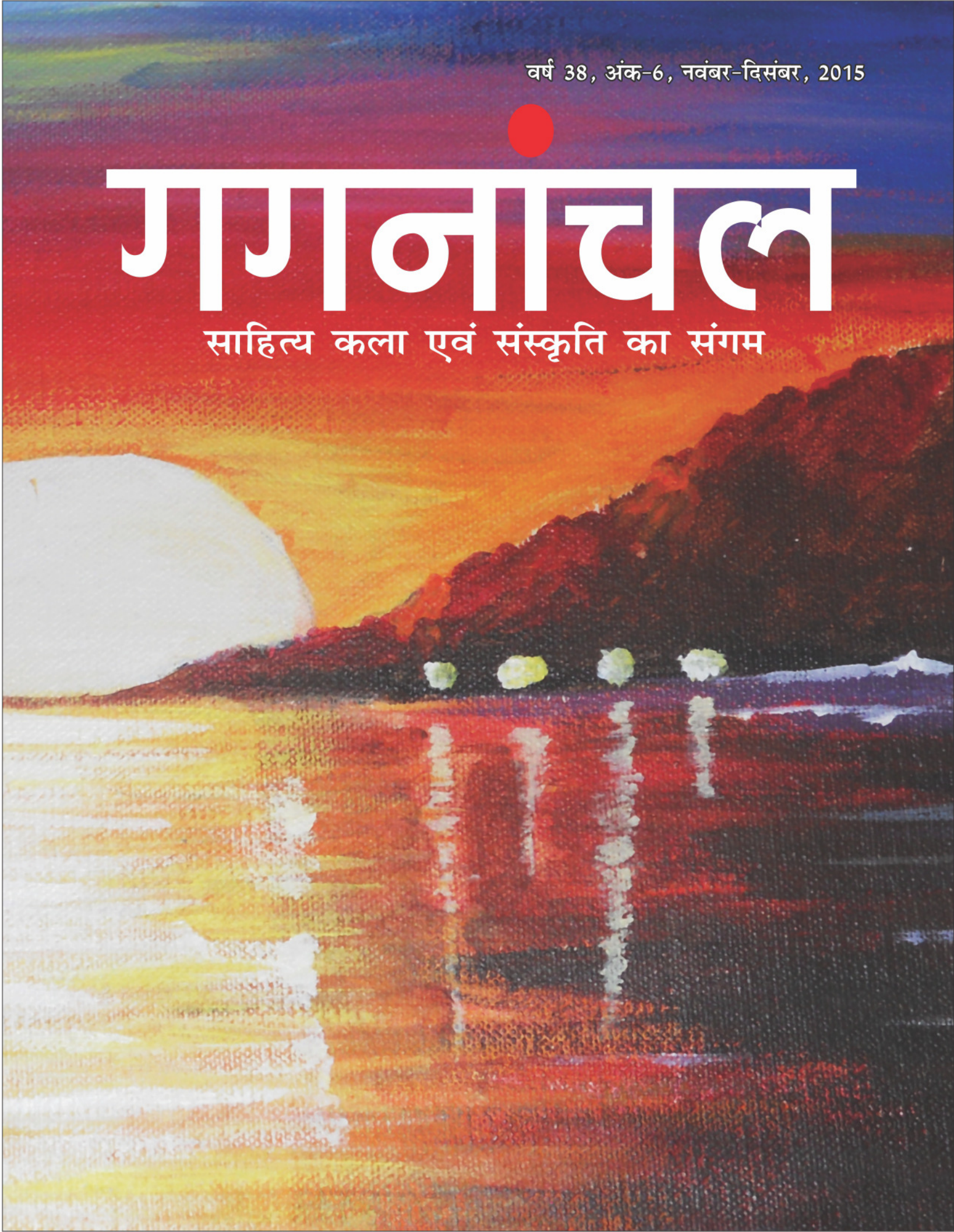

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् की स्थापना, सन् 1950 में स्वतंत्र भारत के प्रथम शिक्षा मंत्री मौलाना अबुल कलाम आज़ाद द्वारा की गई थी। तब से अब तक, हम भारत में लोकतंत्र का दृढ़ीकरण, न्यायसंगत सामाजिक व्यवस्था की स्थापना, अर्थव्यवस्था का तीव्र विकास, महिलाओं का सशक्तीकरण, विश्व-स्तरीय शैक्षणिक संस्थाओं का सृजन और वैज्ञानिक परम्पराओं का पुनरुज्जीवन देख चुके हैं। भारत की पांच सहस्त्राब्दि पुरानी संस्कृति का नवजागरण, पुनः स्थापना एवं नवीनीकरण हो रहा है, जिसका आभास हमें भारतीय भाषाओं की सक्रिय प्रोन्नति, प्रगति एवं प्रयोग में और सिनेमा के व्यापक प्रभाव में मिलता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, विकास के इन आयामों से समन्वय रखते हुए, समकालीन भारत के साथ कदम से कदम मिला कर चल रही है।

पिछले पांच दशक, भारत के लम्बे इतिहास में, कला के दृष्टिकोण से सर्वाधिक उत्साहवर्द्धक रहे हैं। भारतीय साहित्य, संगीत व नृत्य, चित्रकला, मूर्तिकला व शिल्प और नाट्यकला तथा फिल्म, प्रत्येक में अभूतपूर्व सृजन हो रहा है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, परंपरागत के साथ-साथ समकालीन प्रयोगों को भी लगातार बढ़ावा दे रही है। साथ ही, भारत की सांस्कृतिक पहचान-शास्त्रीय व लोक कलाओं को विशेष सम्मान दिया जाता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् सहभागिता व भाईचारे की संस्कृति की संवाहक है, व अन्य राष्ट्रों के साथ सृजनात्मक संवाद स्थापित करती है। विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करने के लिए परिषद् ने अंतरराष्ट्रीय मंच पर भारतीय संस्कृति की समृद्धि एवं विविधता को प्रदर्शित करने का प्रयास किया है।

भारत और सहयोगी राष्ट्रों के बीच सांस्कृतिक व बौद्धिक आदान-प्रदान का अग्रणी प्रायोजक होना, परिषद् के लिए गौरव का विषय है। परिषद् का यह संकल्प है कि आने वाले वर्षों में भारत के गौरवशाली सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक आंदोलन को बढ़ावा दिया जाए।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् मुख्यालय

अध्यक्ष	:	23378616 23370698
महानिदेशक	:	23378103 23370471
उप-महानिदेशक (एन.के.)	:	23370228
प्रशासन अनुभाग	:	23370834
अनुरक्षण अनुभाग	:	23378849
वित्त एवं लेखा अनुभाग	:	23370227
भारतीय सांस्कृतिक केन्द्र अनुभाग	:	23370633
अंतर्राष्ट्रीय विद्यार्थी प्रभाग-1 अंतर्राष्ट्रीय विद्यार्थी प्रभाग-2	:	23370391
अंतर्राष्ट्रीय विद्यार्थी (अफगान)	:	23379371
हिंदी अनुभाग	:	23379309-10 एक्स. 3388, 3347

गगनांचल

नवंबर-दिसंबर, 2015

प्रकाशक

सी. राजशेखर
महानिदेशक
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्
नई दिल्ली

संपादक

नम्रता कुमार
उप-महानिदेशक

ISSN : 0971-1430

संपादकीय पता

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्
आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट
नई दिल्ली-110002
ई-मेल : ddgnk.iccr@nic.in

गगनांचल अब इंटरनेट पर भी उपलब्ध है। **www.iccr.gov.in/journals/hindi-journals** पर क्लिक करें।

गगनांचल में प्रकाशित लेखादि पर प्रकाशक का कॉपीराइट है किंतु पुनर्मुद्रण के लिए आग्रह प्राप्त होने पर अनुज्ञा दी जा सकती है। अतः प्रकाशक की पूर्वानुमति के बिना कोई भी लेखादि पुनर्मुद्रित न किया जाए। गगनांचल में व्यक्त विचार संबद्ध लेखकों के होते हैं और आवश्यक रूप से परिषद् की नीति को प्रकट नहीं करते।

शुल्क दर

वार्षिक	:	₹	500
		यू.एस. $	100
त्रैवार्षिक	:	₹	1200
		यू.एस. $	250

उपर्युक्त शुल्क-दर का अग्रिम भुगतान 'भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली' को देय बैंक ड्राफ्ट/मनीऑर्डर द्वारा किया जाना श्रेयस्कर है।

मुद्रक : सीता फाईन आर्ट्स प्रा. लि.
नई दिल्ली-110028
www.sitafinearts.com

विषय-सूची

हमारे अभिलेखागार से
बीते वर्षों के दौरान भा.सां.सं.प. की गतिविधियों की एक झलक 5

लेख

विश्व-प्रवासी भारतवंशी जिप्सी-रोमा बनजारा 9
डॉ. केशव फालके

हिंदी साहित्य पर छायावाद की छाया 15
सुरेश सक्सेना

संपूर्ण वैभव की स्वामिनी : श्रीलक्ष्मी 19
प्रो. योगेश चंद्र शर्मा

वाचिक परंपरा में रावत नाच के दोहे 22
डॉ. राजन यादव

जानकीवल्लभ शास्त्री का संस्मरणात्मक-साहित्यिक विश्लेषण 26
सीताराम पांडेय

भक्ति की तुलसी दृष्टि : भवभीति, अनुरक्ति और मुक्ति 31
प्रो. गिरीश्वर मिश्र

पर्यटन और इतिहास का रोमांच : मांडू 37
ललित शर्मा

खड़ीबोली के पुरोधा : अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध 43
राजेंद्र परदेसी

पुस्तक संस्कृति पर गहराता संकट 46
गंगा प्रसाद विमल

आधुनिक तेलुगु गद्य-साहित्य एवं गद्य साहित्यकार 51
प्रो. के. लीलावती

तुलसी के हनुमत्-विग्रहों का काशी के सामाजिक जीवन में महत्व 54
डॉ. उदय प्रताप सिंह

जीवन सौंदर्य के युगधर्मी कवि ठाकुर 59
डॉ. ओम प्रकाश भटनागर

अवधी लोकगीतों में नारी संवेदना 63
डॉ. अरुण कुमार वर्मा

कहानी

गिफ्ट 66
क्षमा शर्मा

पता-ना-पता के बीच 71
जयंती रंगनाथन

नजराना-ए-उल्फत 78
सुनीति रावत

तीसरा 84
मूल : प्रेमकुमार हरियब्बे
अनुवाद : डी.एन. श्रीनाथ

कविता/गीत/गजल/दोहे/नवगीत

लगा हुआ दरबार 90
प्रा. प्रेमचंद सोनवाने

धूप खिलने वाली है/दिलों में फासले बढ़ते रहे/
बच गया ईमान 90
डॉ. ब्रह्मजीत गौतम

जानवर/बाल श्रमिक/भूकंपों!/भीतर का इनसान/
सांप/मृत्यु 91
हरीलाल 'मिलन'

जलने लगे अलाव/बेटी एक : रूप अनेक 92
चक्रधर शुक्ल

हम भरोसे के तलबगार रहे/
टूटते रिश्तों को मेरे नाम कर दे/
नाम तेरा लिख दिया है... 93
अनिरुद्ध सिन्हा

सदियों से वह भाग रही है/धोखा देना इनकी
फितरत नहीं 93
डॉ. राजीव गुप्ता

मूक पेड़ों की टहनियां/वैशाली एक्सप्रेस 94
रणविजय राव

प्रकाशक की ओर से

आज के इस बाजारवादी युग में मनुष्य ने विकास के कई प्रतिमानों को भले ही छुआ हो लेकिन मानवीय संबंधों की डोर इसमें कहीं पीछे छूट गई है। इसलिए सब कुछ होते हुए भी वह जीवन में रिक्तता अनुभव करता है। अकेलेपन का यह अहसास मनुष्य में अवसाद और निराशा की स्थिति ला देता है।

ऐसी विषम परिस्थितियों से निकलने के लिए वह अपने अतीत में झांकने का प्रयास करता है कि शायद कोई ऐसा रास्ता मिले जो उसे और समाज दोनों को ही इन परिस्थितियों से बाहर निकाल सके। हमारा यह सौभाग्य है कि हमारा अतीत इतना वैभवशाली रहा है कि वह वर्तमान युग को भी जीवन की विषमताओं एवं समस्याओं से लड़ने की प्रेरणा देता है।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् की द्विमासिक पत्रिका 'गगनांचल' के इस अंक में हमने भारत की उन प्राचीन धरोहरों एवं सांस्कृतिक विरासत से पाठकों को रूबरू करवाने की कोशिश की है क्योंकि अतीत एवं वर्तमान के समन्वय से ही हम एक खुशहाल भविष्य की कल्पना कर सकते हैं।

हर बार की तरह पत्रिका के संबंध में आपके रचनात्मक सुझावों एवं प्रतिक्रियाओं की हमें प्रतीक्षा रहेगी।

सभी पाठकों को नव वर्ष की हार्दिक शुभकामनाएं।

(सी. राजशेखर)
महानिदेशक

संपादक की ओर से

भारतीय संस्कृति मनुष्य को निरंतर गतिमान रहने की प्रेरणा देती है क्योंकि जीवन में ठहराव व्यक्ति की वैचारिक सोच और शारीरिक क्षमता को कुंद करता है और समाज में नवीन विचारों के प्रस्फुरण को रोकता है।

आज विश्व वैश्विक आतंकवाद, धार्मिक कट्टरता और संकुचित सोच की समस्या से ग्रस्त है। लोगों में अविश्वास की भावना इतनी बढ़ गई है कि समाज में परस्पर सद्भाव समाप्त होता जा रहा है। ऐसी विषमपूर्ण परिस्थितियों में अगर हम अपने अतीत में झांकने का प्रयास करें तो न केवल इन समस्याओं से निकलने का मार्ग मिलेगा बल्कि अपनी उदात्त संस्कृति से परिचित होने का मौका भी मिलेगा।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् की द्विमासिक पत्रिका 'गगनांचल' के इस अंक में हमने अतीत के इन्हीं पृष्ठों को सहेजने का प्रयास किया है, जो वर्तमान युग में भी हमारी वैचारिक सोच को एक नई दिशा देने का कार्य कर सकते हैं।

आशा है हमारा यह प्रयास हमारे पाठकों की कसौटियों पर खरा उतरेगा।

(नम्रता कुमार)
उप-महानिदेशक
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

हमारे अभिलेखागार से

बीते वर्षों के दौरान भा.सां.सं.प. की गतिविधियों की एक झलक

नेपाली कला एवं शिल्प प्रदर्शनी के दौरान भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. एस. राधाकृष्णन, 29 अगस्त, 1963

कुमारी मारग्रेट केन्याता (केन्या), दिसंबर 1963–जनवरी 1964

मध्य एशिया से संबंधित सम्मेलन का उद्घाटन, 11 फरवरी, 1969

''चेकोस्लोवाकिया के 50 वर्ष'' संबंधी प्रदर्शनी, 20 मार्च, 1969

आस्ट्रेलियाई और भारतीय साहित्य संबंधी सेमिनार, 12-16 जनवरी, 1970

जापान के संगीतकारों एवं नर्तकों के एक दल के सम्मान में स्वागत समारोह, 25 जनवरी, 1972

चेक ग्लास और सिरेमिक प्रदर्शनी, 27 अक्तूबर - 2 नवंबर, 1971

विश्व-प्रवासी भारतवंशी जिप्सी-रोमा बनजारा

डॉ. केशव फालके

जनसंपर्क अधिकारी के पद से सेवानिवृत्त डॉ. केशव फालके वर्तमान में संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार की फैलोशिप 'बनजारा समाज और संस्कृति' पर अध्ययनरत हैं। साथ ही विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में स्वतंत्र लेखन।

सर्वप्रथम 'बनजारा' शब्द की व्युत्पत्ति पर विचार प्रसंगोचित है। एंथोवेन संस्कृत के 'वन' (जंगल) और 'चर' (चलना-चरना) शब्दों से 'वनचर' अर्थात् वन-वन चरने वाला अथवा चलने वाला रूप के समर्थक हैं। उनके अनुसार 'वनचर' ही आगे बनजारा बन गया। लोक में प्रचलित एक छंद भी इसी आशय का द्योतक है–

''बनजारा बन में फिरे लिए लकड़िया हाथ,
टांडा वहां लड़ गया कोई संगी नहीं साथ''

एंथोवेन ही आगे पंजाबी के 'बनज' या 'वनज' शब्दों से वाणिज्य या व्यापार करने वाले व्यापारी शब्द का उद्‌भव मानते हैं। आर.सी. टेंपल भी इसी अर्थ का समर्थन करते हैं। कुछ ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर भी 'बनजारा' एक व्यापारी जाति ही मानी जाती है। महाराष्ट्र के विदर्भ क्षेत्र में लभाण, लभाणी, लम्हाणी समाज हैं, जो 'लवण' (नमक) का व्यापार करता था। श्री एल.के. अनंतकृष्ण अय्यर ने भी संस्कृत के वाणिज्य से ही लभाण, लभाणी या लम्हाणी अर्थात् बैलों की पीठ पर गोनियों (बड़े थैलों) में नमक लादकर व्यापार करने वाले को ही 'बनजारा' और व्यापारी जाति का माना है। कर्नाटक में भी बनजारा को 'लम्बाणी' कहा जाता है। इस आधार पर कहा जा सकता है कि जीवनावश्यक वस्तुओं, अनाज अथवा नमक का व्यापार करने वाली जाति ही 'बनजारा' कही जाती रही है। सरल शब्दों में यही कि एक जगह से दूसरी जगह चल-चल कर, घूम-घूम कर खरीद-फरोख्त करने वाली व्यापारी जाति ही बनजारा है। व्यापार हेतु घूमते रहने के कारण ही यह घुमंतू जाति भी कही गई। डॉ. रामगोपाल सोनी ने भी अनुसंधान के आधार पर बनजारा को व्यापारी जाति ही कहा है, यथा–''समस्त वणजारेणु वृषभजनु पाईला लंगमने''। चौदहवीं शताब्दी के हठयोग-साधना के प्रचार में व्यापारी अर्थ में भी 'बनजारा' शब्द का उल्लेख मिलता है–

''सुरहट घाट अम्हे बणिजार,
सुनि हमारा पसारा,
लेण न जाणों देण न जाणों
एद्धा वणज हमारा''

कुछ लोकगीतों में भी व्यापारी अर्थ में ही बनजारा शब्द का प्रयोग दृष्टव्य है–

''पियवा जे चलेला उत्तर,
बनजरिया कि केई रे छू हें ना,
मोरा उजडल बंगलवा,
कि कई रे छह हैं ना''

(पति उत्तरप्रदेश को वाणिज्य कर्म अर्थात्

व्यापार करने जा रहा है, मेरे उजड़े हुए बंगले की मरम्मत कौन करेगा?) मालवी लोकगीतों में बनजारा अपनी मोट (बड़े प्रमाण में लाया गया माल) के लिए प्रसिद्ध है। 'हल्दी' के नाम से एक गीत की पंक्ति में बनजारा उसकी मोट के साथ वट-वृक्ष के नीचे उतरा है तथा लाड़ले दूल्हे के काका उससे मोल-भाव कर रहे हैं–

''आई बनजारा री मोट उतरी बड़तले,
मोलावे लाड़ला लाड़ा रा काकाजी''

एक राजस्थानी लोकगीत में भी बनजारा शब्द का प्रयोग व्यापारी अर्थ में ही मिलता है–

''बड़ले उतारां ढोला बणजारे री मोट
चोवटे उतारो रे मांजो सौदागिर
जो बणियो रे माहारा राज।
कहे रे बणजारा त्हारी तंबाकू रो मोल (कू)
रुपए री लोंसा रे असल तंबाकू
मालवी रे मांहारा राज।''

बोलचाल-व्यवहार में भी प्रयोग की जाने वाली भाषा में बनजारा शब्द का प्रयोग व्यापारी के अर्थ में ही मिलता है। जैसे–

''सब ठाट पड़ा रह जाएगा,
जब लाद चलेगा बनजारा''

–नजीर अकबराबादी

निष्कर्ष स्वरूप यही है कि व्यापार के उद्देश्य से घूमने वाली जाति ही बनजारा कहलाई। वैसे तो और भी व्यापारी जातियां भारत में घूमती रही हैं परंतु उनमें मुख्यतः बनजारा जाति ही रही है। कुछ विचारक नजीर अकबराबादी की उक्त पंक्तियों को जीवन की क्षणभंगुरता अथवा नश्वरता के लिए भी इसका प्रयोग मानते हैं।

यायावर साहित्य के विशेषज्ञ डॉ. वीर राजेंद्र ऋषि के अनुसार सन् 1192 में विदेशी आक्रमणकारी मुहम्मद गौरी और राजपूत राजा पृथ्वीराज चौहान के बीच हुए लड़ाई के द्वितीय युद्ध में पृथ्वीराज चौहान की पराजय के बाद राजपूत सेना तीन समूहों में विभाजित होकर बिखर गई। एक समूह वहीं पर जंगलों में आदिवासियों के साथ रहने लगा और विदेशी आक्रमणकारियों से बदले की भावना से लड़ता-भिड़ता रहा। डॉ. ऋषि के अनुसार इन्हीं जंगलों-पहाड़ों में रहने वाली आदिवासी जातियों के मेल, संकरन से उत्पन्न लोग ही बनजारा हैं, जो आजीविका के लिए वन-वन घूमते-भटकते रहे और बनजारा कहलाए।

दूसरा समूह जंगलों से निकलकर उत्तर भारत की ओर गया आजीविका की खोज में। और तीसरा समूह उत्तर की ओर ही हरियाणा-पंजाब की ओर से बढ़ता-बढ़ता अंत में खैबर-बोलन दर्रों से अफगानिस्तान-बलुचिस्तान होता हुआ यूरोपीय देशों में देशांतरण कर गया। उसकी इस निरंतर यात्रा में वह और भी आगे रूस, रोमानिया, हंगरी, बल्गारिया, जर्मनी, फ्रांस, नीदरलैंड (हॉलैंड), इंग्लैंड, नार्वे, स्वीडन, डेनमार्क, फिनलैंड होता हुआ अंत में अमेरिका गया। यह समूह रोटी-रोजी और निवास की खोज में दर-दर, देश-देश भटकता-घूमता घुमंतू समूह बन गया। राजपूती रक्त का यही समूह-समाज विभिन्न देशों में जिप्सी और रोमा नामों से जाना-पहचाना जाता रहा। इसे ही मैं विश्व-प्रवासी भारतवंशी बेघर जिप्सी-रोमा कह रहा हूं। बेघर इसलिए कि सदियों की जद्दोजेहद के बाद भी विदेशों में अपना स्थायी निवास नहीं पा सकें सिवाय युगोस्लाविया के जहां उनको नागरिकता भी अब प्रदान की गई है। विश्व में सबसे अधिक रोमा इसी देश में रहते हैं। इनकी भाषा रोमानी कहलाती है। भारत में बनजारों की बोली राजस्थानी की एक शाखा बनजारी बोली है। लालविया के एक फ्रांसीसी जिप्सी अध्येता के अनुसार जिप्सी-रोमा का मूल पंजाब, हरियाणा, दिल्ली और राजस्थान ही है। डॉ. वीर राजेंद्र ऋषि ने भी इसी मत का समर्थन किया है।

आजीविका और स्थायी निवास की खोज में भटकते जिप्सी-रोमा अपना सारा माल-

असबाब घोड़ों अथवा घोड़ा-गाड़ियों में लादकर पालतू पशु-पक्षियों सहित समूह में, जिसे वे कारवां कहते थे एक जगह से दूसरी जगह, एक देश से दूसरे देश में चलते-बढ़ते रहने और संबंधित देशों के स्थानीय प्रतिबंधों के कारण भी अपना स्थायी निवास नहीं बना सकें। कभी-कभी इनका कारवां दो देशों की सीमा पर पड़ाव डालता था जिससे कि एक देश से खदेड़े जाने पर दूसरे देश में घुसने में सुविधा मिल जाए।

भारत में भी आजीविका और स्थायी निवास की खोज में वे कहीं बीच राह में पड़ाव डालते थे। इस सामूहिक पड़ाव को वे तांडा कहते थे। इसी प्रकार का एक तांडा दिल्ली प्रदेश में था जिसे रायसिंह बनजारा का तांडा कहा जाता था। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान इसी तांडे के निवासी बनजारा समाज के लोगों ने अंग्रेजों की दमनकारी सत्ता के विरोध में प्रखर विद्रोही की भूमिका निभायी थी, जिसके फलस्वरूप बदले की भावना से राजपूत मूल के बनजारा लोगों पर अंग्रेजों ने झूठे आरोप लगाकर इन देशभक्तों पर आपराधिक मामले दर्ज करके इनको रायसीना से खदेड़ा था। इस प्रकार खाली जमीन पर ही आज भारत की सत्ता के केंद्र राष्ट्रपति भवन, संसद भवन, प्रधानमंत्री कार्यालय, सर्वोच्च न्यायालय, तीन मूर्ति भवन, नॉर्थ और साउथ एवेन्यू शान से खड़े हैं। इन गरिमापूर्ण भवनों के निर्माता 'इलस्ट्रेटेड वीकली' के संपादक खुशवंत सिंह के पिता सर शोभा सिंह, तत्कालीन प्रख्यात भवन निर्माता थे।

रायसिंह बनजारा के परिवार का ही एक प्रख्यात व्यापारी था लक्खीशाह बनजारा, जो सैकड़ों बैलों की पीठ पर जीवनोपयोगी सामान लादकर काफिले में चलकर देश-

विदेश में व्यापार करता था। लक्खीशाह बनजारा के पराक्रम की एक घटना का वर्णन यहां आवश्यक प्रतीत होता है। धर्म परिवर्तन की मुहिम के अंतर्गत औरंगजेब ने कुछ कश्मीरी पंडितों पर दबाव डाला तब उसके आतंक से भयभीत पंडितों ने सिक्ख संप्रदाय के नौवें गुरु तेगबहादुर के सामने रक्षा के लिए गुहार लगाई। इस आतंक से पंडितों को राहत देने के उद्देश्य से अपने तीन शिष्यों क्रमशः भाई मतिदास, भाई दयाल और भाई सतिदास को लेकर वह दिल्ली की ओर निकले परंतु औरंगजेब के सेनापति नूर मुहम्मद खान मिरजा ने तीनों शिष्यों सहित गुरु तेगबहादुर को रास्ते में ही गिरफ्तार करके दिल्ली ले जाकर कैद में बंद कर दिया। औरंगजेब ने गुरु तेगबहादुर पर धर्म परिवर्तन के लिए दबाव डाला और चेतावनी भी दी किंतु गुरुजी ने उसे ठुकरा दिया। औरंगजेब के आदेश पर पहले शिष्यों को क्रम से मौत के घाट उतारा गया। प्रथम भाई दयाल को उबलते तेल की कढ़ाई में झोंक दिया। दूसरे शिष्य भाई मतिदास को आरे से सीधा चीर दिया और तीसरे शिष्य सतिदास को रुई में लपेट कर आग लगा दी। इस नृशंस अत्याचार के बाद भी जब गुरु तेगबहादुर टस से मस नहीं हुए तो आदेश पाकर सैनिकों ने भरे चांदनी चौक में खड़ा करके गुरुजी का सिर काटकर धड़ से अलग कर दिया और लोगों में दहशत पैदा करने के लिए भरे चौक के बीचों-बीच पड़ा रहने दिया। यही स्थान तब से 'शीशगंज' के नाम से पहचाना जाता है। भयभीत भीड़ में से किसी ने भी उसे उठाने तो क्या छूने तक का साहस नहीं किया। इसी समय पड़ोस से ही लक्खीशाह बनजारा के गुजरने की खबर मिलते ही लोगों ने लक्खीशाह को सारा दर्दनाक किस्सा सुनाया। द्रवित लक्खीशाह ने यह दायित्व सहर्ष और साहस के साथ स्वीकारा। उसने शव का सिर उठाकर आनंदपुर साहिब भेजने की व्यवस्था की और धड़ बेटे के साथ बैलगाड़ी पर रखकर अपने निवास पर गया और एक खाट पर रखकर श्रद्धापूर्वक उनका दाह-संस्कार किया। यही स्थल आज 'गुरुद्वारा रकाबगंज' कहलाता है।

दिल्ली के उस समय के तत्कालीन बादशाह शाहजहां को सत्ता-विस्तार हेतु दक्षिण भारत की ओर कूच करने की सूझी। उसका आदेश पाकर सूबेदार आसफ खान दलबल सहित निकल पड़ा। सेना के साथ शस्त्र-सामग्री और रसद ले चलने के लिए जंगी और भंगी नामक दो बनजारा भाइयों को एक करारनामे के तहत साथ में लिया गया। जंगी और भंगी सारा सामान सैकड़ों बैलों की पीठ पर लादकर सेना के साथ चल पड़े। सेना मध्यप्रदेश के बुरहानपुर और महाराष्ट्र के यवतमाल जिले से होती हुई अंत में आंध्रप्रदेश के हैदराबाद तक पहुंची। आगे इसी के वंशज 'निजाम' कहलाए। जंगी-भंगी के साथ यहीं पर वह एक टीले पर ठहरे, जो आज तक 'बनजारा हिल' नाम से जाना जाता है। अब आगे काम न रहने से बनजारा लोग वापिस लौटने लगे। कुछ आंध्र में रहने लगे, कुछ बनजारा कर्नाटक की ओर गए और बचे कुछ लोग महाराष्ट्र के यवतमाल की ओर लौटे। रास्ते से लौटते समय इन्होंने जंगल काटकर खेती करना आरंभ किया, कुछ मजदूरी करने लगे। कुछ अन्य छोटे-मोटे व्यवसायों में जुट गए।

राजस्थान मूल के बनजारों के तीसरे समूह द्वारा उत्तर भारत की ओर प्रवास और फिर खैबर-बोलन दर्रों से यूरोपीय देशों की ओर अफगानिस्तान-बलुचिस्तान होते हुए प्रयाण करने का जिक्र पहले किया जा चुका है। सैकड़ों वर्षों से आजीविका और स्थायी निवास की खोज में दर-दर, देश-देश भटकते घुमंतू बने इन जिप्सी-रोमाओं ने भारतीय नाल तोड़ी नहीं है, मूल को भुलाया नहीं है। जब कभी जिस किसी देश में किसी भारतीय व्यक्ति से रू-ब-रू होते हैं, तो वे बड़े गर्व से राजस्थान-पंजाब अर्थात् भारत को अपना मूल बताते हैं। यूरोपीय विद्वान ग्रैलमैन ने अपनी एक पुस्तक में जिप्सी-रोमा को भारतीय नृवंश का ही माना है। भारतीय नृवंश और यायावर जीवन के विशेषज्ञ डॉ. श्याम सिंह शशि ने भी अपनी यूरोप यात्राओं के दौरान जिप्सी-रोमाओं से यह कहते हुए सुना है कि ''हम दिल्ली के राजपूत हैं।'' भारत माता के प्रति उनके दिलों में अगाध आदर और प्रेम दिखाई देता है। वे भारत को 'बारो थान' अर्थात् बड़ा स्थान कहते हैं और भारतीयों से रक्त का संबंध जताते हैं। यह कहते भी सुना गया है कि ''यू हैव कम फ्रोम बारोथान, तू मेरा रक्त'' और इसी तरह वे आगे करुण स्वरों में कहते हैं, ''हम राम की भूली बिसरी संतानें हैं। दशरथ पुत्र राम की तरह हम बरसों जंगलों-पहाड़ों में भटकते रहें। दशरथ पुत्र का वनवास तो चौदह वर्षों में समाप्त हो गया किंतु हमारा न जाने कब खत्म होगा। आप राम हैं, हम भरत। बड़े भाई हमें क्यों भूल गए? राम तो भरत को कभी नहीं भूले थे।'' और इस तरह वे स्वयं को भारतवंशी घोषित करने में गर्व का अनुभव करते हैं। उक्त उदाहरण इसी तथ्य की ओर इंगित करते हैं कि जिप्सी-रोमा भारत के बनजारा के ही विस्तारित परिवार हैं।

कुछ बातें और भी हैं, जो भारतीय बनजारा और जिप्सी-रोमा में समान रूप से मिलती हैं। विदेशों में सदियों से स्थायी अस्तित्व की जी-तोड़ तलाश में निरंतर घुमंतू बनी रही जिप्सी-रोमा जातियों को राजपूत मूल के भारतवंशी मानने के समर्थन में बनजारा और जिप्सी-रोमा के बीच पाई गई समानताओं का उल्लेख आवश्यक प्रतीत होता है। वह यह कि दोनों के निवास, समाज-पंचायत व्यवस्था, रहन-सहन, पोशाक विशेष रूप से महिला परिधान, भाषा, व्यवसाय, विवाह हेतु वधु-मूल्य, देवी-देवता पूजा-पाठ, इत्यादि में कई मायनों में समानता का पाया जाना उनके एक ही मूल की ओर संधान करते हैं। देशी-विदेशी दोनों समुदायों में सामाजिक कार्यों के निर्वहण के लिए पंचायतें होती हैं, जिनका प्रधान नायक या मुखिया होता है। समुदाय सदस्यों के बीच मतभेद से उत्पन्न संघर्षों, अन्याय-अत्याचारों का नायक या मुखिया के नेतृत्व में सर्व-सम्मति से निपटारा किया जाता है, जो सभी के लिए मान्य होता है। न मानने पर दंड का प्रावधान भी होता है। दोनों के निवास स्थानों में समानता भी है। दोनों के घुमंतू बने रहने से उनके स्थायी निवास नहीं होते। यात्रा के बीच पड़ाव को बनजारा में तांडा और जिप्सी-रोमा में कारवां का पड़ाव कहा जाता है। भारत में अब बनजारा स्थायी रूप से बस गए हैं और उनके निवास को आज भी तांडा ही कहा जाता है। उनको भारतीय नागरिकता भी मिली है किंतु जिप्सी-रोमाओं को युगोस्लाविया छोड़कर कहीं भी नागरिकता नहीं मिली है। इससे उनके निवास आज भी घोड़ा-गाड़ियां और मोटर-गाड़ियां ही हैं। बनजारा और जिप्सी-रोमा में विवाह के अवसर पर कन्या-शुल्क (बनजारा) और वधु-मूल्य (जिप्सी-रोमा) की प्रथा रही है। विवाह के लिए माता-पिता की

स्वीकृति अनिवार्यतः रही है। बनजारा में बैल और जिप्सी-रोमा में नकद राशि का प्रावधान था। दोनों जातियों में विवाह पूर्व या विवाह-बाद अवैध शारीरिक संबंध निषिद्ध रहे हैं। जिप्सियों-रोमा में कन्याओं की कौमार्य-रक्षा विशेषता रही है। हालांकि प्रगत समाज में अब इसमें शिथिलता आई है। जिप्सी-रोमाओं में वेश्यावृत्ति दंडनीय अपराध था। दोनों जातियों में मृतक को जलाए जाने और जमीन में दफनाए जाने की प्रथा रही है। रूस में जिप्सियों की कथाओं में ब्रह्मा, विष्णु, इंद्र, लक्ष्मी के नाम देखे गए हैं। पृथ्वी को वे माता कहते रहे हैं।

रोमा आज भी 'सतसारा' देवी की पूजा करते हैं जिसे वे काली और दुर्गा का रूप मानते हैं। दक्षिण फ्रांस में वर्ष में एक बार लाखों रोमा एकत्र होकर 'सतसारा' उत्सव मनाते हैं। उत्सव के अंत में वे देवी को जल का स्पर्श करवाते हैं। बंगाल की तरह विसर्जित नहीं करते। भारत में बनजारा जाति (महाराष्ट्र) में भी 'सात-आसरा' देवियों की पूजा की जाती है। इसकी पूजा-अर्चना से छोटी-मोटी बीमारियों से मुक्ति के प्रति उनका विश्वास है। 'सतसारा' और 'सात-आसरा' नामों में समानता दृष्टव्य है। बनजारा में लगभग सभी हिंदू देवी-देवताओं की पूजा-अर्चना की जाती है। महाराष्ट्र में वाशिम जिले के पोहरादेवी ग्राम में प्रति वर्ष रामनवमी को विशाल मेले का आयोजन होता है, जिसमें विश्वभर के बनजारा लाखों की संख्या में एकत्र होते हैं। देवी की और उनके आराध्य संत सेवालाल की वे पूजा करते हैं।

वस्त्राभूषणों के संदर्भ में बनजारा महिलाओं का रंग-बिरंगी कपड़ों से बना घेरदार घाघरा, अनेकों आरसियों के टुकड़ों और बीचो-बीच बेलबूटों से सजी कांचली (चोली) और अनेकों कौड़ियों और सिक्कों जड़ी ओढ़नी भारतीय समाज में बनजारा स्त्री की अन्यतम पहचान है, जिसे आजकल चलचित्रों में भी विशेष स्थान दिया जाता है विशेषकर लोकनृत्यों में। आभूषणों से लदा केश विन्यास जिसमें मंगलसूत्र के रूप में लटके 'घूघरी-टोपाली' से एक विशेष आकर्षण बनता है। दोनों जातियों बनजारा, जिप्सी-रोमा में महिलाओं की हृष्ट-पुष्ट देहयष्टि, नैन-नक्ष भरा रूप और श्रम की विशेष क्षमता उनमें जैविक समानता का परिचय करवाते हैं।

रूस का 'रोमेन थिएटर' और अन्य देशों में भी इसी के सदृश्य संस्थाएं जिप्सी-रोमाओं में संगीत-नृत्य में रुचि को दर्शाते हैं। मनोरंजन और इसी के माध्यम से व्यवसाय दोनों दृष्टियों से सार्वजनिक और धार्मिक मेलों-उत्सवों में इनकी उत्साहपूर्ण भागीदारी सहज दृष्टव्य है। इन्हीं प्रयोजनों से यूरोपीय देशों में रास्तों-चौराहों पर 'स्ट्रीट सिंगिंग' और नुक्कड़-नाटक का प्रदर्शन देखे जाते हैं। बनजारा में भी सामाजिक-धार्मिक मेलों-उत्सवों-पर्वों में लोकनृत्य, लोक-संगीत, लोक-नाट्य, स्वांग, कीर्तन-प्रवचनों की समाज प्रबोधन की प्रदीर्घ परंपरा मिलती है।

भारत में स्वतंत्रता संग्राम के दौरान अंग्रेजों के आतंक के विरोध में बनजारों द्वारा बढ़-चढ़कर नारे लगाने के जुर्म में उनको अपराधी जाति घोषित किया गया, जो ठप्पा आज भी स्वतंत्र भारत में उन पर चस्पा है। इसी तरह विदेशों में स्थायी निवास, आजीविका और नागरिकता के लिए दर-दर और देश-देश भटकते इन खानाबदोशों को स्थानीय शासकों से कठोर संघर्ष करना पड़ता था। ऐसे में उन्हें उन देशों की सीमाओं से बाहर खदेड़ने के लिए उन पर झूठे गंभीर आरोप लगाकर आपराधिक मामलों में बंदी बनाकर नजरबंदी शिविरों में भेजा जाता अथवा कारागृहों में ठूंस दिया जाता था। जर्मनी में स्त्रियों और कम-उम्र बच्चों के कान काट दिए जाते थे। फ्रांस

में जिप्सी स्त्री-पुरुषों के सिर काटकर लाने के लिए ईनाम दिए जाते थे। एक इतिहासकार जोसेफ के अनुसार प्रजनन क्षमता पर रोक लगाने के लिए विवाहित जिप्सी महिलाओं को विसंक्रमित करने के लिए शल्य चिकित्सा की जाती थी। हॉलैंड में देश छोड़ने के हुक्म का पालन न करने पर जिप्सियों का सारा माल छीनकर उन्हें देश से बाहर खदेड़ा जाता था। इन मरणांतक यातनाओं की हद तो तब पार हुई जब जिप्सियों के आर्य-रक्त के न होने की जानकारी मिलते ही हिटलर ने सैकड़ों और हजारों ही नहीं बल्कि लाखों जिप्सियों को गैस-चैंबरों में भून डाला।

'कटेंगे पर झुकेंगे नहीं' वाले रक्त के इन राजपूती आन-बान-शान के रक्षकों ने विदेशों में भारत का सिर सदा ऊंचा रखने वाले अद्वितीय स्वाभिमान को जीवित रखा और अनेक यातनाओं के बावजूद निवास, आजीविका और नागरिकता के लिए बड़ी शिद्दत से संघर्ष जारी रखा। जिसके परिणामस्वरूप आज यूगोस्लाविया में जिप्सी-रोमाओं को नागरिकता मिली है। आशा है अन्यत्र भी नागरिकता मिलेगी और कल को विदेशों में भारत का झंडा सदा ऊंचा रखने में जिप्सी रोमा, समाज के हर क्षेत्र में कामयाब होंगे। मेरा सुझाव है कि इस दिशा में भारत सरकार को भी पहल करनी चाहिए।

'नटशेल' में यही कि जिप्सी-रोमा बनजारा के ही विस्तारित परिवार हैं। कबीर की सहज-बानी में कहा जा सकता है कि देशांतरित जिप्सी-रोमा एक ही है—

''एक रक्त से सब उत्पन्ना
को बामन को सूदा?
बनजारा-जिप्सी-रोमा में
कोऊ न लागै दूजा।''

904/एफ-01, सक्सेस टॉवर्स, पंचवटी,
पाषाण मार्ग, पुणे-411008 (महाराष्ट्र)

हिंदी साहित्य पर छायावाद की छाया

सुरेश सक्सेना

सुरेश सक्सेना विभिन्न साहित्यिक पत्रिकाओं में विविध विषयों पर स्वतंत्र लेखन में सक्रिय।

जिस प्रकार सरिता का एक प्रवाह होता है, साहित्य का भी अपना एक विशिष्ट प्रवाह है। इसमें प्रवाह के साथ समय-समय पर कुछ प्रवृत्तियां उभर कर आती हैं। इसके साथ-साथ इस साहित्यिक प्रवाह में कुछ विशेष प्रकार के सिद्धांत एवं अवधारणाएं जन्म लेती हैं यही 'वाद' का अर्थ है। हिंदी कविता की लंबी यात्रा के परिवेश में भी अनेक वादों ने जन्म लिया और काव्य को समृद्धि प्रदान की। 'छायावाद' का उनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान है।

ऐसा सामान्यतः कहा जा सकता है कि द्विवेदीयुग की इतिवृत्तात्मक स्थूल एवं बाह्य काव्य चेतना के गहन सौंदर्य एवं भाव प्रवणता की जो प्रतिक्रिया हुई वह 'छायावाद' के नाम से अभिहित की जाती है। शनैः शनैः कुछ अन्य कारणों से भी कवियों की चेतना अंतर्मुखी होती गई। वह 'स्थूल' के स्थान पर 'सूक्ष्मता' को प्रमुखता देने लगे। यानि 'छायावादी' काव्य चेतनाओं ने सभी दृष्टियों से कविता के स्वरूप में परिवर्तन ला दिया और कवियों की भावनाओं को नवीन क्षितिज प्राप्त हुए।

कुछ विद्वानों ने तो अंग्रेजी साहित्य के 'रोमांटिसिज़्म' को 'छायावद' का मूल प्रेरक सिद्ध करने की चेष्टा की है। यहां तक कह दिया कि 'छायावाद', 'रोमांटिसिज़्म' का भारतीय संस्करण है। डॉ. नगेंद्र ने इस मत का विरोध किया है। वास्तविकता तो यह है कि 'छायावाद' के प्रेरक तत्वों में 'रोमांटिसिज़्म' का नाम भी उल्लेखनीय है। उसकी सर्वथा उपेक्षा नहीं की जा सकती है। ऐसा भी निर्विवाद सत्य है कि हिंदी में जिन प्रवृत्तियों की प्रधानता छायावाद में पाई जाती है, उन प्रवृत्तियों का उदय सर्वप्रथम बंग्ला साहित्य में ही हुआ था। एक मत यह है कि भारतीय कवि इस काल में अंग्रेज़ी साहित्य के संपर्क में आया, और इसका माध्यम बंग्ला भाषा बनी। कुछ छायावाद के उदय का कारण रवींद्रनाथजी द्वारा रचित 'गीतांजलि' को मानते हैं। तत्कालीन युग पराधीनता का युग था। अपने मनोभावों को स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त करना, खतरों से पूर्ण था। अतः भावों की अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति को माध्यम बनाया गया। इस माध्यम में बात स्पष्ट न कहकर छायाभास के रूप में कही जाती थी, लगता है यही काव्य छायावादी कहलाया। तत्कालीन सामाजिक समस्याएं, मान्यताएं आर्थिक दबाव आदि भी कुछ ऐसे कारण थे, जिन्होंने कवियों को नई भाषा और भावों में अभिव्यक्त करने को प्रेरित किया। यह व्यक्तिवादी चेतनाओं के उदय का एक सुंदर प्रयास था।

मान्यता यह भी है कि छायावाद का उदय द्विवेदीयुगीन काव्य की प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप हुआ। इतिवृत्तात्मकता और बौद्धिकता ही कविता के प्रतिपाद्य थे। सहृदय कवियों के मन में विद्रोह की भावना जाग्रत होने लगी और उसने 'छायावाद' का रूप ले लिया। समाज में व्याप्त राजनीतिक निराशा ने छायावादी कवियों में पलायनवाद और अनेक जिज्ञासाओं को भर दिया—

''विश्वदेव सविता या पूषा
सोम मरूत चंचल पवमान
वरूण आदि घूम रहे है
किसके शासन में अम्लान?''

20वीं शताब्दी में मुकुटधर पांडेय ने हिंदी में छायावाद नामक एक निबंध लिखा जो 'शारदा' नामक पत्रिका में प्रकाशित हुआ। उसमें उन्होंने 'छायावाद' को अंग्रेजी के 'मिस्टिसिज्म' के अर्थ में प्रयुक्त किया था। ऐसा ही एक लेख सुशील कुमार ने 'सरस्वती' नामक पत्रिका में लिखा था। इन लेखकों ने उस समय की काव्य-प्रवृत्ति को 'छायावाद' नाम उस पर व्यंग्य करने के लिए दिया था। परंतु यह नाम छायावादी कवियों को बाद में व्यंग्य न लगकर बड़ा पसंद आया और उन्होंने इस नाम का स्वागत किया। तब से ही 'छायावाद' नाम विशेष प्रकार की काव्य प्रवृत्ति के लिए प्रयुक्त होने लगा। छाया किसी पदार्थ का प्रतिरूप होती है, पदार्थ स्थूल होता है। छाया सूक्ष्म होती है और स्थूल से सूक्ष्म बारीक होता है तथा कठिनतापूर्वक व्याख्येय होता है। छायावादी काव्य भी कुछ ऐसा ही होता है वह कम स्थूल एवं सूक्ष्म है।

डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार, ''छायावाद

जयशंकर प्रसाद

स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह नहीं वरन थोथी नैतिकता, रूढ़िवाद और सामंती साम्राज्यवादी बंधनों के प्रति विद्रोह रहा है। परंतु यह विद्रोह मध्यवर्ग के तत्वावधान में हुआ था। इसलिए उसके साथ मध्यवर्गीय असंगति, पराजय और पलायन की भावना भी जुड़ी है।

प्रसादजी के अनुसार, ''अपने भीतर से पानी की तरह आंतर स्पर्श करके भाव समर्पण करने वाली अभिव्यक्ति छायावाद है।'' महादेवीजी ने लिखा, ''स्वच्छंद छंद में चित्रित मानव की अनुभूतियों का नाम छायावाद है।''

डॉ. रामकुमार वर्मा का मत है, ''परमात्मा की छाया आत्मा में पड़ने लगी और आत्मा की परमात्मा में—यही छायावाद है।'' शांतिप्रिय

महादेवी वर्मा

द्विवेदी ने कहा, ''छायावाद एक दार्शनिक अनुभूति है।''

शुक्लजी ने, ''छायावाद का प्रयोग रहस्यवाद के अर्थ में तथा एक काव्य-पद्धति के रूप में लिया है।'' निष्कर्ष यह निकलता है कि छायावाद में जिस प्रकार की कविता लिखी गई वह कविता, ''स्थूल से सूक्ष्म की ओर गई''। यह कवि बाहरी दुनिया की बात न कहकर अपने हृदय की बात कहते हैं। पूर्ववर्ती काव्य शैलियों की आदर्शवादिता ने काव्य के क्षेत्र में भावना का गला घोट रखा था। काव्य में कोमलता एवं सरस भावनाओं का अभाव था। द्विवेदीयुग की इतिवृत्तात्मकता के स्थान पर वैयक्तिकता आ गई।

छायावादी काव्य में कवि की वृत्ति अंतर्मुखी हो गई, वह अपनी व्यक्तिगत बातों की ओर ध्यान देने लगा। यह काव्य अपने पूर्ववर्ती काव्य से सूक्ष्म है।

इसका कालखंड सन् 1920-1930 ई. के बीच माना गया है। इस धारा के विकास के चार कवि मुख्य आधार स्तंभ माने जाते हैं उनके नाम हैं, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला और महादेवी वर्मा। अधिकांश विद्वान जयशंकर प्रसाद को ही छायावाद का प्रवर्तक मानते हैं। उनकी कृति 'झरना' इस तरह का सबसे पहला प्रयास है। उनकी 'कामायनी' छायावादी काव्य-धारा की प्रतिनिधि रचना है। छायावादी कवियों ने अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति केवल सौंदर्य से ही संचलित नहीं की वरन उसकी पृष्ठभूमि उन्होंने आध्यात्मिक चेतना से विनिर्मित भी की। यहां छायावाद कहीं-कहीं रहस्यवाद में खो गया। इसलिए बहुत से विद्वानों को छायावाद और रहस्यवाद में कोई भेद नहीं दिखाई पड़ता।

पंतजी ने इस धारा को कोमल भावनाओं से सजाया, संवारा और एक प्रकार का कौतुहल और मुग्धा की अल्हड़ता प्रदान की। पंतजी की कविताओं में छायावादी काव्य-चेतना अपना समग्र विकास और विस्तार पा सकी। छायावाद के प्रतिनिधि कवियों में पंतजी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। प्रकृति का मानवीकरण उन्होंने अत्यंत सुंदर ढंग से अपनी कविता 'बादल' में किया है—

''कभी चौकड़ी भरते मृग-से
भूपर चरन नहीं धरते,
मंत मतगंज कभी झूमते,
सजक सशक नम को चरते।''

छायावादी काव्य में स्वच्छंदतावाद एवं आत्माभिव्यक्ति प्रमुख रूप से उजागर होती है—

''लौटी रचना लेकर उदास
ताकता हुआ मैं दिशाकाश।''

छायावादी कवि आत्म की ओर उन्मुख हुआ। वह अपने निजीपन को लेकर चला। कवि ने जो दुखः, दर्द, वेदना, सुख, सहानुभूति अनुभव की, वह उसकी अपनी है—

''उज्जवल गाथा कैसे गाऊं
मधुर चांदनी रातों की
और खिलखिलाकर हंसते,
होने वाली उन रातों की।''

—प्रसाद

''मिला कहां वह सुख जिसका
मैं स्वप्न देखकर जाग गया
आलिंगन के आते-आते
मुस्काकर जो भाग गया।''

निरालाजी की 'सरोज-स्मृति' कवि की आत्मभिव्यक्ति है। महादेवी वर्मा की अनुभूति तो और भी अधिक आत्मभिव्यक्ति से युक्त है—

''दिया क्यों जीवन का वरदान,
इसमें है स्मृतियों का कंपन।''

पंतजी की वेदना का वैयक्तिक भाव इन पंक्तियों में विरल ही प्राप्य है–

''पूजा के ये पुष्प गिरे जाते हैं नीचे,
यह आंसू का स्रोत आज किसके पद सींचे
दिखलाती क्षण-क्षण मात्र न आती प्यारी प्रतिमा
यह दुनिया किस भांति उसे भूतल पर खीचें।''

''छायावादी काव्य में नारी के प्रति उदात्त भावों की अभिव्यंजना हुई है। रीतिकाल में नारी के विलास के गीत गाए जा चुके थे। भारतेंदु और द्विवेदीयुग के सुधार काव्य में नारी की समस्याओं के भाव मुखरित किए गए। नारी का नारीत्व छायावाद के कवियों को बहुत भाया है। नारी के प्रति सहानुभूति रखने के साथ-साथ उसमें पाए जाने वाली, दया, ममता, समर्पण, प्यार आदि उच्च गुणों का अनुसंधान किया है। निराला ने अन्य भावों के साथ उसके शक्ति स्वरूप के महत्व का आख्यान भी किया है। 'तुलसीदास' और 'राम की शक्ति पूजा' में ऐसे ही भाव हैं। महादेवी ने वेदना को उभारा है। 'कामायनी' में प्रसादजी के नारी के प्रति यह भाव हैं–

''नारी तुम केवल श्रद्धा हो
विश्वास रजत नग पद-तल में
...सुन्दर समतल में।'' –प्रसाद

छायावादी काव्य में कवि की अभिव्यंजना श्रृंगारिक है। इस काव्य में बहुत अधिक श्रृंगार वर्णन है। पर यह श्रृंगार स्थूल नहीं सूक्ष्म है। इसमें उपभोग की लालसा नहीं है। कवि कल्पना के पंखों से उड़ता है। कहीं नारी के अंग-प्रत्यंगों के सौंदर्य पर वह रीझता है। वह उसे अपनाने के लिए भागता नहीं है। उस सौंदर्य की उपासना करता है।

श्रृंगारिकता के प्रसंग में प्रेमानुभूति का आना भी स्वाभाविक है। यहां तो नारी का प्रेम है। नारी की अनेकों बातें कवि के भावों को जन्म देने वाली हैं। कवियों ने खुले हृदय से अपनी प्रेयसी के सौंदर्य, वस्त्राभूषण, स्वभाव और कार्य आदि की ऐसी व्यंजना की है, जो प्रेम में अत्यंत महत्वपूर्ण है।

छायावादी काव्य में प्रेम की एक विशेष वैयक्तिकता है। स्वच्छंद प्रेममार्गी कवियों को छोड़कर सबने किसी 'राधा', 'पद्मिनी', 'उर्मिला' आदि को माध्यम बनाया है। जबकि छायावादी कवियों ने अपनी प्रेमानुभूति की अभिव्यंजना की है।

यहां पंतजी अपने प्रेम से प्रियतम को पागल कर देना चाहते हैं–

''नाचूं जरा सनहे नदी में
मिलूं महासागर के जी में,
पागलनी के पागलपन ले,
तूझे गूंथ कृष्णा-पण में,
उड़ने दे घनश्याम गगन में।''

इनका प्रेम अत्यंत सूक्ष्म है। इनकी प्रणय-गाथा का अंत प्रायः असफलता एवं निराशा होती है। इसी कारण इसमें मिलन की अनुभूति कम है, विरह का रूदन अधिक है–

''विस्मृत हो वे बीती बातें
अब जिनमें कोई सार नहीं
वह जलती छाती न रही,
अब वैसा शीतल प्यार नहीं।''

इन कवियों ने अलौकिक प्रेम की बहुत सुंदर अभिव्यंजना की है। कवि अध्यात्म का आश्रय लेकर रहस्यवादी बन गए। रहस्यवादी कवि लौकिकता से अलौकिकता की ओर, स्थूल से सूक्ष्म की ओर दौड़ता है। हां, इसका रहस्यवाद, कबीर, जायसी आदि के रहस्यवाद की कोटि का नहीं है। मानव जीवन के दुःख और उसकी वेदना का वर्णन इस काव्य में स्थान-स्थान पर वर्णित हुआ है। जीवन की पीड़ा कवि की पीड़ा होती है।

छायावादी काव्य में प्रकृति वर्णन की अधिकता है। प्रकृति की सुंदरता और पदार्थ जीवित प्राणी की तरह वर्णन में आए हैं।

सुमित्रानंदन पंत

निराला की 'जूही की कली' इस दृष्टि से अत्यंत उत्तम है–

''विजन-वन-वल्लरी पर
सोती थी सुहागभरी
स्नेह-स्वप्न-मग्न-अमल-कोमल-तनु-तरूणी
जूही की कली
हग बंद किए, शिथिल, पत्रंक में।''

जूही की कली कोई सुंदरी रमणी भाव है। छायावादी काव्य कल्पना की दुनिया है। जीवन और जगत के बारे में कवि कल्पना भरें चित्र

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

बड़ी ही विविधता के साथ प्रस्तुत करते हैं। 'कामायनी' में 'इड़ा' के रूप का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है—

''बिखरी अलकें ज्यो तर्क-ताल।''

''छायावादी की एकमत विशेषता है, प्रतीक योजना। कवि विभिन्न प्रतीकों द्वारा अपनी बात कहता है—

''निशा को धो देता, राकेश
चांदनी में जब अलके खोल
कली से कहता था मधुमास
बता दे मधु मदिरा का मोल।''
महादेवी

यहां पर 'निशा', 'राकेश', 'कली', 'मधुमास' प्रतीकों से कवि नायक-नायिका के प्रेम की अभिव्यंजना करता है।

छायावादी कवियों ने अपने काव्य के बिंब का प्रयोग, अत्यंत सफलता के साथ किया है।

'बिंब' यानि 'इमेज'। कवि जो भी लिखता है, उसको पढ़ने से पाठक के सम्मुख वहीं चिह्न उपस्थित हो जाता है—

''झम झम झम झम मेघ बरसते रे सावन के
छम-छम-छम गिरती बूंदें तरूओं के तन से।''

यहां वर्षा के होने से झम-झम की आवाज़ आती है और वर्षा का चित्र सामने आ जाता है। छंदों की दृष्टि से भी यह काव्य सफल माना गया है। 'मुक्त रीति', पद्धति प्रयोग में लाई गई है। निराला को मुक्तक छंद का जनक माना गया है।

''दो टूक कलेज़े के करता
पछताता पथ पर आता
पेट पीठ दोनो मिलकर है एक
चल रहा लुटिया टेक...।।''
निराला (भिक्षुक)

यह कहा जा सकता है कि हिंदी-साहित्य में छायावादी काव्य अपने समस्त गुणी और उत्कृष्ट तत्वों को लेकर आया और हिंदी कविता को विकास के चरम शिखर पर लाकर बिठा दिया।

44, पंचशील पार्क, जी.टी. रोड,
साहिबाबाद-201005
जनपद : गाजियाबाद (उत्तरप्रदेश)

संपूर्ण वैभव की स्वामिनी : श्रीलक्ष्मी

प्रो. योगेश चंद्र शर्मा

स्नातकोत्तर विभागाध्यक्ष-राजनीति शास्त्र, वरिष्ठ साहित्यकार, अधिस्वीकृत स्वतंत्र पत्रकार प्रो. योगेश चंद्र शर्मा की विभिन्न विधाओं में एक दर्जन पुस्तकें प्रकाशित। हिंदी की लगभग सभी प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएं प्रायः प्रकाशित। अनेक पुरस्कारों से सम्मानित।

श्रीलक्ष्मी अत्यंत प्राचीन काल से ही भारत में देवी के रूप में पूज्य रही हैं। विश्व के सर्वाधिक प्राचीन ग्रंथ 'ऋग्वेद' के परिशिष्ट भाग में हमें 'श्रीसूक्त' प्राप्त होता है, जिसमें 'श्रीलक्ष्मी' की वंदना की गई है। इस सूक्त में इस समय कुल 29 मंत्र उपलब्ध हैं। संभव है, मूल रूप में इनकी संख्या काफी अधिक रही हो। कतिपय विद्वान इन मंत्रों से भी प्रारंभ के 15 मंत्रों को ही प्रमाणिक मानते हैं। 'श्रीसूक्त' के रचनाकाल के बारे में भी मतभेद हैं। यह मान्यता है कि इस सूक्त की अलग से रचना करके, बाद में इसे ऋग्वेद के साथ जोड़ा गया। लेकिन वैदिक परंपरा के ही एक ग्रंथ 'बृहद्देवता' में 'श्रीसूक्त' का उल्लेख किया गया है। 'बृहद्देवता' का रचनाकाल सामान्यतः ईसा पूर्व चौथी या पांचवीं शताब्दी माना जाता है। इससे यह तो स्पष्ट हो ही जाता है कि 'श्रीसूक्त' की रचना इससे काफी पहले हो चुकी होगी। यह तथ्य लक्ष्मी-पूजन के पुरातन स्वरूप को प्रमाणित करता है।

श्रीसूक्त के कुछ मंत्रों में 'श्री' का उल्लेख किया गया है और कुछ में 'लक्ष्मी' का। कहीं-कहीं कुछ अन्य नामों से भी संबोधित किया गया है। 'लक्ष्मी' के लिए हमें इस प्रकार के लगभग पांच दर्जन नामों की चर्चा पढ़ने को मिलती है, जो उनके विशिष्ट गुणों को प्रकट करते हैं। अन्य उल्लेखनीय नाम हैं—अश्वपूर्वा, अश्वदा, चंद्रा, पद्मप्रिया, अच्युतवल्लभा, पद्ममालिनी, पद्माक्षी, महालक्ष्मी, सूर्या, हेमामालिनी तथा हिरण्यमयी आदि। 'श्रीसूक्त' में दिए गए मंत्रों में श्रीलक्ष्मी के सौंदर्य और उनकी विशिष्टताओं का विशद वर्णन तथा उन विशिष्टताओं के आधार पर ही, श्रीलक्ष्मी से विभिन्न प्रकार की कामनाएं व्यक्त की गई हैं—

''चंद्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं,
श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम्।
तां पद्मनेमीं शरणमहं प्रपद्ये,
अलक्ष्मीमे नश्यतां त्वां वृणे।।''

अर्थात् ''मैं चंद्रमा के समान शुभ्र कांति वाली सुंदर द्युतिशालिनी, यश से दीप्तमंत, स्वर्गलोक में देवगणों द्वारा वंदिता, उदारशीला, पद्महस्ता, लक्ष्मीदेवी की शरण ग्रहण करता हूं, जिससे मेरी दरिद्रता का नाश हो। हे देवि, मैं शरणागत के रूप में आपका वरण करता हूं।''

इसी प्रकार एक अन्य स्थान पर कहा गया है—''हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्ण रजत्स्रजाम्। चंद्रां हिरण्यमयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह।'' अर्थात् ''हे देव! मेरे लिए सौभाग्य की देवी लक्ष्मी का आह्वान कीजिए, जो हिरण्यवर्णी, परम रमणीय, स्वर्ण रजत आभूषणों से अलंकृत, पुष्पमाल धारण किए हुए चंद्रप्रभा युक्त एवं हिरण्यमयी हैं, ताकि मैं उनकी कृपा प्राप्त कर सकूं।''

'श्रीसूक्त' का रचयिता, लक्ष्मी से सौभाग्य के

अतिरिक्त कीर्ति (यश) की भी कामना करता है। वह लक्ष्मी को कीर्ति का प्रतीक मानकर इसी रूप में उन्हें संबोधित भी करता है। यह कीर्ति केवल स्वयं के लिए नहीं, संपूर्ण राष्ट्र के लिए है।

''उपैतु मां देवसखः कीर्तिं मणिना सह।
प्रादुर्भूतो सु राष्ट्रेस्मिन् कीर्ति समृद्धिं ददातु मे।।''

अर्थात् हे देव, हमें देवों के सखा कुबेर और उनके मित्र मणिभद्र तथा दक्ष प्रजापति की कन्या कीर्ति (यश) उपलब्ध कराएं, जिससे हमें और राष्ट्र को कीर्ति समृद्धि प्राप्त हो।

श्रीलक्ष्मी को केवल धनधान्य की ही स्वामिनी नहीं, अपितु सैन्य, संपत्ति की भी स्वामिनी माना गया है। इसीलिए 'श्रीसूक्त' में श्रीलक्ष्मी से अश्व, रथ, गज और सुसज्जित सेना की भी कामना की गई है। श्रीलक्ष्मी को स्वर्णनिर्मित रथ पर बैठा हुआ बतलाया गया है। श्रीलक्ष्मी को कमल प्रिय हैं और उनके दोनों ओर हाथी चिंघाड़ते हैं, जिससे उन्हें आनंद प्राप्त होता है।

गजलक्ष्मी की यह धारणा अनेक प्राचीन भारतीय सिक्कों में भी अभिव्यक्त की गई है। उनमें हमें लक्ष्मी की ऐसी आकृति प्राप्त होती है, जिनको दोनों ओर खड़े हुए हाथी स्नान करवा रहे हैं। आजकल हमें श्रीलक्ष्मी के जो चित्र बाजार में प्राप्त होते हैं, उनमें भी श्रीलक्ष्मी को कमल पर बैठा हुआ दिखलाया जाता है और दोनों ओर दोनों हाथी उन पर पानी डालते रहते हैं। पानी डालने की कल्पना संभवतः कमल की वजह से की गई हो, जिसका सीधा संबंध पानी से होता है। वैसे, सुप्रसिद्ध पौराणिक कथा के अनुसार लक्ष्मी की उत्पत्ति समुद्र से मानी गई है। समुद्र-मंथन के समय जो नवरत्न प्राप्त हुए थे, उनमें एक श्रीलक्ष्मी भी थीं। इस संदर्भ में भी श्रीलक्ष्मी का कमल और पानी से संबंध स्पष्ट हो जाता है।

अथर्ववेद के एक मंत्र के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के जन्म के साथ एक सौ से अधिक लक्ष्मियां भी जन्म लेती हैं, जिनमें कुछ कल्याणकारी होती हैं और कुछ अकल्याणकारी। मंत्र में यह कामना की गई है कि जो कल्याणकारी लक्ष्मियां हैं, वे जीवन में बार-बार आएं और अकल्याणकारी लक्ष्मी हटकर दूर चली जाएं। श्रीलक्ष्मी को सद्गुणों के प्रतीक के रूप में पहले से ही स्वीकार किया जाता रहा है और इस प्रकार दुष्प्रवृत्तियों के प्रतीक के रूप में 'अलक्ष्मी' की कल्पना भी सहज स्वाभाविक है। मानव जीवन में दोनों ही तत्वों का योग रहता है और इसी तथ्य की ओर इंगित अथर्ववेद का यह मन्त्र है—

''एक शतं लक्ष्मयो मर्त्यस्य साकं
तन्वा जनुषोधि जाताः।।''

भारतीय संस्कृति पर 'श्रीसूक्त' का प्रभाव काफी अधिक है। इस पर अनेक भाष्य लिखे गए और अनेक स्थानों पर इसकी चर्चा हुई। इससे 'श्रीलक्ष्मी' की देवी के रूप में लोकप्रियता भी निरंतर बढ़ती चली गई। जातक कथाओं में इसकी चर्चा हुई। कौटिल्य का अर्थशास्त्र भी इस वर्णन से अछूता नहीं रहा। स्कंदगुप्त के जूनागढ़-अभिलेख में भी श्रीलक्ष्मी का वर्णन प्राप्त होता है। देश के विभिन्न स्थानों की गुफाओं में जो कला प्रस्तुत की गई, उसमें भी श्रीलक्ष्मी का विशिष्ट स्थान है।

शतपथ ब्राह्मण की एक कथा के अनुसार प्रजापति के हृदय से 'श्री' (लक्ष्मी) की उत्पत्ति हुई, जो अत्यधिक सौंदर्यवान, प्रकाशवान और ओजवान थीं। उनसे आतंकित होकर देवताओं ने उनकी हत्या करने की सोची। लेकिन हत्या करना चूंकि उचित नहीं होता, इसीलिए उन्होंने 'श्री' के संपूर्ण वैभव और ऐश्वर्य का अपहरण करके आपस में बांट लिया। बाद में तपस्या करने पर 'श्री' को उनके गुण वापिस मिल गए। इस कथा के अनुसार 'श्रीलक्ष्मी' प्रजापति की पुत्री हुईं। मगर यजुर्वेद में 'श्री' को प्रजापति की पत्नी के रूप में चित्रित किया गया है। कारण संभवतः यह रहा कि आगे चलकर प्रजापति के अनेक गुण विष्णुनारायण में समाहित कर दिए गए और इस प्रकार यजुर्वेदे का मन्तव्य संभवतः उन्हें विष्णु-पत्नी के रूप में चित्रित करना था।

यद्यपि प्राचीन साहित्य में, हमें 'लक्ष्मी' कहीं-कहीं इंद्र या कुबेर के साथ भी जुड़ी हुई प्रतीत होती हैं, मगर कालांतर में उन्हें विष्णु पत्नी के रूप में ही स्वीकारा गया। गुप्तकाल के अभिलेखों में भी 'श्रीलक्ष्मी' को विष्णु पत्नी के रूप में प्रस्तुत किया गया है। आचार्य रामानुज ने अपने 'श्री-संप्रदाय' में विष्णु को परमेश्वर तथा लक्ष्मी को उनकी पत्नी माना। महाभारत के उत्तरार्द्ध में भी हमें लक्ष्मी का परिचय विष्णु-पत्नी के रूप में ही मिलता है।

प्रारंभ में हमें कहीं-कहीं लक्ष्मी के साथ कुबेर के पूजन की व्यवस्था देखने को मिलती है। बाद में कुबेर का स्थान गणेश ने ले लिया जो अभी तक चला आ रहा है। मगर, ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार स्वयं कृष्ण (विष्णु) ने ही गणेश का रूप धारण किया था। इसलिए प्रकारांतर से गणेश का अर्थ विष्णु ही हुआ।

कुछ विद्वान 'श्रीलक्ष्मी' को आर्यों की नहीं, बल्कि आर्येतर देवी मानते हैं। इस पक्ष में उनका तर्क यह है कि शतपथ-ब्राह्मण की उपर्युक्त कथा के अनुसार श्रीलक्ष्मी अपने गुणों को यज्ञ द्वारा प्राप्त करती हैं। यह यज्ञ आर्येतर 'श्रीलक्ष्मी' की शुद्धि के लिए किया गया और उस शुद्धि के बाद ही उन्हें गुणों की प्राप्ति हुई। मगर अन्य विद्वान इस तर्क को उचित नहीं मानते। उनका कहना है कि शतपथ की इस कथा के अनुसार 'श्रीलक्ष्मी' के पिता प्रजापति थे, जो आर्य संस्कृति के श्रेष्ठ और उच्च देवता माने जाते हैं। तब उनकी पुत्री आर्येतर कैसे हो सकती है? दूसरी बात है कि 'श्रीलक्ष्मी' के गुण जन्म से ही उनके पास थे। यज्ञ से उन्हें केवल छीने हुए गुण वापिस मिले थे। तीसरी बात यह है कि प्राचीन भारतीय संस्कृति में हमें ऐसा कोई उल्लेख नहीं मिलता, जहां यज्ञ द्वारा आर्येतर

देवताओं को आर्य बनाया गया हो।

'श्रीलक्ष्मी' को आर्येतर देवी मानने का दूसरा तर्क यह दिया जाता है कि सिंधु सभ्यता की एक मोहर जो प्राप्त हुई है, उसमें एक देवी की आकृति है, जिसे 'श्रीलक्ष्मी' कहा जाता है। इस संबंध में भी विद्वानों ने दो बातें कही हैं। प्रथम, इस देवी का 'श्रीलक्ष्मी' होना अभी प्रमाणित नहीं हुआ है दूसरे, उस सभ्यता की लिपि को भी पढ़ने में अभी पूर्ण सफलता नहीं मिली है। इससे, इस आधार पर भी उस देवी को 'श्रीलक्ष्मी' नहीं माना जा सकता। तीसरी बात यह है कि सिंधु सभ्यता भी इस देश की ही सभ्यता थी, तब उसकी मोहर में 'श्रीलक्ष्मी' का अंकन कोई आश्चर्य की बात नहीं।

लक्ष्मी के आर्येतर देवी होने की आशंका इस तथ्य से भी प्रकट की जाती है कि लक्ष्मी की आकृति का अंकन सर्वप्रथम जिस सिक्के पर हुआ, वह एक विदेशी शक शासक का था। नाम था अयलिष या अजिलाइसिस। घटना थी ईसा पूर्व की पहली शताब्दी की। मगर यह आशंका भी निराधार है। क्योंकि इससे कई शताब्दी पूर्व श्रीलक्ष्मी का वर्णन 'श्रीसूक्त' में किया जा चुका था।

10/611, कावेरी पथ, मानसरोवर,
जयपुर-302020 (राजस्थान)

वाचिक परंपरा में रावत नाच के दोहे

डॉ. राजन यादव

कई पुरस्कारों से सम्मानित डॉ. राजन यादव ने तीन पुस्तकों के लेखन सहित पंद्रह पुस्तकों में संपादन सहयोग किया है। कई शैक्षिक व साहित्यिक संस्थाओं से संबद्ध।

सृजन जीवन की पुनर्रचना है। संसार में यह पुनर्रचना अनेक स्तरों पर अनेक रूपों में सतत् चलती रहती है। जब मनुष्य के पास लिखित भाषा-रूप नहीं था और वह उसके वाचिक रूप का ही विकास कर पाया था, तब भी वह अपने भीतर उमड़ने वाले भावों को वाणी देता था। उसकी इस वाणी में न किसी तरह की बनावट और बुनावट होती थी, न कोई अतिरिक्त सजावट। जो कुछ वह अपने भीतर महसूस करता था, वह वाचिक शब्द के रूप में बाहर आ जाता था। ''अगर मानव समाज की सबसे बड़ी उपलब्धि 'भाषा' का विकास है, तो बेशक इसमें सर्वोत्कृष्ट और अनुपम उत्कर्ष है—उसका रचनात्मक सृजन। सृजन बिना अभिव्यक्ति के नहीं हुआ करता। इस तरह जितना प्राचीन मनुष्य का सृजन है, उतना ही प्राचीन है अभिव्यक्ति की आदिवाचिक परंपरा। सृजन अभिव्यक्ति की यह पुरातन परंपरा तमाम अत्याधुनिक प्रगति के बावजूद आज भी मौजूद है, तो उसके पीछे एक ही शक्ति की भूमिका रही—मानव समाज की अबाध सृजनशीलता की।''[1] वैदिक काव्य परंपरा वाचिक परंपरा ही थी, जिसकी सबसे अधिक अभिव्यक्ति यज्ञ के मंच पर होती थी। पूर्व और पश्चिम दोनों के प्राचीनतम साहित्य को देखें तो हम पाएंगे कि 'गद्य' और 'पद्य' दोनों रूपों में वाचिकता की सुदीर्घ परंपराएं मिलती हैं।

हमारे यहां केवल वाचिक परंपरा नहीं है, लिखित परंपरा भी है और बहुत पुरानी है। पश्चिमी विद्वानों के साथ इस देश की परंपरा को वाचिक (ओरल ट्रडिशनल) और पश्चिम की परंपरा को लिखित कहने का क्रम चल पड़ा है। पश्चिम का आदमी किस प्रकार लिखित परंपरा और वाचिक परंपरा में भेद करता है, वैसा भेद हमारी संस्कृति में नहीं है। वाचिक परंपरा और लिखित परंपरा इस तरह इस देश में घुली-मिली और परंपरा पूरक रही है कि आश्चर्य होता है। ''वाचिक परंपरा में भाषण बिल्कुल जरूरी नहीं है, यह जो अनौपचारिक शिक्षण है वह उसका एक छोर है दूसरे छोर पर गुरु बैठकर शास्त्र पढ़ाता भी है, लेकिन रोजमर्रा के काम में कोई शास्त्र नहीं पढ़ाया जाता। वाचिक परंपरा इसी तरह से काम करती है। बेटा बाप से, बड़े भाई से, बाबा से, नाना से देख-देख कर सीख जाता है—अपना काम करने लग जाता है भले वह उसकी व्याख्या न कर सके। यह वाचिक परंपरा का बहुत सबल पक्ष है जो जीवन का अंग है—अभी भी है।''[2]

वाचिक परंपरा एक संपूर्ण अभिव्यक्ति का माध्यम है और सुदीर्घ काल से है। भर्तृहरि ने भी वाचिकता को, वाचिक परंपरा को शास्त्र और लोक के रूप में बटवारा करके नहीं देखा है। क्योंकि जो शास्त्र है वह भी श्रुति की परंपरा है और लोक भी वाचिक परंपरा में है। इसलिए वाचिकता के आधार पर शास्त्र और लोक का विभाजन नहीं किया जा सकता। ''समाज में मान्यता उसी को मिलती है, जो परंपरा में रहते हुए भी नवीनता उत्पन्न कर सके। नवीनता की भी कल्पना बड़ी विचित्र है—नवीनता को अगर हम यह समझें कि सब कुछ बदल जाना है तो ऐसा नहीं है। नवीनता तो ऐसी है जैसे बीज में से पेड़ निकलता है, यह नवीनता है भी और नवीनता नहीं भी है। बीज में समूचा पेड़ निहित है फिर वह क्रमशः विकसित हुआ। वैसे ही बीज रूप में कथा हमारे पास थी इसको हम कैसे प्रस्फुटित करते हैं, कैसे इस बीज में से पेड़ खड़ा करते हैं, यह हमारी सर्जनात्मकता है, इस सर्जनात्मकता के लिए सारा मसाला हमें वाचिक परंपरा से मिलता है। बीज लिखित परंपरा में मिलता है, इस प्रकार वाचिक और लिखित परंपरा में कोई विरोध नहीं है।''[3] वाचिक शब्द लोकजीवन की एन्साइक्लोपीडिया में उपस्थित होते हैं। ''वाचिक या बोले जाने वाले शब्दों की बेहद ताकत होती है। ये मौखिक इतिहास का आधार बनते हैं। यह अचल ऐतिहासिक तथ्यों के विकल्प बनकर प्रवाहशील जीवंत अंतर्वस्तु बन जाते हैं। यह सच है कि मौखिक अंतर्तथ्य सिलसिलेवार या लड़ीवार नहीं होते, इनका कोई क्रमिक कालचक्र नहीं होता और इनका एक अनुशासन में बंधा विशिष्ट स्वरूप भी नहीं होता। ये मिथक में निजंधर में, प्रतीक में प्रथा में, अभिप्राय में या वैज्ञानिक अनुभव में घुले-मिले होते हैं। ये वाचिक शब्द कर्म सुंदर की अपेक्षा लीलामय भी हो जाते हैं।''[4] हमारी महत्वपूर्ण परंपरा 'वाचिक परंपरा' ही है। आत्मभिव्यक्ति द्वारा जिज्ञासु में ज्ञान संक्रांति की वाचिक परंपरा कम से कम भारत में महत्व की मानी जाती है। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को ज्ञान संक्रांति वाचिक ही किया था, जिससे उनका मोह नष्ट हुआ था और स्मृति ठीक हो गई थी।

''नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वप्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोस्मिन गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव।।''[5]

हमारी परंपरा में ज्ञान संक्रांति के लिए दीक्षा शब्द का प्रयोग है—वह वाचिक ही होती है। गुरु-शिष्य के बीच मध्यमा, पश्यंती तथा परा वाणी की शिक्षा वाचिक परंपरा में ही होती है। वाचिक परंपरा का मूल इस बात में है कि मनुष्य अपनी शक्ति में विश्वास करता है, अपने अनुभव पर विश्वास करता है, सबसे पहले घर का और फिर उससे क्रमशः बड़ा होता समुदाय, पाठशाला का, समूचे समाज का, इन छोटे-बड़े समुदायों से मनुष्य स्वयं जो संचित करता है और उसका संक्रमण अनायास ही बिना किसी विशेष प्रयास के होता रहता है, यह वाचिक परंपरा की मौलिकता है।

''जब भाषा का लिखित रूप स्थिर हो गया तथा उसको पोथियों के रूप में भावाबद्ध एवं विचारबद्ध कर दिया गया, तो साहित्य की शास्त्रीय सृजन परंपरा का विकास हुआ। जबकि इसके समानांतर उस बहुसंख्य विशाल समुदाय की अपने सृजन की लोक-परंपरा उसकी अपनी जगह कायम रही, जो जीवन के सौंदर्य को वाचिक रूप में गतिशील रखे हुए थे। वह अपने भावों और विचारों की सुव्यवस्था और नियोजन के लिए किसी शास्त्र की शरण में न जाकर केवल अपने अनुभवों से ही उसे आगे बढ़ाता था। वह अपनी बात ठेठ जिंदगी के सामने खड़े होकर कहता था। जिंदगी की सच्चाई ही उसके सृजन की सबसे बड़ी ताकत थी। उसका सर्जक कोई एक व्यक्ति होकर भी पूरा लोक होता था।''[6] लोक-साहित्य पर संस्कृत की पुराण कथाओं तथा रामवृत्त और कृष्णवृत्त से संबंधित कथानकों का व्यापक प्रभाव है। इन कथाओं की घटनाओं और चरित्रों के स्वभाव और क्रियाकलापों को लोक ने अपने स्वभाव में ढाल लिया है। इस तरह संस्कृत के अभिजात्य से कथा घटनाओं और कथा चरित्रों को मुक्त करने का उपक्रम लोक ने अपनी सहजता के साथ किया है। और सब हुआ वाचिक परंपरा से। श्रीरामकथा का एक प्रसंग रावत नाच के दोहों में वाचिक परंपरा में इस रूप में प्राप्त होता है—

''धरि के मंदोदरी थारी में कलेवना,
चली सिया के पास।
उठि-उठि सीया भोजन कर लें,
करिहौं लंका के राज।।''

वाणी-शक्ति के संबंध में याज्ञवल्क्यजी और जनकजी के बीच का एक प्रभावी प्रसंग है—याज्ञवल्क्यजी से जनकजी प्रश्न करते हैं—यदि संसार के सूर्य को समाप्त कर दिया जाए तो लोक किसके प्रकाश से प्रकाशित होंगे? उत्तर मिला—चंद्रमा के प्रकाश से। और चंद्रमा भी समाप्त हो जाए तो? तब अग्नि के प्रकाश से प्रकाशित होंगे। और अग्नि भी समाप्त हो जाए तो? तब फिर वाणी के प्रकाश से लोग प्रकाशित होंगे। घनघोर अंधकार में भी हम वाणी का प्रसार कर सकते हैं क्योंकि एकांत और सूनेपन में आदमी की आवाज ही उसका साथ देती है। इस आवाज से वह भय-मुक्ति का प्रयास भी करता है, साहस बटोरता है। ''चरवाहे ने अपना एकांत अपनी ही आवाज से तोड़ा। इस प्रकार से चरवाही लोकगीत (पैस्टोरल सांग्स्) का जन्म हुआ। इनमें व्यक्तिगत सुख-दुखों के अनुभव रहते हैं। इस तरह के लोकगीतों में शब्द कम होते हैं। मात्र एक या दो पंक्तियां ही होती है। इनकी धुन लंबी होती है। इसीलिए इन्हें लमटेरा कहते हैं—जिनकी टेर लंबी हो।''[7] इसी तरह हांक लगाकर रावत नाच के दोहे भी कहे जाते हैं। श्रृंगार परक रावत दोहों में मिलन का उत्साह, विरहाकुलता, नायक-नायिका के रूप सौंदर्य का दर्शन किया जा सकता है—

''ठंडी परे फुहार कदंब पर,
ठाढ़े भीजैं संवरिया।
गइया भीजैं बछरन भीजे,
राधा के भीजे चुनरिया।।
लिखनी डोले कागद डोले
पतिया भेजे न जाय।
सुध न आवे छतिया फाटे
अंग-अंग महकाय।।''

रावत नाच के दोहों में कथावाचन पुराणों के आधार पर, रामायण से लेकर रामचरितमानस तक कथा के आधार हो सकते हैं, लेकिन फिर भी कथावाचक की कथा में एक अपना रस रहता है। कथावाचक उस बिंदु को फैलाता है और इस फैलाने में ही सारा अंतर आ जाता है कथा वही की वही रहती है। कालातीत अतीत को देशकाल के अनुरूप प्रस्तुत करना अपने आप में एक कला है—यह अपने आप में एक सर्जन है और यह वाचिक परंपरा भी है।

रावत नाच की जब उत्पति हुई थी तब उसमें कोई व्यवस्थित पद संचालन यंत्र व क्रम नहीं रहा होगा। वह तो हर्षोल्लास की अभिव्यक्ति के रूप में अंगों का थिरकना मात्र था, परंतु कालांतर में इस थिरकन में व्यवस्थित रूप से एकरूपता लिए अंगों का संचालन और क्रमबद्ध प्रक्रिया का निर्माण हुआ, क्योंकि ''लोकनृत्य का आरंभ कब और कैसे हुआ, यह ठीक-ठीक कहना कठिन है। किंतु यह सर्वविदित है कि कलाएं नियम और शास्त्रों में नहीं परंपराओं में जीती हैं। इनका मूल-स्रोत है प्रकृति और कुछ अलौकिक शक्तियां जो मानव जीवन में स्वतः जन्म लेती और पनपती है। इनका घर है गांव, जिनमें हमारे पुरखों ने जीवन बिताया और फूले-फले, उन्होंने अपने जीवन-क्रम को क्रमबद्ध रखने के लिए देवता की कल्पना की। उनकी आराधना के साधक नृत्य बने।''[8] अभिप्राय यह कि अनादिकाल से मनुष्य अपने आनंद मंगल के समय अंगभंगिमाओं का जो अनियोजित प्रदर्शन करता आ रहा है, वही धीरे-धीरे समष्टि के रूप में आयोजन-नियोजन द्वारा लोक-नृत्यों का स्वरूप धारण करने लगा। यही बातें रावत नाच की उत्पत्ति के संदर्भ में कही जा सकती है। ''इस नृत्य का प्रथम सोपान 'अखरा' के रूप में आरंभ किया जाता है। अंतिम सोपान, बाजार परिभ्रमण के रूप में संपन्न होता है। अंखरा देवाता, काछन, सुहई, सुखधना, रावत नाच, आशीष-वचन, मड़ई तथा बाजार परिभ्रमण के रूप में यह आकर्षक नृत्य संपूर्णता को प्राप्त करता है।''[9]

सामाजिक घटनाओं पर त्वरित दोहा गढ़ने की इन नर्तकों में अद्‌भुत शक्ति होती है, ये

लोक के आशु कवि और वाचिक परंपरा के वाहक होते हैं। इनके द्वारा कहे जाने वाले दोहों की अपनी विशिष्टता है, जो लोक-जीवन से संबद्ध होती है। यहां की संस्कृति का मूल घोष समन्वय और सह-अस्तित्व का है, जिसे हम रावत नाच के दोहों में भी सुनते हैं। गौमाता की महिमा जग-जाहिर है। इन्हीं के पीछे चलते-फिरते, सेवा करते हुए यादव वंश की शक्ति-भक्ति बढ़ी है, जिनका ये इस प्रकार गान करते हैं–

''गउ माता के महिमा भैया,
नी कर सकी बखान रे।
नाच कूद के जेला चराइस,
कृस्नचन्द भगवान रे।।''

यजमानों के पशुधन को 'सुहाई' बांधते समय उनके प्रति जो मंगलकामनाएं व्यक्त की जाती है, वे लोक वेद की मंजुल सूक्तियां हैं। जो वर्ष भर उनके आश्रित जैसा रहा वही आज दाता के रूप में सामने खड़े होकर यह भाव व्यक्त करता है–

''अंगन चक चंदन,
हरियर गोबर भीना।
गाय-गाय तोर कोठार भरय,
बरदा होय सौ तीना।।''

ठाकुर देव बरमबाबा, मातादेवाला, लहुरादेव, सांड़हरदेव, कालीमाई, भंईसासूर, दुलहरादेव, कंकाली, शीतला, महामाया और सतबहनियां के आराधनापरक लोकगीतों में इन देवी-देवताओं का जो महिमागान किया जाता है वह वाचिक परंपरा में होता है। निम्न दोहों से यह भान भी होता है कि तब समाज में बलि-प्रथा का जोर था–

''कलकत्ता के काली सुमिरौं,
रतपुर के महमाय।
सुमिरौं देवी रे मैंहर के,
बइहां मं होय सहाय।।
कलकत्ता के कालिका,
पर्वत के किलकार।
जा दुस्मन ल चाट मइया,
देहंव रकत के धार।''

गोपालन व कृषि कार्य करने वाली इस जाति की पहुंच झोपड़ी से लेकर अट्टालिकाओं तक होती है। श्रीमद्भागवत और महाभारत की बीज कथा की एक धारा लिखित में प्रवाहित है, तो दूसरी धारा वाचिक परंपरा के रूप में है, जिसे हम रावत नाच के दोहों में सुन सकते हैं। श्रीकृष्ण का वंशज कहे जाने वाले यदुवंशी उनके सानिध्य की वस्तुओं का, कृष्ण के लीला स्थलों का रावत नाच के दोहों में गान करते हैं। लाठी, कंबल, खुमरी, कलगी, खार, जंगल, दोहनी, मयूर पंख, वंशी इत्यादि पर आधारित दोहों में श्रीमद्भागवत के दशमस्कंध के कथानक उद्धृत होते हैं, किंतु वाचिक परंपरा में उन कथानकों का लोकव्यापीकरण हो जाता है। समूह की इस अभिव्यक्ति में कथानक भी समूह में आते हैं। पात्र विशेष या कथा-विशेष के नामोल्लेख से ही सूत्र रूप में कथा संकेत मिल जाता है। लोक की अभिव्यक्ति का यह सबल पक्ष है। बीज कथा की लोक द्वारा पुनर्रचना भी होती है–

''चंदा ल घेरय कारी बदुरिया,
लंका ल घेरय हनुमान रे
सोलह सौ ग्वालिन न घेरय कन्हैया,
मांगय दही के दान रे
राउत-राउत का कथो,
राउत गाय चरइया रे
दूरपती के लाज रखइया,
बंसी वाला भइया रे।।''

आंखरा धाना, रंग-बिरंग साज-बाजा, भावानुकूल बजते वाद्यों की ताल में थिरकते पैर, हुंकार भरते हुए प्रश्नोत्तर के रूप में कहे जाने वाले दोहों से पूरा वातावरण ओजपूर्ण हो जाता है। इस वातावरण का अनुकरण लिखित परंपरा में नहीं बल्कि वाचिक परंपरा में किया जा सकता है। जिस आचरण के गुणगान से हमारे लिखित परंपरा के धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र के पन्ने भरे पड़े हैं, वैसे ही भाव वाचिक परंपरा से प्राप्त रावत नाच के दोहों में मिलते हैं–

''केकती बड़े के केंवरा,
गुंगुर बड़े के धूप।
तोला पूछंव पंडित छोकरा,
चाल बड़े के रूप।।''

फक्कड़ कबीर की भांति सहज भाषा में लोक की व्यथा-कथा का रावत नाच के दोहों में सहज अंकन होता है। किंतु इन अभावों के बीच भी प्रेम-भाव कहीं तिरोहित नहीं होता। साज-बाज के साथ थिरकते नर्तकों के मुंह से श्रृंगारपरक दोहों की धारा फूट पड़ती है। मिलन की बेकरारी, विरहजन्य संताप, रूपासक्ति और विरक्त का भाव भी वाचिक परंपरा में चले आ रहे रावत नाच के दोहों में अभिव्यंजित होते हैं। हंस के गम को पीने का भाव लिखित परंपरा में ही नहीं वाचिक परंपरा में भी व्यंजित हुआ है। दूसरों की हंसी उड़ाने के साथ-साथ नग्न यथार्थ का चित्रण भी रावत नाच के दोहों में होता है। कभी पत्नी तो कभी अपने साज-बाज को लेकर हास्यपरक दोहे गढ़ लिए जाते हैं। मानव जीवन की क्षण भंगुरता, 'ब्रह्म सत्यं' जगतमिथ्या, का भाव, सत्संग महिमा, नारी महिमा, 'सियानी गोठ' इत्यादि प्रसंगों का भी इन दोहों में अवतरण होता है–

''संगत करले साधु के, भोजन कर ले खीर।
बनारस म बासा कर ले, मरना गंगा तीर।।
नारी निंदा झनकर दाऊ, नारी नर के खान रे।
नारी नर उपजावैं भैया, धुरू पहलाद समान रे।।''

रावत नाच के ये दोहे व्यक्ति की भाषायी आवश्यकताओं को भी पूरा करते हैं। ये दोहे स्थूल सामाजिक सरोकारों तक ही मर्यादित न होकर भाषायी सौंदर्य बोध को भी सामने रखते हैं। छत्तीसगढ़ के जन-जीवन में सरलता है, गतिशीलता है, एक दीर्घ जीवंतता भी है। यही वजह है कि इन दोहों में एक लय है, और खेत-खलिहोनों की सोंधी महक भी है जो उनके अर्थों को कभी मिटने नहीं देते हैं, जीवित रखते हैं। कबीर, सूर, तुलसी, रहीम वृंद और न जाने कितने संत भक्त कवियों

की रचनाएं कुछ परिवर्तित रूप में लोक की वाचिक परंपरा की गंगोत्री से प्रवाहित होकर विस्तार पा रही है। इसीलिए कहा जाता है—''यदि लोक-जीवन बिंब है, तो लोक साहित्य उसका प्रतिबिंब। लोक-साहित्य सुदूर निवासियों, पर्वतीय प्राणियों तथा ठेठ ग्राम्यवासियों का ऐसा साहित्य है, जो अनगढ़ भी है खुरदरा भी है। प्रखर भी है, कोमल भी है। यह तो सरल प्रकृति-पुत्रों के हृदय की ऐसी माला है, जिसमें आंसुओं के फूल, मुस्कान की कलियां, प्रसन्नता की पांखुरियां कारुण्य के किसलय लोक-सूत्र में गुंथे हुए हैं।''[10]

रावत नाच समूह के द्वारा लोक की अभिव्यक्ति हुई है। इसके कथानक भी समूह में प्रस्तुत होते हैं। चूंकि रावत नाच का प्रमुख रस 'वीर' है, शौर्यपरक अभिव्यक्ति के लिए महाभारत और लोक में प्रसिद्ध आल्हाखंड से बढ़कर भला दूसरा ग्रंथ कौन सा हो सकता है। रामायण, महाभारत आल्हाखंड लोक के बहुश्रुत ग्रंथ हैं। हनुमत वीर का इन दोहों में विशेष उल्लेख वीरत्व भाव के कारण होता है। लक्ष्मण, अंगद, हनुमान, भीम, अर्जुन, आल्हा-ऊदल, ईंदल और मलखान का भले ही सूत्र रूप में उल्लेख होता है, किंतु इन दोहों को सुनने वालों का मन इतिहास और पुराणों की दुनिया में चला जाता है। वाचिक परंपरा में चले आ रहे इन रावत दोहों की दूसरी विशेषता यह भी कि कई ग्रंथों के पात्रों और कथानकों की सम्यक अभिव्यक्ति होती है—

''राम दुलरुवा लछिमन,
अउ पंडवा दुलरुवा भीम रे।
आल्हा दुलरुवा बघ ऊदल हे,
पिये देवला के दूध रे।।
गए बलरैया बलदेव बिना,
गए अरजुन बिन बान रे।
पोथी हजागे रे सहदेव पंडित के,
राजा करन के दान रे।।''

सर्वमंगल की कामना इन दोहों के महत्वपूर्ण अंश होते हैं। लिखित परंपरा के धर्म ग्रंथों में सभी के सुखी होने की कामना तो भारतीय संस्कृति में प्रसिद्ध है, किंतु लोक-संस्कृति में भी यह भाव कमतर नहीं है। इसमें अक्खड़पन है, फक्कड़पन है, और साथ में अपने ठाकुरों के प्रति, यजमानों के प्रति 'लाख बरीस' जीने की चाहत भी है—

''जइसे भइया लिए दिए,
वइसे लेवव असीस।
अन धन ले घर भरय,
जीऔ लाख बरीस।।
धन गोदानी भुंइया पावा,
पावा हमर असीस हो।
नाती पूत ले घर भर जावै,
जीआ लाख बरीस हो।।''

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि श्रम की थकान और प्राकृतिक विपदाओं से राहत पाने और आने वाले कल के लिए पुनः ऊर्जा प्राप्त करने तथा शासक वर्ग के अन्याय का प्रतिरोध करने की प्रक्रिया ने ही लोक-कलाओं को पल्लवित-पुष्पित किया है। ये तब तक आगे बढ़ती रही है जब तक इनका लोक-जीवन के साथ बना रहा है।

आज यदि हमें आधुनिकता में भी मनुष्यता की तलाश करनी है, तो लोक-संस्कृति के चिर-नवीन अवदान को अपनी आवश्यकता का अंग बनाना पड़ेगा। लोक संस्कृति का शोषण हमारा लक्ष्य नहीं होना चाहिए। जबकि अभी तक यही होता रहा है। हमारी जातीय चेतना के साथ अति सूक्ष्म धरातलों पर ही अब लोक-संस्कृति का सही उपयोग तो दूसरी ओर उसकी सुरक्षा भी हो। ''आज नई शिक्षा पद्धति में 'मुक्त विश्वविद्यालयों में वाचिक परंपरा' समाप्त हो रही है, वहां लिखित परंपरा की शुरुआत हो रही है। दृश्य-श्रव्य माध्यमों का प्रयोग हो रहा है। यह पाश्चात्य तकनीकी पद्धति है, इससे शिष्यगत अज्ञान का हृदय रोग कहां तक शांत होगा नहीं कहा जा सकता। लिखित परंपरा में अभिव्यक्ति के वे माध्यम कहां हैं—जो वाचिक परंपरा में वक्ता की मुद्रा तथा अन्य भंगिमाओं में रहते हैं? फिर भी हमारी वाचिक परंपरा की वाक् वैखरी ही नहीं थी—मध्यमा, पश्यंती तथा परा की भी थी—गुरु शिष्य के बीच की वाचिक परंपरा के भंग होने के साथ-साथ लिखित परंपरा में वह कुछ चला जाएगा। लिखित परंपरा रिक्त परंपरा है—वाचिक परंपरा समृद्ध परंपरा है।''[11] असंख्य लोकगीत और रावत नाच के दोहे इसके प्रत्यक्ष प्रमाण है।

संदर्भ—

1. यादव डॉ. कालीचरण (सं.) —मंड़ई बिलासपुर 1997, कर्मेदु शिशिर का लेख—लोक-संस्कृति और वाचिक परंपरा, पृ. 127
2. तिवारी कपिल (सं.)—चौमासा, भोपाल, अंक 19, डॉ. प्रेमलता शर्मा का लेख—वाचिक परंपरा, पृ. 05
3. यादव डॉ. कालीचरण (सं.)—मंड़ई-1997, पृ. 06
4. यादव डॉ. कालीचरण (सं.)—मंड़ई-1997, रमेश कुंतल मेघ का लेख—मौखिक परंपरा के अनूठे साक्षय, पृ. 01
5. श्रीमद्भागवतगीता 18-73
6. यादव डॉ. कालीचरण (सं.)—मंड़ई-1997, जीवन सिंह का लेख—लोक-साहित्य की सृजनशीलता, पृ. 39
7. दुबे श्याम सुंदर—लोक-परंपरा, पहचान एवं प्रवाह, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पहली आवृत्ति 2004, पृ. 10-11
8. सम्मेलन पत्रिका—लोक-संस्कृति अंक, श्री प्रेम कपूर 'कंचन' का लेख—लोक-नृत्य, पृ. 372
9. कसार जमुना प्रसाद (सं.)—छत्तीसगढ़ी गीत, श्री प्रकाशन, दुर्ग, पृ. 82
10. डॉ. सुधीर शर्मा, डॉ. राजन यादव (सं.) समर्पित पचास वर्ष—राजेंद्र प्रसाद शुक्ल अभिनंदन ग्रंथ, वैभव प्रकाशन, रायपुर, संस्करण 2002, पृ. 509
11. तिवारी कपिल (सं.)—चौमासा अंक-19, डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी का लेख—वाचिक परंपरा, पृ. 09

संतोष यादव, चंद्रिका यादव ग्राम पीपरमाटी, पो.-रूसे, जिला-कबीरधाम (छ.ग.) से प्राप्त रावत नाच के दोहे।

लेखक के निजी संग्रह से।

एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय,
खैरागढ़-491881 (छत्तीसगढ़)

जानकीवल्लभ शास्त्री का संस्मरणात्मक-साहित्यिक विश्लेषण

सीताराम पांडेय

कवि, कथाकार, समालोचक सीताराम पांडेय अवकाश प्राप्त अध्यापक हैं। आठ पुस्तकें प्रकाशित। फिलहाल स्वतंत्र लेखन।

बिहार विश्वविद्यालय के द्वारा जब इन्हें यह कहा गया कि नए निर्मित नियमों के अंतर्गत सरकार का स्पष्ट आदेश है कि जो संस्कृताचार्य, व्याख्याता या प्राध्यापक के पद पर पूर्व से अध्यापन करते आ रहे हैं, उन्हें अब एक निश्चित अवधि के अंदर स्नातकोत्तर की परीक्षा में न केवल बैठने की बाध्यता होगी, अपितु उसमें उत्तीर्णता भी प्राप्त करना अनिवार्य होगा। क्योंकि इस विश्वविद्यालय में आचार्य परीक्षोत्तीर्ण की मान्यता स्नातक के समकक्ष समझी जाती है।

यह सुनते ही स्वाभिमानी संस्कृताचार्य प्राध्यापक की गंभीर मुद्रा दिखाई पड़ी। परंतु, थोड़ी ही देर पश्चात् उन्होंने बड़े गर्वोन्नत भाव से कहा—''परीक्षा देने से पूर्व परीक्षक तो तय कर लीजिए'' मेरी उत्तर-पुस्तिकाओं का परीक्षण करेगा कौन?

इस प्राध्यापक के द्वारा इस तरह अपूर्व-अप्रत्याशित आत्म-विश्वासपूर्ण शैक्षिक चुनौती को विश्वविद्यालय-पदाधिकारियों के द्वारा गंभीरता से लेते हुए परीक्षक-अनुसंधान-प्रक्रिया प्रारंभ कर दी गई। लेकिन आश्चर्य तो तब हुआ, जब स्थानीय प्राध्यापकों से लेकर राष्ट्रीय विश्वविद्यालयों के प्रोफेसर तक उनकी उत्तर पुस्तिकाओं का मूल्यांकन करने की हिम्मत नहीं जुटा पाए? और सभी प्राध्यापक उनकी विशद् विद्वता के समक्ष

आत्म समर्पित होते दिखाई पड़े।

अंततोगत्वा विवश होकर विश्वविद्यालय के शीर्ष पदाधिकारियों के द्वारा परीक्षा में बिना बैठे ही स्नातकोत्तर परीक्षोत्तीर्णता के प्रमाण-पत्र ससम्मान जिन्हें प्रदान किया, वह अपूर्व व्यक्तित्व कोई और नहीं, मुजफ्फरपुर निवासी जाने-पहचाने शिक्षा और साहित्य सम्राट् आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्रीजी थे।

गौरांग तन, मदमस्त-मन, शरीर पर शुभ्र वसन, अंगुठिया बाल, दिव्य-भाल, विशालकाय, अविच्छिन्न-प्रतिभा प्रस्फुटित मुख-मंडल, देखने वालों पर बिना प्रभाव जमाए नहीं छोड़ता? उनकी आकृति और प्रकृति में समन्वयात्मक व्यक्तित्व-बोध स्पष्ट दृश्यमान था। वे प्रकृति के रागात्मक-संबंधों के भी कवि थे। उनका नवनीत सदृश कोमल हृदय, प्राकृतिक अनुराग और सांस्कृतिक सौंदर्य के मधुर राग से परिपूर्ण था।

प्रो. केशरी के शब्दों में—''आनन के इर्द-गिर्द करीने से बिखरे बाल, वस्त्र में लापरवाही, माथे वेद-वेदांत और दिल में सितार का तुनुकतान, विषमताओं का एक बंडल और बिहार का सबसे विद्वान कवि, सुमधुर गायक।'' (Acharya Janki Vallabh Shastri now-a-days is one of the formost bards from Bihar in Hindi literature. He has a musical voice render better services in Hindi

poetical field and attain success among flowers and buds casting scents unparaller from their composition.)

उनके सुखद-सान्निध्य एवं सौम्य-सौजन्य से अज्ञान, नवउदीयमान व्यक्ति न सिर्फ ज्ञानवान बन गए, बल्कि संप्रति परिनिष्ठित विद्वान् के रूप में प्रतिष्ठापित भी दिखाई पड़ते हैं। उनकी संस्कृतनिष्ठ एवं संश्लिष्ट भाषा में काव्यात्मक कमनीय-कौशल के साथ-साथ संवेदनात्मक और समष्टि-परक भाव समाहित है।

आगत-अतिथियों के समुचित सत्कार एवं आदर-आतिथ्य के आग्रह, उनके उन्नत चरित्र का परिचायक था। उनकी कालजयी रचनाओं में जीवन-मूल्यों का शाश्वत स्वर मुखरित है। प्रथम साक्षात्कार में ही उनके प्रखर-पांडित्य और विनम्र व्यक्तित्व से आगंतुकों को उनके अनुकूल बनने में देर नहीं लगती।

बिहार की विस्तृत वाङ्मयता वंदनीया भूमि पर, गया-मंडल मुख्यालय से लगभग पचहत्तर किलोमीटर सुदूर 'ग्राम' 'मैगरा', जिसको कभी संभवतः 'माया' ग्राम भी कहा जाता था की धरती पर पच्चीस जनवरी 1916 ई., तदनुसार माघ शुक्ल द्वितीया को जानकीवल्लभ शास्त्री ने सर्वप्रथम मानव जीवन में पदार्पण किया। हिंदी तिथि के अनुसार ही निरंतर 1949 ई. से आज तक प्रति वर्ष इनकी जयंती 'अमृत-पर्व' के रूप में मनायी जाती रही है।

इनकी प्रारंभिक शिक्षा इसी ग्रामीण-संस्कार के शिक्षालयों से समारंभ हुई। परंतु पिता 'रामानुग्रह शर्मा' की प्रेरणा से हिंदी से हटकर, वे संस्कृत पढ़ने की ओर उन्मुख हुए तथा प्रथम पाठ के रूप में 'अमरकोष' और 'लघु कौमुदी' नामक पुस्तक पढ़नी पड़ी। इनकी माता 'अनुपमा देवी' ग्रामीण महिलाओं में अग्रगण्या, सात्विक और आदर्श महिला थीं। शास्त्रीजी को महान बनाने में इनके मातृत्व की महत्वपूर्ण भूमिका रही।

सन् 1931 ई. में शास्त्रीजी के द्वारा साहित्य विषय से शास्त्री परीक्षोत्तीर्णता प्राप्त करने के पश्चात् वे संस्कृत साहित्य के सृजन, श्रवण में संलग्न हो गए और सहज संस्कृत सुकंठ-गीत एवं उत्कृष्ट रचनाएं लिखने लगे। जिसका प्रकाशन, तात्कालिक-परिवेश में प्रकाशित होने वाली 'भारती' आदि कई अन्य पत्र-पत्रिकाओं में होता रहा।

सर्वप्रथम शास्त्रीजी ने सरल-सुमधुर संस्कृत भाषा में 'काकली' नाम के सद्ग्रंथ की सर्जना कर संस्कृत साहित्य में पूर्णरूपेण प्रतिष्ठापित हो गए। जिसका पद लालित्य और समग्र-सौंदर्य-बोध, संस्कृत साहित्य के महाकवि श्री हर्ष रचित 'नैषधीय चरितम्' के समकक्ष है।

आदरणीय 'निरालाजी' की प्रेरणा से, संस्कृत भाषा के भविष्य को भांपकर उर्वरक भाषा हिंदी साहित्य को, अपनी सशक्त एवं लौह-लेखनी से समृद्ध करने हेतु प्रतिबद्ध हो गए। तब से लगातार, हिंदी माता के मंदिर का एक अनन्य पुजारी के रूप में अहर्निश उसके सृजन, श्रवण एवं सेवा में संलग्न रहे।

उनकी लेखनी के द्वारा साहित्य की विभिन्न-विधाओं में लगभग 'साठ' सद्ग्रंथों के सृजन किए गए। जिनमें रूप-अरूप, तीर तरंग, शिप्रा, मेघगीत, अवंतिका, संगम, उत्पल-दल, बाल-लता, धूपतरी, श्यामा संगीत, सुने कौन नग्मा और राधा (सात सर्गों में विभक्त महाकाव्य) आदि उनकी गेय-कालजयी काव्य-कृतियां हैं।

इस कवि की लेखनी के द्वारा तीन गीति-नाट्य भी लिखे गए। जिनमें 'पाषाणी', 'तमसा', 'इरावती' मुख्य हैं। अन्य नाट्य-कृतियों में—'अशोक वन, सत्यकाम, जिंदगी, आदमी, स्मृति के वातायन, निराला के पत्र, नाट्य सम्राट पृथ्वीराज कपूर, हंस बलाका, कर्मक्षेत्रे-कुरुक्षेत्रे, एक असाहित्यिक की डायरी, अष्टपदी आदि संस्मरण और आत्मकथा के रूप में द्रष्टव्य है। 'कानन', 'अर्पण', 'नीला कमल', 'बांसों के झुरमुट' आदि इनके विशेष चर्चित कहानी संग्रह प्रतिमान हैं तो 'एक किरण सौ झाइयां', 'दो दिन का घोसला' तथा 'कालिदास' उनके उल्लिखित उपन्यासों में समादृत हैं।

उन सृजित साहित्य-संपदाओं में 'राधा' महाकाव्य इनके साहित्योत्कर्ष का सर्वोत्तम साक्षी है। यद्यपि वह प्रणय-काव्य के रूप में परिदृश्य है, फिर भी सौंदर्य-बोध की समग्रता और कलात्मक कथ्य की सजगता में तुलनात्मक स्तर पर, 'प्रसाद' की 'कामायनी' से कमनीय और 'दिनकर' की 'उर्वशी' से उन्नत अवश्य दिखाई पड़ता है।

'कालिदास' महाकाव्यात्मक उपन्यास में कालिदास के चिरंतन सत्य, मौलिक प्रतिभा और शाश्वत सौंदर्य के समवेत अनुभूति की सार्थक अभिव्यक्ति है। लेखक ने इस उपन्यास में 'कालिदास' के विषय में चली आ रही किवंदतियों की दीवार को तोड़कर, एक नया अर्थ प्रदान किया है, जिसमें आदर्शोमुख प्रेमोत्कर्ष की अन्यतम अभ्युक्ति है।

एक स्थान पर 'विद्योत्तमा' अपने प्रियतम 'कालिदास' के द्वारा प्रेमालिंगन के लिए प्रेरित करने पर कहती है—''मुझे लाज लगती है'', इस पर 'कालिदास' कहते हैं—'लाज' इन दिनों बहुत लाज लगने लगी है, कहकर 'कालिदास' ने जैसे एक ऐसे कमल-वन को आंख भर देखा, जिसमें कहीं भौरों की पांत थी, कहीं हंस था और कहीं चकवा-चकई।''

इसमें एक ओर कामोन्मुख 'कालिदास' के द्वारा मर्यादा के मेड़ को तोड़कर, प्रियतमा के प्रेम-पाश में आबद्ध होने की आतुरता अंतर्दृश्य है, तो दूसरी ओर उनकी 'प्रेमिका' 'विद्या' भी वर्षों से संचित अपने सतीत्व-संपदा को प्रियतम के पैरों पर ससम्मान समर्पण हेतु हार्दिक संकल्पित है, परंतु मजनुओं की महफिल में नहीं, मर्यादा के मानक मंदिर में।

क्योंकि सामाजिक धरातल पर खुले प्रेम करने की व्यावहारिक विवशता होती है। लाज, भारतीय रमणियों के लिए उसका आवरण होता है और होता है वह पवित्र प्रेम का शाश्वत परिधान। अतएव परिधानित प्रेम ही एकांत, शांत और सुखांत माना जाता है। यह पारस्परिक अंतर्द्वंद्व प्रेमोन्नयन का परमानंद परिवेश है।

अतः संस्कृति के संपोषक सम्मानीय शास्त्रीजी के द्वारा 'कालिदास' की नायिका के नुपूर का निनाद मर्यादा के महलों में मुखरित करने का पावन प्रयास पूर्णतः प्रशंसनीय माना जाएगा।

कवि के द्वारा लिखी गई 'बांसुरी' शीर्षक कविता श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के उपवास शिथिल प्राणों की वाणी है, जो मीरा को लक्ष्य कर लिखी गई है।

''किसने बांसुरी बजाई
जनम-जनम की पहचानी
वह तान कहां से आई?
अंग-अंग फूले कदंब-सम
सांस-झकोरे झूले,
सूखी आंखों में 'यमुना' की
लोल लहर लहराई
किसने बांसुरी बजाई।''

कवि ने इस गीत में परमात्मा के लिए उठती रहने वाली आत्मा की सनातन एवं चिरंतन जिज्ञासा के रहस्य को उद्‌घाटित करने का प्रयास किया है।

कर्म-कोलाहल के व्यूह में फंसी आत्मा रह-रह कर विकल हो उठती है, वैसे ही जैसे कृष्ण की मुरली ध्वनि की ब्रज-वनिताएं। अज्ञानजन्य स्मृति के कारण आत्मा यह नहीं जान पाती कि यह वंशी की स्वर लहरी कहां से आ रही है और कौन बजा रहा है? किंतु, वह उसके लिए आकुल-व्याकुल अवश्य है। इसी बेबसी का अत्यंत ही मार्मिक चित्रण कवि ने इस गीत में प्रस्तुत किया है।

बांसुरी की ध्वनि परमात्मा की ध्वनि है। सामान्यजन की नहीं, फिर सांसारिकता के आच्छादन में दोलायमान होने वाली माया के हिंडोले पर झूलने वाली तथा कर्म की जटिलता में उलझने वाली आत्मा को बांसुरी की आवाज सुनकर यानी परमात्मा की पुकार सुनकर बेकली और बेचैनी हुई। फिर क्या था? 'बांसुरी' की फूक ने हृदय में हूक जगा दी।

तान के सुर-लय के हिंडोलों पर आत्मा झूलने लगती है और उसकी सूखी आंखों में गोपिकाओं की तरह यमुना की लोल-लहरियां लहराने लगती हैं तभी तो कवि को कहना पड़ता है कि–

''कैसे इतनी कठिन रागिनी
कोमल सुर से गाई
किसने बांसुरी बजाई।''

अर्थात् आत्मा की दिव्यानुभूति, रहस्यानुभूति माया के संसार से पृथक करने के लिए तथा परमात्मा की सत्ता में विलीन होने के लिए दर्द और पीड़ा का प्रतीक बन जाती है।

"Sound over flows
Listners Brain
So rure that joy is most pain."

हिंदी गजलों के संवेदनात्मक सर-जमीं पर शास्त्रीजी ने अपनी साहित्यिक उर्वरता से न केवल एक नया तजुर्बा प्रदान किया, बल्कि आधुनिक गजलकारों के लिए एक नई दृष्टि भी दी है–

''जिन्होंने हो तुझे देखा,
नयन वे और होते हैं,
कि बनते बंदना के छंद,
क्षण वे और होते हैं।
जहां गुलजार गुलशन क्या अजब,
सब फूल तेरे हैं,
लगे पर जो गले तेरे,
सुमन वे और होते हैं।''

वर्तमान सामाजिक व्यवस्था को बिखरते देखकर व्यंगात्मक लहजे में उन्होंने लोगों को ऐसे भ्रष्ट, नपुंसक नेताओं और रंगीन चरित्र रखने वाले रहबरों से सचेत रहने का संकेत करते हुए कहा–

''कुपथ-कुपथ जो रथ दौड़ाता,
पथ निर्देशक वह है,
लाज, लजाती जिसकी कृति से,
श्रुति उपदेशक वह है।
जनता धरती पर बैठी है,
नभ में मंच खड़ा है,
जो है जितना दूर मही से,
उतना वही बड़ा है।''

एक जमाने में, दिनकर, बच्चन, नेपाली और जानकीवल्लभ शास्त्री कवि-मंच के महत्वपूर्ण आकर्षण थे। इनके विषय में बेनीपुरीजी ने कहा है–''एक अशांत आत्मा, जिनके कंठ में कोमल स्वर, मस्तिष्क सपक्ष-कल्पना और हृदय में भावना का सागर... जहां एक ही साथ समुद्र का हा-हाकार, पंछी का कलरव और वंशी की तान।''

इनके प्रिय कवि थे, हिंदी में 'निराला', उर्दू में 'गालिब', बंग्ला में 'रवींद्रनाथ', संस्कृत में 'कालिदास' और अंग्रेजी में 'शेली'। प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, आधुनिकता के समन्वित व्यक्तित्व उनके साहित्य में सन्निहित हैं।

उनकी पूर्व पत्नी चंद्रकला देवी, एक पुत्री पैदा करने के पश्चात् सन् 1946 ई. के आसपास अचानक असमय ही काल-कवलित हो गई। शास्त्रीजी उसके बाद मुजफ्फरपुर शहर से सटे 'ग्राम' 'तुर्की' की रहने वाली भद्र-कुलीन महिला छाया देवी को पुनः अपने शाश्वत-जीवनसाथी के रूप में स्वीकार तो कर लिया, लेकिन उनसे कोई संतान संभव नहीं हो सकी।

अचानक हृदय गति रुक जाने के कारण 7 अप्रैल, 2011 ई. को, सरस्वती के वरद् पुत्र

इस महामानव का असमय ही महाप्रयाण हो गया। जिसके फलस्वरूप एक-एकड़ में फैला 'निराला-निकेतन' छाया देवी की इच्छा के अनुरूप न्यास बोर्ड के सदस्यों के द्वारा संचालित हो रहा है।

आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री को उनके जीवन-काल में मिले सम्मान, मेडल, प्रशस्ति-पत्र, प्रतीक चिह्न और प्रमाण-पत्रों की भरमार है, परंतु, उसमें प्रमुख रूप से उन्नीसवीं सदी के अंतिम दशक में और पुनः बीसवीं सदी के प्रथम दशक में भारत सरकार के द्वारा प्रदत्त 'पद्मश्री सम्मान', जिसे आचार्यजी ने यह कहते हुए लेने से अस्वीकार कर दिया कि ''यह सम्मान बहुत पहले मेरे शिष्य को मिल चुका है। अतः अब अधिक विलंब हो गया मेरे लिए यह स्वीकारोचित नहीं है।''

पटना (बिहार) से प्राप्त 'राजेंद्र शिखर-सम्मान', भोपाल (म.प्र.) से प्राप्त 'दयावती सम्मान', उत्तरप्रदेश से प्राप्त 'भारत-भारती' सम्मान, हाजीपुर से पटना के बीच गांधी सेतु निर्माण काल में प्रदत्त 'राजभाषा सम्मान' जिसे यह कहते हुए शास्त्रीजी ने लौटा दिया था कि गंगा-सेतु के निर्माण में शहीद होने वाले अभियंताओं और मजदूरों को यह सम्मान मिलना चाहिए।

इसके अतिरिक्त बनारस हिंदू विश्वविद्यालय से मिले पांच और तीन अन्य स्थानों से प्राप्त, कुल आठ मेडल आज भी 'निराला-निकेतन' में सुरक्षित हैं। जिसमें एक रवींद्रनाथ टैगोर की मौजूदगी में आयोजित संगीत-समारोह में दिया गया था। संस्कृत विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति आचार्य किशोर 'कुणाल' के हाथों दी गई 'डीलिट्' की मानद उपाधि आदि भी वहां परिदृश्य है।

अधिकांश लोगों का व्यक्तित्व सम्मान प्राप्ति के पश्चात् समुन्नत, सुविस्तार एवं सुशोभित होता है। किंतु, साहित्य-शिखर-पुरुष आचार्य शास्त्री के विराट् व्यक्तित्व एवं गर्वोन्नत स्वाभिमान के समक्ष, सामाजिक, साहित्यिक या किसी तरह के प्राप्त बड़े-बड़े सम्मान भी बौना साबित होते रहे हैं। उन्होंने अपने वैयक्तिक स्वार्थ के लिए भी सत्ता से समझौता नहीं किया। और जीवन-पर्यंत स्वतंत्र लेखन का अविराम संचालन करते रहे। यह उनके जीवन की सबसे बड़ी विशेषता थी।

सन् 1973 ई. में द्वारिकानाथ हाईस्कूल, मुजफ्फरपुर, माध्यमिक परीक्षा का मूल्यांकन केंद्र था, जिसमें 'आचार्यश्री' संस्कृत विषय के अंतर्गत प्रधान परीक्षक के पद पर आसीन थे। उनके आठ सह-परीक्षकों में स्वयं मैं भी शामिल था। समयानुसार शास्त्रीजी प्रकोष्ठ में कभी संस्मरण तो कभी कविता ओर कभी प्रेरक-प्रसंग सुनाकर, परीक्षकों को प्रमुदित करते रहते थे। इसी क्रम में—

''चलता मैं आठों याम रहा,
मेरे पथ में न विराम रहा।
कुछ दूर और, कुछ दूर और
करता मैं आठों याम रहा।।''

उक्त काव्यात्मक उक्ति के श्रवणोपरांत किसी ने उस जीवन मूल्योत्कर्ष उद्बोधन-परक कविता के सर्जनोचित-काल का संदर्भ जानने की जिज्ञासा जाहिर कर दी। वे एक क्षण के लिए शांत जरूर हो गए, लेकिन शीघ्र ही उस कविता से संबंधित संस्मरण सुनाने लगे—

सन् 1940 ई. के आसपास मैं अपने गांव मैगरा से मुजफ्फरपुर आया। धर्म समाज संस्कृत महाविद्यालय में साहित्याध्यापक के पद पर मेरी नियुक्ति भी हो गई तथा मैं छात्रवास में ही अपना आवास बनाकर अवस्थित हो गया।

सन् 1952 ई. के आस-पास मैंने उक्त महाविद्यालय की शैक्षणिक सेवा से त्याग-पत्र देकर स्वतंत्र हो गया। तत्पश्चात् गौहाठी महिला महाविद्यालय के अंतर्गत स्नातक में हिंदी अध्यापन करने हेतु अंतर्वीक्षा में शामिल होने की आत्मेक्षा से तेइस रुपये के रेल टिकट लेकर मैंने यात्रा की।

गच्छंती गाड़ी के गवाक्ष से बाह्य-जगत का अवलोकन से ऐसा लग रहा था, जैसे सारी सृष्टि पीछे की ओर क्षिप्र गति से छूटती जा रही है और मैं अविराम पथ पर अपरिवर्तित गति से तेज रफ्तार में अहर्निश आगे की ओर बढ़ता जा रहा हूं। इसी गत्यात्मक अनुभूत क्षणों की सद्यः कलात्मक अभिव्यक्ति, वह कविता है।

शास्त्रीजी ने पुनः कहा—इसके बाद क्या हुआ? सो भी सुन लो? गौहाठी में गाड़ी रुक गई। उतर कर मैंने स्टेशन से शहर की सड़कों पर बढ़ा ओर मेरी आंखें वहां टिक गईं, जहां प्रकृति के प्रांगण में प्रहरी के रूप में पहरा दे रहे उन पहाड़ों की हिमाच्छादित शुभ्र चोटियां, मरकत मणि जैसी मढ़ी हुई मनमोहक लग रही थी। गगन में घटा की छटा के मध्य मदमस्त मेघों का उन्मुक्त नर्त्तन, न केवल नयनाभिराम लग रहे थे, बल्कि रुक-रुक कर वर्षा के बौछार से तापित तृषित धरती को भी तृप्त करते दिखाई पड़ रहे थे।

सच पूछो, तो यहां के प्राकृतिक सौंदर्य, मेरी प्रथम यात्रा को परमानंद कर परवान चढ़ा दिया। तब मैं शनैः-शनैः इतस्ततः परिभ्रमण करता हुआ विलंब से गंतव्य महाविद्यालय में पहुंचा। जहां पूर्व से ही हिंदी-प्रतिष्ठा-प्रकोष्ठ में अभ्यर्थीगण छात्रों के बीच अध्यापन के माध्यम से अंतर्वीक्षा दे रहे थे।

वहां एक भी उपवेशनासन रिक्त नहीं था। हां, एक काष्ठासन रिक्त अवश्य दिखा, वह भी अंतर्वीक्षकों की पंक्ति में। मैं जाकर बैठ गया। लगभग चार बजे, आगत अभ्यर्थियों के अंतर्वीक्षोपरांत किसी ने मुझसे पूछा—''आप कौन हैं?'' मैंने कोई उत्तर नहीं दिया। पुनः दूसरे ने पूछा—''आप अभ्यर्थी हैं क्या?'' मैंने कहा—आप जो समझें। पुनः तीसरे ने पूछा—''यदि आप अभ्यर्थी हैं तो आपके शैक्षणिक प्रमाण-पत्र आदि कहां हैं?'' मैं

पत्रिका पढ़ने में मशगूल था। अतः कोई उत्तर नहीं दे सका। चौथे अंतर्वीक्षक ने संदेहास्पद दृष्टि से पूछा—''क्या योग्यता है आपकी?'' मैंने कुढ़कर कहा, ''अपर परीक्षा पास हूं।'' इस पर पांचवें ने तो बड़े व्यंग्त्यात्मक लहजे में मुझे बोर बनाना चाहा—''यदि आपको बी.ए. में हिंदी पढ़ाने के लिए भेज दिया जाए, तो क्या, आप वहां हिंदी पढ़ा सकते हैं?'' इस पर मेरा स्वाभिमान स्वतः स्फूर्त हो गया और मैंने गौरवोन्मत भाव से कहा—''यों तो मैं नहीं कह सकता कि बी.ए. में हिंदी पढ़ा सकता हूं या नहीं, लेकिन मेरी लिखी हुई कविताएं, एम.एम. में पढ़ाई जाती हैं।''

यह सुनकर उपस्थित लोग मुझे आश्चर्य की निगाह से निहारने लगे। लेकिन शीघ्र ही अंतर्वीक्षकों के साथ मेरा परिचय-पहचान हो गई। उनके द्वारा मुझे उस रिक्त स्थान पर स्थायी रूप से अध्यापन करने हेतु पूर्णाग्रह किया गया लेकिन मेरा वहां रहने का कोई इरादा नहीं था। अतः वहां से मैं स्टेशन चला गया और ट्रेन के द्वारा पुनः वापस अपने आवास मुजफ्फरपुर चला आया।

पुनः किसी अन्य दिन एक आरक्षी, मूल्यांकन प्रकोष्ठ में पहुंच कर संबंधित छात्र के लिए अधिकांक उपलब्ध करवाने हेतु परीक्षक से अनुरोध किया। इस अवैध अनुरोध को उन शिक्षकों ने न केवल अस्वीकार कर दिया बल्कि इसकी शिकायत केंद्राधीक्षक से करने का उपक्रम भी कर रहे थे कि वह आरक्षी इस बात को जानकर क्षिप्र गति से उल्टे पांव पलायन कर गया।

इस दृश्य को देख शास्त्रीजी को भी पुलिस-परक-प्रेरक प्रसंग का स्मरण हो गया और अन्य दिनों की तरह पुनः रोचक संस्मरण सुनाने लगे—

मधुमास का महीना था। पूनम का मनमोहक चांद, अपनी चमचमाती चांदनी को अंबर से अवनि तक बिछाकर चमत्कृत कर रहा था। रात्रि के करीब दस बजे। कवि गोष्ठी से गजल गाकर मैं त्रिपादीय वाहन के द्वारा चतुर्भुज स्थान चौराहे पर चला आया। यहां न जाने क्यों? रात्रि की खामोशी खौफनाक लग रही थी। अनावश्यक आरक्षियों के द्वारा वहां परिभ्रमण का परिदृश्य भी प्रतिकूल लग रहा था। लेकिन इससे मुझे क्या लेना-देना।

वहां से मैं अपने आवासोन्मुख हो गया। परंतु कुछ ही पद गमनोपरांत मुझे अकस्मात् एक खाकी वर्दीधारी व्यक्ति ने यथा स्थान रुकने हेतु ऊंचे स्वर में संकेत करता हुआ, मेरे समीप समुपस्थित होकर सवालों की झड़ियां लगा दी। मैं अल्पकाल के लिए अवाक् हो गया, लेकिन उसके कंधों पर चिह्नावलोकन से यह समझने में मुझे कठिनाई नहीं हुई कि यह व्यक्ति आरक्षी-अधीक्षक है।

उसने मुझसे पूछा—''आप कौन हैं?'' मैंने आश्चर्य भाव से कहा—''आप देख तो रहे ही हैं कि मैं एक मनुष्य हूं।'' पुनः उसने पूछा—''आप क्या करते हैं?'' मैंने उन्मुक्त होकर उत्तर दिया—''अध्यापन करता हूं। इतनी रात्रि बीते यहां क्या कर रहे थे? मैंने उसके इस व्यर्थ के विवादों से बचने के लिए मूक हो जाना ज्यादा महत्वपूर्ण समझा।

इस पर पुलिस कप्तान ने मुझसे कहा—इस इलाके में नौ बजे रात्रि के बाद किसी को भी अनावश्यक घूमने-फिरने की अनुमति नहीं है? भले वह कितना भी बड़ा व्यक्ति क्यों न हो। लेकिन, मैं आपकी आकृति और आदमीयत को देखकर आपको जमानत पर मुक्त कर सकता हूं, बशर्ते इस मुहल्ले का कोई व्यक्ति इस वक्त आपका जमानतदार बनने को तैयार हो जाए?

मैंने स्वाभिमानपूर्वक उत्तर दिया—''यह तो मैं नहीं बता सकता कि अभी इस मुहल्ले का कोई आदमी मेरा जमानतदार बनने के लिए तैयार हो सकता है या नहीं, परंतु यह पूर्ण विश्वास के साथ कह सकता हूं कि इस शहर के लगभग संपूर्ण शरीफों की संख्या में एक-एक आदमी मेरा बेलर बनने को तैयार हो सकता है?

तदुपरांत मुझे चतुष्पदीय लघु वाहन पर बैठाकर, इस शहर के सबसे शरीफ एवं रमणा मुहल्ला के रईस उमाशंकर बाबू के आवास पर ले आया, जहां उनके द्वारा सर्वाधिक सम्मान मुझे देते हुए देखकर एस.पी. मेरे प्रति अनभिज्ञता के अंधकार में इस विवाद को उत्पन्न मानते हुए न केवल पश्चात्ताप करने लगा अपितु एतदर्श मेरे समक्ष क्षमा याचनोन्मुख भी दिखाई पड़ा, भविष्य में मेरे सम्मान और संपदा की सुरक्षा का संकल्प लेते हुए मुझे अत्यादर के साथ उसी वाहन में बैठाकर मेरे आवास पर पहुंचा दिया।

पुनः किसी दूसरे दिन रामदयालु सिंह महाविद्यालय के एक प्रोफेसर आदरणीय शास्त्रीजी से अपनी किसी पुस्तक की भूमिका लिखवाने निराला-निकेतन आए। शास्त्रीजी ने उससे विशुद्ध व्यंग्यात्मक लहजे में कहा—''मैं आजकल अस्वस्थ चल रहा हूं। बड़े! (अपनी पत्नी को कहते हैं) अब देख-भाल करने में कंजूसी करती हैं। इस पर उस प्रोफेसर ने 'हां' में 'हां' मिलाते हुए कहा—''यह तो अच्छी बात नहीं है? इतना कहना था कि शास्त्रीजी का दांपत्य-शौर्य जाग उठा और उन्होंने अंदर की ओर आवाज दी—बड़े! मेरी छड़ी तो लाओ। यह संस्कारहीन आदमी मुझसे भूमिका लिखवाने आया है?

यह सुनते ही वह प्रोफेसर तीव्रगति से उल्टे पांव पलायन कर गया। सरस दांपत्य जीवन की यह मर्यादा शास्त्रीजी ने मृत्युपरांत निभाई। यह महान उदाहरण आज के जलते एवं दरकते दांपत्य जीवन के लिए न केवल प्रेरक है, बल्कि अनुकरणीय भी है।

रामबाग चौरी, पोस्ट-रमणा,
जिला-मुजफ्फरपुर-842002 (बिहार)

भक्ति की तुलसी दृष्टि : भवभीति, अनुरक्ति और मुक्ति

प्रो. गिरीश्वर मिश्र

प्रोफेसर गिरीश्वर मिश्र दिल्ली विश्वविद्यालय में प्रोफेसर और मनोविज्ञान विभाग के पूर्व प्रमुख और कला संकाय के पूर्व डीन के रूप में कार्यरत रहे हैं। मनोविज्ञान के साथ-साथ विभिन्न विषयों पर पच्चीस से अधिक पुस्तकें प्रकाशित। मनोविज्ञान अकादमी के राष्ट्रीय संयोजक और अध्यक्ष।

भारतीय इतिहास में बारहवीं से पंद्रहवीं सदी के बीच का काल पूर्व मध्यकाल है जिसमें रामानुज, माधव, निंबार्क, वल्लभ चैतन्य ने भक्ति के चार प्रमुख संप्रदायों का प्रवर्तन किया। यह प्रखर परंपरा आलवार, आंडाल, चंडीदास तथा नरसी मेहता आदि द्वारा संचालित हुई, जिसने समूचे भारत को भावात्मक एकता के सूत्र में बांधा। डॉ. राम विलास शर्मा इस प्रवृत्ति को राष्ट्र और प्रदेश दोनों ही स्तरों पर एकता के परिचायक मानते हैं। भक्ति का यह रूप एक ऐतिहासिक और देशव्यापी घटना थी, जिसने एक आंदोलन के रूप में व्यापक भारत को प्रभावित किया। भारत के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में भक्ति के स्वर मुखरित हो रहे थे। गोस्वामी तुलसीदासजी ने मुगलकाल में सामंती व्यवस्था के प्रतिरोध या उसके प्रति विद्रोह के रूप में ईश्वर भक्ति को स्थापित किया। हिंदीतर और हिंदी सभी भाषाओं के साहित्य में भक्ति की उपस्थिति उनकी पारस्परिक निकटता की ओर संकेत करती है।

रामकथा के विविध पक्षों को सरस मधुर पदावली में लोकभाषा के माध्यम से प्रस्तुत कर सहज रूप से भक्ति-प्रतिपादन की गोस्वामीजी की दृष्टि एक विशिष्ट किस्म की मानवीय पक्षधरता के साथ उपस्थित होती है। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की जो गाथा 'रामचरितमानस' में हमारे सामने आती है, वह एक प्रकार के व्यावहारिक आदर्शवाद से अनुविद्ध है। संत और सुकवि गोस्वामी तुलसीदास ने भक्ति मार्ग द्वारा एक संतुलित दृष्टिकोण प्रदान करने का प्रयास किया और जनमानस को आलोकित किया। सरस, कोमल, संश्लिष्ट पद-योजना, लय छंद योजना, बिंब योजना वाली यह कृति लोक संस्कृति का अभिन्न अंग बन गई। तुलसीदास जी ने भक्ति के अनुकीर्तन में मानवीय करुणा को प्रस्तुत किया और साथ ही सामाजिक कर्तव्य बोध की भी स्थापना की। उनका मानस जन-जन का मानस बन गया। मानस की गेयता उसे कर्णप्रिय बनाती है और मुग्ध कर लेती है। सांगरूपक के साथ इस मानस का ताना-बाना कैसा है, तुलसीदास जी के ही शब्दों में–

''पुरइनि सघन चारु चौपाई,
जुगुति मंजु मनि सीप सुहाई।
छंद सोरठा सुंदर दोहा,
सोइ बहुरंग कमल कुल सोहा।
अरथ अनूप सुभाव सुभासा,
सोइ पराग मकरंद सुबासा।
सुकृत पुंज मंजुल अलि माला,
ज्ञान बिराग बिचार मराला।
धुनी अवरेब कवित गुन जाती,
मीन मनोहर ते बहुभांती।
अर्थ धरम कामादिक चारी,
कहब ग्यान बिज्ञान बिचारी।
नव रस जप तप जोग बिरागा,
ते सब जलचर चारु तड़ागा।
सुकृती साधु नाम गुन गाना,
ते बिचित्र जल बिहग समाना।
संतसभा चहुं दिशी अवंराई,
श्रद्धा रितु बसंत सम गाई।
भगति निरूपण बिबिध बिधाना,
छमा दया दम लता बिताना।
सम जम नियम फूल फल ग्याना,
हरि पद रति रस बेद बखाना।
औरव कथा अनेक प्रसंगा,
तेइ सुक पिक बहुबरन बिहंगा।।''

कहना न होगा कि यह काव्य वितान अशेष और सात्विक भारतीय दृष्टि का सार तत्व है और भक्ति रस का महोदधि है।

भारत में भक्ति की आध्यात्मिक परंपरा है और साथ ही वह सामाजिक-सांस्कृतिक परंपरा का अंग भी है। भक्ति का विवरण नाना रूपों में मिलता है। उसे धर्मविशेष और योगविशेष भी माना गया है। वैसे सभी धर्मों में भक्ति का कोई रूप अवश्य मिलता है। प्रवृत्ति और निवृत्ति या कहें अभ्युदय और निःश्रेयस दो मुख्य भक्ति प्रवृत्तियां मिलती हैं। दोनों ही विधाओं में यही प्रतीत होता है कि भक्ति का प्रयोजन मनुष्य अर्थात् एक लौकिक सत्ता को अलौकिक सत्ता से जोड़ना है। मनुष्य का समर्पण और लोकोत्तर का अनुग्रह, ये दो पक्ष हैं। विस्तार में जाएं तो श्रद्धा, उपासना, ज्ञान तथा प्रपत्ति इसके अंग के रूप में विकसित हुए हैं। गोस्वामीजी अपनी दृष्टि से अनेक स्त्रोतों से मंथन कर नवनीत रूप में नानापुरातननिगमागमसम्मत कह कर

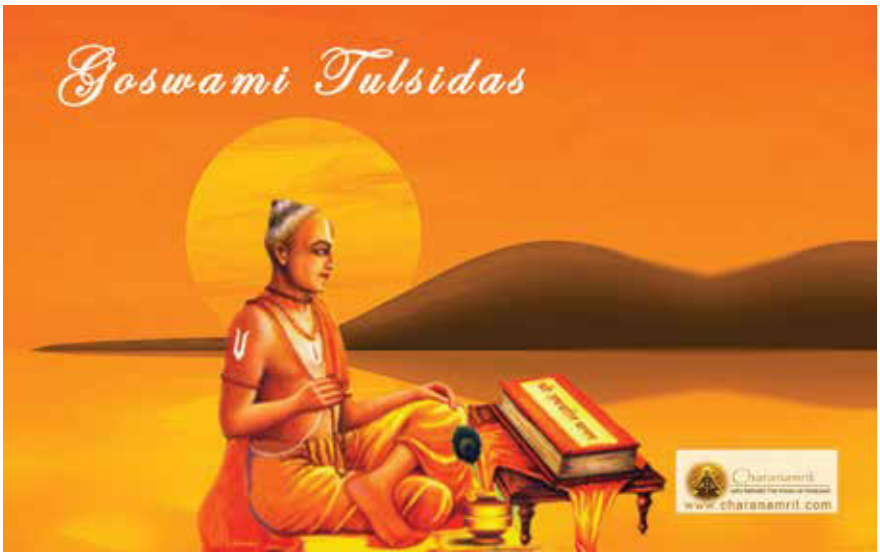

हमें उपलब्ध कराया है। उन्हें पूर्व-परंपरा का सचेत बोध है और उसके देय को उन्होंने प्रगतिपूर्वक स्वीकार किया है।

भक्ति शब्द मूलतः 'भज' धातु से बना है, जो बांटने या अपना हिस्सा पाने के अर्थ को बोधित करता है। इस दृष्टि से 'भक्ति' एक अंश हुआ और उसे रखने वाला पात्र 'भक्त' हुआ। 'भज सेवायाम' धातु से निष्पन्न मानें तो भक्ति का अर्थ 'सेवा' बनता है। भक्ति, जैसा कि शांडिल्य मुनि ने कहा है, ''सा परानुरक्तिरीश्वरे' अर्थात् ईश्वर के प्रति उत्कट और अहैतुक बिना किसी शर्त के समर्पण है। ईश्वर का जो भी रूप लिया जाए उसके प्रति समर्पण अपेक्षित है। नारद भक्तिसूत्र भी ऐसा ही कहता है—''सा त्वस्मिन परमप्रेमरूपा'' अर्थात् उस परमेश्वर में आत्यंतिक प्रेमभाव या प्रीति ही भक्ति है। फिर जोड़ते हुए आगे कहा, ''अमृतस्वरूपा च'' अर्थात वह प्रीति अमृतस्वरूप है। अतः भक्ति से तात्पर्य ईश्वर की सेवा, उनके प्रति दृढ़ अनुराग से है। भक्त तरह-तरह के व्यवहार और आचरण द्वारा आराध्य ईश्वर की वंदना करता है और स्वयं को उनसे जोड़ता है। श्रीमद्भागवत का एक बड़ा ही प्रसिद्ध श्लोक है, जो विविध प्रकार की भक्ति का उल्लेख करता है, जिसमें भक्ति की साधना के प्रकारों या मार्गों का निर्देश किया गया है—

''श्रवणं कीर्तनं विष्णो स्मरण पादसेवनं।
अर्चन वंदनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनं।।''

भक्ति की उक्त बहुमार्गी अवधारणा का सांगोपांग प्रतिफलन गोस्वामी तुलसीदासजी की काव्यधारा में उपस्थित होता है। शबरी के प्रसंग में भगवान राम बताते हैं—

''प्रथम भगति संतन कर संगा,
दूसरि रति मम कथा प्रसंगा।
गुरु पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान
चौथि भगति मम गुन करइ कपट तजि गान
मंत्र जाप मम दृढ बिस्वासा,
पंचम भजन सो बेद प्रकासा।
छठ दम सील विरति बहु करमा,
निरत निरंतर सज्जन धरमा।
सातव सम मोहि मय जग देखा,
मोतें संत अधिक करि लेखा।
आठव जथालाभ संतोषा,
सपनेंहु नहिं देखइ परदोषा
नवम सरल सब सन छलहीना,
मम भरोस हिय हरष न दीना।।''

रामचरितमानस में विभिन्न स्थलों पर भक्ति के उपर्युक्त प्रकारों के उदाहरण विभिन्न चरित्रों में मिलते हैं। अनेक सुधीजनों के मत में भरत का चरित्र सभी प्रकार के भक्तिरूपों का निधान हैं। भक्ति का प्रतिपादन गोस्वामी जी जिस रूप में करते हैं, वह भक्ति संसार-यात्रा के मार्ग पर पाथेय है न कि अलग-थलग रह कर निजता और तन्मयता में लीन होकर पलायन। वह ठोस भौतिक और सामाजिक आधारों और व्यवस्थाओं के उद्धार और मंगल से भी जुड़ती दिखती हैं। भक्ति एक तरह का अनासक्त कर्म है और धर्मानुकूल आचरण की जीवन शैली है और गोस्वामीजी स्वयं उस प्रकार के भक्तिमय जीवन के निर्देशन हैं। वे उस भक्ति के जीवंत प्रमाण भी है जिसका प्रतिपादन उन्होंने किया है। वे कहते हैं—

''नामु राम को कलपतरु
कलि कल्यान निवासु।
जो सुमिरत भयो भांग
तें तुलसी तुलसीदासु।।''

भक्ति की पावन धारा को गोस्वामीजी ने उदार भाव से बांटा है और लोकभाषा को माध्यम बनाकर राम की रस रंजित कथा को जन-जन तक निर्बाध पहुंचाया है। मानस जन-जन के मन में प्रतिष्ठित है और उसे सार्वजनीन स्वीकृति मिली है। गोस्वामीजी विशाल हृदय से समस्त सृष्टि में राम भाव की उपस्थिति मानते हैं—

''जड़ चेतन जग जीव जगत
सकल राममय जानि।
बंदउ सबके पदकमल सदा
जोरि जुगि पानि।।''

राम अर्थात् ईश्वर के स्वरूप और तुलसीदास जी की भक्ति के स्वरूप को ले कर अनेक मत हैं कि वह द्वैतवादी हैं या अद्वैतवादी। इस शंका को लेकर ऊहापोह है। इस पर कुछ बात आगे कहेंगे पर इस प्रसंग में गोस्वामीजी का विचार मननीय है—

''एक अनीह अरूप अनामा
अज सच्चिदानंद पर धामा

ब्यापक बिस्वरूप भगवाना
तेहिं धरि देह चरित कृत नाना
सो केवल भगतन हित लागी
परम कृपाल प्रनत अनुरागी
जेहि जन पर ममता अति छोहू
जेहिं करूना करि कीन्ह न कोहू
गई बहोर गरीब नेवाजू
सरल सबल साहिब रघुराजू
बुध बरनहिं हरि जस अस आनी
करहिं पुनीत सुफल निज बानी
तेहिं बल मैं रघुपति गुन गाथा
कहिहऊ नाइ राम पद माथा।''

तुलसीदासजी सकल जगत के कल्याण की कामना करते हैं–

''कीरति भनिति भूति भलि सोई
सुरसरि सम सब कह हित होई।''

पर यह भी वह कहते हैं–

''राम सुकीरति भनिति भदेसा
असमंजस अस मोंहि अंदेसा
तुम्हरी कृपा सुलभ सौ मोरे
सिअनि सुहावनि टाट पटोरे।।''

कहना न होगा कि आज मानस शिक्षित अशिक्षित सब के लिए है और भक्ति के अवलंबन के साथ सबका आधार बन जाता है जहां पहुंच कर श्रांत और क्लांत मनुष्य को 'विश्राम' मिलता है। गोस्वामीजी को 'विश्राम' पद बड़ा प्रिय है और वे उसका खूब उपयोग करते हैं। वे कहते हैं–

''बुध बिश्राम सकल जनरंजनि
राम कथा कलि कलुष बिभंजनि।''

लोगों को सहज सुख नहीं मिलता, क्योंकि इंद्रिय विषयों में निमग्न होने पर बेचैनी ही हाथ लगती है। भवसागर में निमग्न व्यक्ति को भार ही भार है, उसे श्रम ही श्रम का अनुभव होता है। जब मनुष्य सिर्फ भौतिक सुखों की ओर दौड़ता है तो उसे दुःख ही दुःख

मिलते हैं–

''जतन अनेक किए सुख कारन,
हरिपद बिमुख सदा दुःख पायो।''

परंतु जब ईश्वर का प्रसाद मिलता है तो सभी तरह के क्लेश दूर होने लगते हैं–

''तव प्रसाद प्रभु मम उर माही
संसय सोक मोह भ्रम नाहीं।''

राम के स्मरण से संसार के सभी श्रम-भार नष्ट हो जाते हैं–''सुमिरत जाहि मिटहि श्रम भारू।''

तुलसीदासजी अनिर्वाच्य विश्राम को ही परम सुख मानते हैं–

''एहि बिधि कहत राम गुनग्रामा,
पाबा अनिर्वाच्य विश्रामा।''

रामकथा का श्रवण सभी प्रकार के श्रम से क्लेश से विरत करती है–

''राम चरित मानस एहि नामा,
सुनत श्रवण पाइअ विश्रामा।
राम चरित सर बिनु अन्हवाए
सो श्रम जाई न कोटि उपाएं।''

श्रीराम की भक्ति का लाभ है, 'भवरस-विरति'–

''सीय राम पद प्रेमु
अवसि होई भवरस विरति।''

ऐसा होना स्वाभाविक भी है, क्योंकि राम 'आनंदसिंधु' हैं और हैं 'सुखधाम'–

''जो आनंद सिन्धु सुखरासी
सीकर तें त्रैलोक सुपासी।
सो सुखधाम राम अस नामा

अखिल लोक दायक बिश्रामा।''

राम की यह भक्ति उनके प्रति अनुराग का आधार है। भक्त का अविचल विश्वास और ईश्वर का अनुग्रह। उसी पर यह अवलंबित होती है–

''बिनु विश्वास भगति नहिं
तेहि बिनु द्रवहिं न रामु।
राम कृपा बिनु सपनेंहु
जीव न लह बिश्रामु।।''

तुलसीदासजी सबको विश्राम देना चाहते हैं–

''रामचरित मानस अहि नामा
सुनत श्रवण पाए विश्रामा।''

गोस्वामीजी अपनी क्षमता के बारे में संदेह रखते हैं और कुछ दावा नहीं करते, वे बड़े विनम्र भाव से कहते हैं–

''कवि न होऊं नहिं वचन प्रबीनू
सकल कला सब विद्या हीनू
कवित विवेक एक नहीं मोरे
सत्य कहूं लिखी कागद कोरे।''

पर वे भक्ति में डूबना चाहते हैं और पाठक को भी उसी में डुबाना चाहते हैं। वे मानते हैं कि जिन्हें भक्तिरस प्रिय है, उन्हें रामकथा भी अच्छी लगेगी ही–

''एही मंह रघुपति नाम उदारा
अति पावन पुरान श्रुतिसारा
कवितरसिक न रामपद नेहू
तिन्ह कंह सुखद हास रस एहू
जदपि कवित रस एक हूं नाहीं
राम प्रताप प्रगट एही मांही।''

भक्ति रस अलग ही प्रकार का है–

''रामचरित जे सुनत अघाहीं
रसविशेष जाना तेहि नाहीं।''

तुलसीदासजी स्पष्ट शब्दों में ज्ञान और भक्ति की अभिन्नता का उद्घोष करते हैं–

''ज्ञानहिं भगतिंहि नहिं कछु भेदा
उभय हरहिं भव संभव खेदा।''

वे स्थिर मति हो कर एकाग्र भाव से राम के गान में संलग्न होते हैं और राम की उपस्थिति ही उनकी कविता का गुण है। राममय होना ही उनका अभीष्ट भी है–

''भनिति मोर सब गुण रहित,
बिस्व विदित गुन एक
सो बिचारि सुनिहाहीं सुमति
जिन्ह केन बिमल बिबेक
एही मंह रघुपति नाम उदारा
अति पावन पुरान श्रुति सारा।
मंगल भवन अमंगल हारी
उमा सहित जेहि जपत पुरारी।
राम भगति भूषित जिय जानी
सुमिरहिं सुजन सराहिं सुवानी।''

तुलसीदासजी की प्रीति राम नाम से है, प्रतीति राम नाम की है और प्रसाद भी राम नाम है। भक्ति का सार्वभौमिक आध्यात्मिक रूप तो है, पर ऐतिहासिक सांस्कृतिक भेद भी है। धर्म प्रायः मर्त्य से परे लोकोत्तर और अमृत पद से जोड़ता है, अभुदय और निःश्रेयस की सिद्धि चाहता है। लौकिक मानव अलौकिक से जुड़ता है। लोकोत्तर के प्रति समर्पण और अनुग्रह भाव ही प्रबल होता है। जिस प्रतिबिंबात्मक उपाधि से व्यक्त करते हैं वही रूप है, जो स्वात्मपरामार्शात्मक शक्ति प्रतिबिंब को उससे जोड़ती है, रूप को उसका रूप बनाती है, वही शब्द या नाम है–

''देखहिं रूप नाम आधीना,
रूप ज्ञान नहीं नाम बिहीना
रूप विशेष नाम बिनु जाने,
करतलगत न परत पहिचाने

सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखे,
आवत हृदय सनेह बिसेखे
अनुगन सगुन बिच नाम सुसाखी,
उभय प्रबोधक चतुर दुभाखी''

भक्ति का विचार या अवधारणा अनुरक्ति के चरम को द्योतित करती है। भजनीय प्रभु के साथ तादात्मय की प्रवृत्ति का अविछिन्न प्रवाह ही इसमें प्रमुख होता है। रागात्मक होने के कारण इसमें संलग्न होकर व्यक्ति राग-द्वेष से परे हो जाता है। परंतु भक्ति में बोध भी सम्मिलित है। तुलसीदासजी भी ज्ञान को आधार मानते हैं, जिस पर भक्ति अवलंबित है। वे कहते हैं–

''जानें बिनु न होई परतीती।
बिनु परतीती होई नहीं प्रीती।''

और 'प्रीति बिना नहीं भगति दिधाई''। यह अवश्य है कि प्रीति रामकृपा से ही उदित होती है। या फिर गुरुकृपा से यह संभव होती है–

''तुलसीदास हरि-गुरु-करुना-बिनु
बिमल विवेक न होई
बिनु विवेक संसार घोर
निधि पार न पावै कोई''

तुलसी को प्रायः विशिष्टाद्वैत या द्वैत मतों का अनुगामी सिद्ध किया जाता रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि तुलसीदासजी सिद्धांत रूप से तो अद्वैत के पक्षधर हैं, पर उनकी भक्ति में भेद और अभेद दोनों ही उपस्थित हैं। उन्होंने ज्ञान की विविध परंपराओं का अनुशीलन कर एक तरह से समावेशी दृष्टि को लिया है जिसकी चरम उपलब्धि अद्वैत है–

''अज अद्वैत अनाम, अलख रूपगुनरहित जो
मायापति सोई राम दास हेतु नर-तन धरेउ''

वे द्वैत बुद्धि को अज्ञान का फल और शोक-दुःख का कारण मानते हैं–

''द्वैत रूप तमकूप परें नहीं
अस कछु जतन बिचारी
द्वैत मूल, भय सूल, सोग फल,
भव तरु टरे न टारयो''

तुलसीदासजी निज पर, तेरे मेरे, मैं तू आदि को नाम रूप की विविधता से उपजी नानात्व की समझ को जन्म देने वाली माया का परिणाम मानते हैं। माया शत्रु मित्र आदि भेद बनाती है। वह अविद्या रूपी भी है और विद्या रूपी भी। अविद्या भाव बंधन में बांधती है, तो विद्या बंधनमुक्त कर राममय बनाती है। सभी ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियां माया के वशीभूत अज्ञान से ग्रस्त और कष्ट का कारण होती हैं। अतः इसे स्वच्छ करना पहला काम है। इसकी सफाई का मार्ग है राम का अनुराग–

''राम चरण अनुराग नीर
बिनु मल अति नास न पावै।''

या

''प्रेम भगति जल बिनु रघुराई
अभी अंतर मल कबहूं न जाई''

चित्त के मलहीन या निर्मल होने पर एक चैतन्य का बोध होगा। अतः प्रतिभासित द्वैत अज्ञानजन्य है–

''रघुपति भगति वारि छालित
चित बिनु प्रयास ही सूझे
तुलसीदास कह चिद विलास
जग बूझत बूझत बूझे''

परिवर्तनशील वैविध्यपूर्ण प्रपंच वाला जगत असत्य है मिथ्या है–

''जेहि जाने जग जाई हेराई
जागें तथा सपन भ्रम जाई
झूठो है, झूठो हैं, झूठो सदा जग
संत कहत जे अंत लहा है।''

परंतु अधिष्ठान की वास्तविकता या सत्य को ध्यान में रख वह जगत को भी सत्य कहते दिखते हैं–

''सीय राममय सब जग जानी
करहु प्रनाम जोरि जुग पानी''

तात्पर्य यह की एक तत्व यह है पर उसके व्यक्त रूप में भिन्नता संभव है। वह अंग-अंगी का भाव भी देखता है–

''ईश्वर अंश जीव अविनाशी
चेतन अमल सहज सुख रासी''

पर यह प्रतीति भी मायाधीन ही है। इससे पार पाना ईश्वरीय कृपा से ही संभव है–

''मुधा भेद जद्यप कृत-माया बिनु
हरी जाहि न कोटि उपाया''

शरीर को अपना स्वरूप मान बैठना ही माया का प्रपंच है तभी चेतन जड़ से जुड़ जाता है। भक्ति इस अज्ञान को दूर करती है। ऐसा होने पर मुक्ति का बोध होता है पर तुलसीदासजी और अन्य संत भी यह कहते हैं कि ऐसा प्रभु कृपा से ही हो सकेगा–

''सोई जाने जेहि देहु जनाई।
जानत तुम्हहि तुम्हहि होई जाई।
तुम्हरहि कृपा तुम्हहि रघुनंदन।
जानहिं भगत भगत उर चंदन।''

जीव ब्रह्म है पर अज्ञानवश बड़ा मान बैठता है। भक्ति उसे दूर करती है, भक्ति अपने उत्कर्ष में भक्त और भगवान का ऐक्य संभव करती है। पर ऐसा नहीं है कि इस ज्ञान के बाद द्वैत की आवश्यकता नहीं रहती है। काकभुशुण्डी कहते हैं–

''राम भगति जल मम मति मीना किमि
बिलगाई मुनीस प्रबीना।''

ज्ञान पूर्व, द्वैत मोह का कारण पर ज्ञान के बाद द्वैत आनंददायक है। ज्ञान पाकर भी जो भक्ति नहीं छोड़ते हैं, वे तत्वतः सगुण-निर्गुण रूप में अंतर नहीं करते–

''सगुनहिं अगुनहिं नहीं कछु भेदा।
गावहीं मुनि पुआं बुध बड़ा
अगुन अरूप अलग अज जोई
भगत प्रेम बस सगुन सो होई
जो गुन रहित सगुन सोई कैसे।
जल हिम उपल बिलग नहीं जैसे''

तुलसीदासजी यह भी कहते हैं कि–

''निर्गुन रूप सुलभ अति
सगुन जान नहीं कोई
सुगम अगम नाना चरित
सुनिमुनी मन भ्रम होई''

सगुण रूप मानना कठिन काम है। तुलसी ब्रह्म राम को इष्ट मानते हैं, राम अवतार नहीं परब्रह्म हैं–

''राम ब्रह्म परमारथ रूपा
अबिगत अलख अनादी अनूपा
सकल बिकार रहित गत भेदा
कही नित नेति निरूपहिं वेदा''

पर मात्र शाब्दिक ज्ञान ही नहीं चाहिए कर्म भी चाहिए–

''जो कछु कहिय करिय भवसागर
तरिय बत्सपद जैसे
रहनी आन विधी कहिय आन,
हरिपद सुख पेय कैसे''

तुलसी ज्ञान नेत्र खुलने की बात करते हैं, जो प्रकाश दिखता है, उसमें प्रेम प्रवाह ही परिचालित होता है–

''अस मानस मानस चख चाही।
भई विबुद्धि विमल अवगाही।
भयउ हृदय आनन्द उछाहू।
उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रबाहू।।''

भगवान राम को मात्र प्रेम और अनुराग ही चाहिए। यही सामाजिक समरसता और ऐक्य का भी आधार है–

''रामहिं केवल प्रेम पियारा।
जानि लेउ जो जाननिहारा।।''

तुलसीदास मानते हैं कि सगुण-निर्गुण का भेद निराधार है मिथ्या है। एक ही सत्ता है, जो व्यक्त और अव्यक्त रूप है–

''अगुन सगुन दुई ब्रह्म सरूपा।
अकथ अगाध अनादी अनूपा।''

मानस का लक्ष्य भक्ति प्रतिपादन है और उसकी साधना है समर्पण। भक्त ऐसा होता है–

''काम कोह मद मान न मोहा।
लोभ न छोभ न राग न द्रोहा।।
जिन्ह के कपट दंभ नहि माया।
तिन्ह के हृदय बसहु रघुराया।।
जाति-पांति धनु धरम बड़ाई।
प्रिय परिवार सदन सुखदाई।।
सब तजि तुम्हहि रहइ उर लाई।
तेहि के हृदय रहउ रघुराई।।''

रामचरितमानस कई सदियों से जन अभिरुचि का केंद्र और विश्राम का स्थान बना हुआ है। स्वयं तुलसीदासजी एकाग्र भाव से रामार्पित हैं–

''सिय राम स्वरूप सुभाय अनूप
विलोचन मीनन को जलु है।
श्रुति रामकथा, मुख राम को नाम,
हिए पुनि राम कहो घलु है
मति राम ही सो, गति राम ही सों,
रति राम सो राम ही को बलु है
सबकी न कहै तुलसी के मते
इतनो जग जीवन को फलु है।''

भक्ति की जो सुरसरि गोस्वामीजी ने प्रवाहित की उसमें बार-बार अवगाहन करने का मन होता है और हर बार कुछ नया मिलता है। भक्तजनों के आश्रय के रूप में तथा सामान्यजन के लिए भरोसे के रूप में यह पावन कथा हमारा मार्गदर्शन करती है।

कुलपति, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा-442001 (महाराष्ट्र)

पर्यटन और इतिहास का रोमांच : मांडू

ललित शर्मा

कई पुरस्कारों से सम्मानित वरिष्ठ लेखक ललित शर्मा इतिहास में ग्यारह शोधपूर्ण ग्रंथों की रचना कर चुके हैं। वर्तमान में स्वतंत्र लेखन।

भारत के हृदय स्थल मध्यप्रदेश का मांडू, इतिहास और पर्यटन की दृष्टि से एक ऐसा सौंदर्यशाली स्थल है, जो देश-विदेश के पर्यटकों के लिए खास आकर्षण का केंद्र है। यहां प्राकृतिक और पुरातात्विक सौंदर्य एवं संपदा का भी अद्‌भुत समन्वय है। वर्षाऋतु में तो यहां का सौंदर्य बस देखते ही बनता है। विशाल मैदानों में उगी घास मखमली चादर-सी बिछी हुई प्रतीत होती है। इन सभी विशेषताओं पर मुग्ध होकर भारत के पूर्व वायसराय लार्ड कर्जन ने स्पष्ट रूप से लिखा कि—''ऐतिहासिक वास्तुकला और नैसर्गिक सौंदर्य की दृष्टि से मांडू ने जितना मुझे प्रभावित किया उतना भारत के किसी अन्य स्मारक ने नहीं।'' मूलतः मांडू के स्मारक इतिहास और पर्यटन की ऐसी प्रेम गाथा का भी आख्यान करने के लिए देशभर में सुविख्यात है, जो मुख्य रूप से अनिद्य सुंदरी रानी रूपमती और बाज बहादुर की पवित्र प्रेमगाथा से जुड़ी है। इन दोनों महान संगीत-प्रेमियों के ये स्थल मांडू के प्राण हैं, जिनमें आज भी रस और वैभव है।

मांडू प्राचीनकाल में मालवा के परमार राजाओं का दुर्ग एवं प्रमोद स्थल रहा है। राजा मुंजदेव और राजाभोज का नाम इनमें प्रसिद्ध है। मांडू में अनेक मुगल शासक भी आए और रहे जिन्होंने विशालतम राजप्रासाद, सभा भवन, मस्जिदें, मकबरे, जलाशय, फव्वारे, प्रेक्षागृह बनवाएं। इसी समय समीप की नर्मदा नदी की गोद में पली अनिंद्य सुंदरी रानी रूपमती और सुल्तान बाज बहादुर के संगीत व काव्य की स्वर लहरियां यहां की उपत्यकाओं में गूंज उठी थी। भारत के अनेक मुगल सम्राटों का मांडू में आने व इसे अपनी राजधानी बनाने का उल्लेख अनेक भारतीय इतिहास ग्रंथों में है। इनमें अलाउद्दीन खिलजी, सम्राट अकबर, मोहम्मद बिन तुगलक, दिलावर खां गौरी, होशंगशाह गौरी, महमूद खिलजी, जहांगीर आदि के नाम हैं। इन शासकों ने यहां अपनी राजनीतिक बाजियां भी खेली और सुंदर निर्माण भी करवाए। ये सारे स्थल आज भी इतिहास के साथ-साथ पर्यटन एवं कला की भी सुंदर निधियां हैं, जिसमें जीवंत गाथा को देशी-विदेशी पर्यटक यहां आकर महसूस कर सकते हैं।

बाज बहादुर महल परिसर, मांडू।

मांडू घूमने का अनुकूल मौसम जुलाई से फरवरी तक का होता है। इन महीनों में वर्षा ऋतु के समय मांडू घूमने का आनंद सबसे उपयुक्त समय है। वायुसेवा से मांडू पहुंचने का निकटतम बड़ा हवाई अड्डा इंदौर है जो मांडू से 99 कि.मी. दूर है। रेलवे मार्ग से मुंबई-दिल्ली मार्ग पर रतलाम (124 कि.मी.) तथा इंदौर स्टेशन सर्वश्रेष्ठ। यहां से कार द्वारा आसानी से मांडू पहुंचा जा सकता है। इसके अतिरिक्त इंदौर, धार, महू, भोपाल, उज्जैन से मांडू के लिए नियमित बस सेवाएं भी उपलब्ध है। मांडू में पर्यटकों के रूकने के लिए लगभग तीन दर्जन उच्च स्तरीय होटल्स तथा एक दर्जन से अधिक रेस्टोरेंट हैं।

मांडू के प्रत्येक पर्यटन स्थल से इतिहास की रोचक गाथाएं जुड़ी है। यहां प्रवेश करते ही पर्यटकों के ध्यान को जो स्थली सबसे अधिक आकर्षित करती है, वह है ''काकड़ खो' अर्थात् गहरी खाई। इस खाई का नैसर्गिक सौंदर्य बड़ा सुंदर है। बारिश के मौसम में जब

हिंडौला महल, मांडू, आंतरिक दृश्य।

पहाड़ी से पानी खाई में गिरता है तो वह दृश्य देखने लायक होता है। इसके आगे 'सात कोठड़ी' नामक स्थल है, जहां परमारयुगीन गुफाएं दर्शनीय है। यहां का आलमगीर दरवाजा मध्ययुगीन स्थापत्यकला का सुंदर उदाहरण है। इस दरवाजे की ऊंची दीवारों से प्रतीत होता है कि यह सुरक्षा की दृष्टि से बनवाई गई होगी। उस युग में मांडू आने वाले कई सम्राटों ने इसी द्वार से प्रवेश किया था। इसी प्रकार यहां हाथीपोल, जहांगीरपुर, भगवानपुर, तारापुर नामक जंगी दरवाजे हैं, जो मध्ययुग की घटनाओं के मूक साक्षी है। इन सभी दरवाजों के मध्य मोटी शहर पनाह है, जिनके अंदर अनेक सुंदर मध्ययुगीन महल है।

गदाशाह का महल एवं दुकान मांडू का शाही परिसर है, जिसमें विशाल महल और भारतीय धरोहरों में सबसे विशालतम दुकान है। गदाशाह का मूलनाम मेदिनीराय था। वह मांडू सुल्तान महमूद खिलजी (द्वितीय) का विश्वस्त व्यक्ति था जो अपने दम पर अल्प समय के लिए मांडू का स्वामी भी बन बैठा था। ऐसा भी कहा जाता है कि वह यहां का एक प्रतिष्ठित व्यापारी था जो आर्थिक संकट के समय मांडू के शासकों की अपनी अकूत संपदा से मदद किया करता था। गदाशाह के इस भवन की बनावट हिंदू स्थापत्य का विशाल नमूना है। इसमें दो कलात्मक बावड़ियां है, जिन्हें अंधेरी और उजाली बावड़ी कहा जाता है। यह महल दो मंजिला है जिसके नीचे अति सुंदर मेहराबदार दरवाजे व सुंदर कक्ष है। ऊपरी मंजिल में एक विशाल हाल व कई कमरे हैं। महल के अंदर के सुंदर कक्ष मेदिनीराय की स्त्री, बालकों व अन्य परिवारजनों के हैं।

नाहर झरोखा का निर्माण सम्राट जहांगीर के समय हुआ था। इस झरोखे से वह प्रतिदिन अपनी प्रजा की समस्याएं सुनता व दर्शन दिया करता था। इस झरोखे के द्वार पर बाघ की मूर्ति होने से इसका नाम 'नाहर झरोखा' हुआ। यहां से मांडू की प्राकृतिक दृश्यावली का आनंद लिया जा सकता है।

हिंडौला महल शाही परिसर में स्थित है। इसकी पार्श्व भित्तियों के झुके होने के कारण यह महल हिंडौला (झूला) के समान प्रतीत होता है। इस भवन का निर्माण अंग्रेजी के 'टी' अक्षर की भांति है। यह मजबूत सुघड़ पाषाणों का बना विशाल सभा मंडप है, जो मध्ययुग में मालवा के सुल्तानों का 'दीवान-ए-खास' महल था। इसके भीतरी भाग में ढालू मार्ग के नीचे से इस महल के ऊपरी भाग को इस प्रकार की तकनीक से निर्मित किया गया था कि उस पर होकर शाही परिवार की बेगमें, पालकी, घोड़े या हाथी पर बैठे-बैठे ही ऊपरी मंजिल तक पहुंच सके। इस कारण से इस मार्ग का नाम हाथी चढ़ाव रखा गया।

चंपा बावड़ी मुंज तालाब के उत्तर में स्थिति यह

गदाशाह की दुकान, मांडू।

चंपा बावड़ी, मांडू।

बड़ी गहरी बावड़ी है, जो विशाल शाही महल का हिस्सा थी। इस बावड़ी की मनोरंजक बात यह रही है कि इसका संबंध शाही तहखाने से है, जिसमें सुरक्षित कमरे है जो मुंज तालाब के प्रेक्षाकक्ष तक भू-गर्भ मार्ग से जुड़े हुए हैं। यह रहस्यमयी व्यवस्था इस विचार से की गई होगी, जिससे मुंज ताल के स्पर्श से प्रभावित शीतल वायु उक्त मार्ग द्वारा बावड़ी के भीतर बने विश्राम गृहों तक पहुंच सके। यह आधुनिक एयर कंडीशन की व्यवस्था की भांति है। चंपा बावड़ी के समीप ही 'हमाम' स्थित है। जिसकी छत में प्रकाश के भीतर आने के लिए सितारेनुमा सुंदर झरोखे बनाए गए थे। इसमें गरम और ठंडे पानी की व्यवस्था की जाती थी।

जहाज महल कपूर एवं मुंज तालाब के मध्य स्थित है। यह महल सबसे ज्यादा पर्यटकों के आकर्षण का केंद्र रहता है। इस महल के नाम के पीछे यह धारणा है कि वर्षाऋतु में जब महल के दोनों ओर के तालाब जल से भर जाते हैं, तब यह भव्य महल पानी में लंगर डाले जहाज की भांति दिखाई देता है। इसका निर्माण श्रृंगार प्रेमी सुल्तान ग्यासुद्दीन (1469-1500 ईस्वी) ने करवाया था।

लाल पत्थर से निर्मित मुगल शैली में बने झरोखे व अन्य वास्तुकला जहाज महल को अति भव्य और सुंदर रूप प्रदान करती है। सम्राट जहांगीर ने इस महल की एक खूबसूरत रात्रि का वर्णन अपनी दिनचर्या में लिखा है, जो 'अरेबियन नाईट्स' की कथाओं के समान अद्‌भुत और रोचक है। मालवा की शीतल रात्रि में जगमगाते दीपों से ज्योत और दिव्य वस्त्राभूषणों से अलंकृत सुंदरियों तथा सुंदर दरबारियों से युक्त जहाज महल के सभी भवन की कल्पना कोई सहज कर सकता है। यह सब उस समय की सर्वश्रेष्ठ सुंदरी नूरजहां के वैभव के अनुकूल ही था। अब भी जब कि यह भव्य राजप्रसाद निर्जन है, यदि कोई उसके भवनों का अवलोकन करता है या उसकी छतों पर घूमता है अथवा जलाशयों की ओर निहारता है, तो उस मनोरमता का अनुभव करता है जिसका यहां एक समय निश्चित ही आधिपत्य था। इस महल के पीछे परमार राजाओं द्वारा बनवाया गया अति मनोहारी मुंजताल और सामने कपूर तालाब है।

15वीं सदी में होशंगशाह मांडू का विख्यात सुल्तान थ। उसका मकबरा भी उसकी ख्याति के अनुरूप है। बादशाह शाहजहां ने ताजमहल बनाने से पूर्व शिल्पकारों को यहां इस मकबरे का अध्ययन करने हेतु भेजा था। यह मकबरा विशाल गुंबद के साथ संगमरमर का बना है। इसके निर्माण के बारे में कहा जाता है कि 1405 ई. इसे स्वयं होशंगशाह ने बनवाया था। यह विशाल मकबरा दो भागों में विभक्त है। इसका पश्चिमी भाग धर्मशाला के नाम से जाना जाता है। इसमें स्तंभों पर त्रिशूल, हाथी की सूंड सहित अनेक आकृतियां उभरी नजर आती है। मध्ययुगीन भारतीय स्मारकों में यह मकबरा अपनी विशालता और विशिष्ठता के लिए प्रसिद्ध है।

होशंगशाह का मकबरा, मांडू।

जामी मस्जिद, मांडू।

जामी मस्जिद एक विशाल और महत्वपूर्ण स्थापत्य की इमारत है। इस मस्जिद का निर्माण दमिश्क की प्रख्यात मस्जिद के अनुरूप करवाया गया था। इसका निर्माण होशंगशाह ने आरंभ करवाया और महमूद खिलजी ने 1454 ई. में इसे पूरा करवाया। इस मस्जिद के प्रभावोत्पादक गुंबद, प्रशस्त प्रार्थना मंडप, विशाल प्रांगण-सादी किंतु सुंदर स्थापत्य कला, व्यापक योजना को देखते हुए मांडू की स्थापत्य शैलियों में अपना विशिष्ठ महत्व रखती है। ऐसा भी माना जाता है कि यह मस्जिद भारत की अन्य विशाल मस्जिदों में से एक है।

अशर्फी महल जामी मस्जिद के ठीक सामने है, जो किसी समय वहां के समस्त इतिहास में अत्यंत रोचक एवं रंगीन रहा होगा। प्रसिद्ध कलात्मक फिल्म 'किनारा' की शूटिंग में इस महल की कलात्मकता व स्थापत्य को आधार बनाया गया था। यह पूरी फिल्म ही मांडू के स्मारकों में फिल्मायी गई थी। मूल रूप से यह महल अध्यात्म शिक्षण का एक महाविद्यालय था और फिर यह एक कीर्ति स्तंभ के साथ संबद्ध हुआ। इसका निर्माण महमूद खिलजी ने 1443 ई. में मेवाड़ पर विजय प्राप्त करने के उपलक्ष्य में करवाया था। दस वर्ष बाद फिर मेवाड़ के महाराणा कुंभा ने महमूद खिलजी को परास्त कर विजय स्मृति के फलस्वरूप चित्तौड़ में कीर्ति स्तंभ का निर्माण करवाया। यह धारणा है कि महमूद का यह मकबरा मांडू की समस्त इमारतों में विशाल गुंबद, संगमरमर के फर्श और शिल्पकला की दृष्टि से बहुत शानदार रहा। सम्राट अकबर ने भी अशर्फी महल की मरम्मत करवाई थी। इस महल के नाम को लेकर ऐसी जनश्रुति प्रसिद्ध है कि सम्राट जहांगीर अपनी बेगम नूरजहां के साथ मांडू आया तो उसने नूरजहां से इस कीर्ति स्तंभ की सीढ़ियां चढ़ने को कहा। चूंकि चढ़ाई अधिक थी अतः नूरजहां ने इनकार कर दिया। तब जहांगीर ने प्रत्येक सीढ़ी चढ़ने पर नूरजहां को स्वर्णमुद्रा (अशर्फी) देने का लालच दिया तब नूरजहां सीढ़ियां चढ़ती जाती और जहांगीर उन्हें अशर्फियां देते जाते। बाद में वही अशर्फियां गरीबों में बांट दी गईं तभी से इसे अशर्फी महल कहा जाने लगा। बरसों बाद इस रोचक घटना को किनारा फिल्म में आधार बनाकर बड़ी खूबसूरती से दर्शाया गया जब नायक-चंदन (धर्मेंद्र) अंधी नायिका आरती (हेमामालिनी) को इस महल की सीढ़ियां चढ़ने को कहता है, परंतु नायिका की आंखों की रोशनी न होने से चढ़ने में असमर्थता बताती है। परंतु जब नायक चंदन जहांगीर की भांति उसे लालच देता है तब आरती नायक के सहारे से सीढ़ियां चढ़ती है तब नायक सीढ़ियां चढ़ती नायिका के पैरों के साथ-साथ सौ-सौ रूपयों के नोट रखता जाता है। फिल्म किनारा का यह मनमोहक

अशर्फी महल, मांडू।

रानी रूपमति का महल/मंडप, मांडू।

दृश्य आज भी कला प्रेमियों को मंत्रमुग्ध कर देता है।

रूपमती महल मध्ययुगीन इतिहास की विख्यात प्रेमकथा के अमर नायक-नायिका बाज बहादुर और रानी रूपमती के अनेक महल, झरोखें इस क्षेत्र में है। बाज बहादुर और रूपमती का मंडल महल पास-पास है। महल के मंडप इसे खूबसूरती प्रदान करते है। यहां के ऊपरी भाग से आस-पास का प्राकृतिक सौंदर्य देखते ही बनता है। शिखर पर रूपमती का झरोखा है, जहां हवा तेज हो जाती है। शांत संध्या व चांदनी रात में दुर्ग के अंतर्गत सर्वाधिक ऊंचाई पर बना यह बड़ा खूबसूरत महल है। किनारा फिल्म का प्रसिद्ध गीत कलाकार जितेंद्र एवं हेमामालिनी पर कलात्मक रूप में ''नाम गुम जाएगा चेहरा ये बदल जाएगा'' यहीं पर बड़ी खूबसूरती से फिल्माया गया था।

बाज बहादुर का महल व रेवाकुंड लाल पाषाण खंडों से निर्मित है, जो स्थापत्य कला का सुंदर उदाहरण है। यह रेवाकुंड के निकट है, जो बाज बहादुर को काफी प्रिय था, क्योंकि उसकी प्रेमिका रूपमती रेवाकुंड आया करती थी। रेवा का अर्थ नर्मदा से है। रेवाकुंड का निर्माण रूपमती के प्रेम का ही प्रमाण था, जिसमें नर्मदा नदी का जल लाया गया था। इसी कुंड से बाज बहादुर के महल में पानी पहुंचाने की प्राचीन जल प्रणाली को आज भी देखा जा सकता है। रूपमती बगैर नर्मदा दर्शन के अन्न-जल ग्रहण नहीं करती थी। उसकी अपार श्रद्धा के कारण ही नर्मदा यहां कुंड में पानी के रूप में प्रकट हुई थी।

दाई महल एक खूबसूरत मकबरा है, जो एक उच्च पीठ पर बना हुआ है। इसके रक्षक रूप में मेहराबदार द्वार वाले अनेक प्रकोष्ठ है। इसके उत्तर-पूर्वी, दक्षिण-पूर्वी कोणों पर वृत्ताकार स्तंभों के सुंदर अवशेष है। समीप की पहाड़ी पर जाली महल है, जो किसी उमराव का सुंदर मकबरा है। इसके हर तरफ तीन-तीन सुंदर मेहराबदार द्वार है।

नीलकंठ मंदिर और महल का निर्माण सम्राट अकबर ने अपने सूबेदार शाह बुदाख खां से कहकर करवाया था। मंदिर में एक प्राचीन शिवलिंग स्थापित है। यहां 1600 ई. का एक फारसी शिलालेख लगा है, जिसमें एक रूबाई भी अंकित है। यहां का नीलकंठ महल भी रम्य है। यह गहरी घाटी में बना हुआ मांडू का अत्यंत प्रभावोत्पादक नैसर्गिक सौंदर्य स्थल

रानी रूपमति और बाज बहादुर का दुर्लभ चित्र (मालवा कलम)।

दाई की छोटी बहन का महल, मांडू।

नीलकंठ मंदिर, मांडू।

है। वर्षाकाल में यहां की शोभा दर्शनीय होती है।

प्रतिवर्ष नवंबर माह में मांडू में उस्ताद अलाउद्दीन खां संगीत एवं कला अकादमी भोपाल द्वारा 'मांडू उत्सव' का तीन दिवसीय भव्य उत्सव मनाया जाता है। जिसमें देश-प्रदेश के उच्च स्तरीय कलाकारों द्वारा कला संगीत की प्रस्तुतियां दी जाती हैं।

मांडू भारत का बेहतरीन ऐतिहासिक महत्व का स्थान है। यहां के अन्य सुंदर स्थलों में अनेक मनोहारी बाग-बगीचे, मकबरे, महल, मस्जिदें आज भी देखने लायक है, जिनका इतिहास और पर्यटन जगत में महत्व है। मांडू की खास पहचान यहां की इमली, सीताफल और खिरनी से है। ये फल प्राचीन समय से ही प्रसिद्ध रहे हैं। मांडू की इमली के बीज खुरासान से मंगाकर यहां बोए थे। यहां का सीताफल तथा खिरनी खास मिठास के लिए बड़ी प्रसिद्ध है, जिसे हर पर्यटक अपने साथ ले जाना पसंद करता है।

जैकी स्टूडियो, 13-मंगलपुरा,
झालावाड़-326001 (राजस्थान)

खड़ीबोली के पुरोधा : अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध

राजेंद्र परदेसी

वरिष्ठ लेखक राजेंद्र परदेसी पिछले तीन दशक से लेखन में सक्रिय। कविता, कहानी सहित विभिन्न विधाओं में लेखन। कई पुस्तकें प्रकाशित। अनेक पुरस्कारों से सम्मानित। संप्रति : इंजीनियर।

भारतेंदु युग पुनर्जागरण की भावना से अनुप्राणित था। इसमें सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक सक्रियता दिखाई देती है। किंतु काव्य की भाषा अभी ब्रजभाषा से पूर्णतः असंपृक्त नहीं हो पाई थी। काव्य की प्रवृत्तियां भी लगभग पूर्ववर्ती युग से पूर्णतः भिन्न नहीं हो सकी थी। वैसे राष्ट्रीय चेतना के विकास में इस काल के साहित्यकारों ने विशेष रूचि लेते हुए समकालीन संदर्भों में भी रचनाएं प्रस्तुत की। द्विवेदीयुग आते-आते साहित्य की प्रवृत्तियों एवं भाषा के स्वरूप में काफी बदलाव आया। द्विवेदीजी ने सरस्वती पत्रिका के माध्यम से ब्रजभाषा के बजाय खड़ी बोली में मात्रिक छंदों के स्थान पर संस्कृत के वर्ण-वृत्तों में कविता लिखने का आंदोलन प्रारंभ किया। उन्होंने खड़ीबोली में स्वयं रचना कर यह दिखाया कि खड़ी बोली में भी सरस एवं मधुर कविता रची जा सकती है। परिणामतः अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध ने भी ब्रज का मोह छोड़कर खड़ीबोली के प्रयोग पर बल दिया।

अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध का जन्म 15 अप्रैल, सन् 1865 को उत्तरप्रदेश के आजमगढ़ जिला के अंतर्गत निजामाबाद में हुआ था। ये मूलतः ब्राह्मण थे, लेकिन इनके पिता पंडित भोलानाथ ने सिख धर्म अपना कर भोला सिंह बन गए। अतः उनके पुत्र का नाम भी अयोध्या सिंह उपाध्याय हो गया।

हरिऔधजी की शिक्षा निजामाबाद और आजमगढ़ में हुई। आरंभ में उनको फारसी की शिक्षा मिली। बाद में संस्कृत, हिंदी, अंग्रेजी और उर्दू भाषाएं भी पढ़ी। मिडिल तक की शिक्षा तो निजामाबाद में ही हुई। बाद में वाराणसी स्थित क्वींस कॉलेज में प्रवेश लिया। लेकिन स्वास्थ्य अनुकूल न होने के कारण घर वापस आ गए। लंबे समय तक घर पर रहकर पढ़ाई की। उन्हें गांव के ही मिडिल स्कूल में अध्यापक की नौकरी भी मिल गई। यहीं सेवारत रहते हुए उन्होंने नार्मल परीक्षा प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण कर अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। इसी बीच इनका विवाह भी आनंद कुमारी के साथ हो गया। सन् 1889 में उन्हें कानूनगो की नौकरी भी मिल गई। जिससे उनके जीवन में भारी बदलाव आया। साहित्य से गहरा लगाव तो शुरू से ही था। अतः नौकरी के साथ लेखन भी करते रहे। अंततः 34 वर्षों तक सरकारी सेवा करने के उपरांत सन् 1923 में जब वे सेवानिवृत्त हुए, तो साहित्य के प्रति उनकी गहरी रुचि एवं उपलब्धियों को देखते हुए उन्हें काशी हिंदू विश्वविद्यालय में शिक्षक की नौकरी मिल गई। यहां लगभग दस वर्ष तक अवैतनिक अध्यापन किया। तत्पश्चात् निजामाबाद आकर साहित्य की सेवा में लगे रहे।

हरिऔधजी बड़े ही मेधावी तथा प्रतिभा संपन्न कवि थे। बचपन से ही उनके हृदय में साहित्य साधना का बीजारोपण हो चुका था। बाबा सुमेर सिंह से संपर्क ने खाद का कार्य किया। परिणामस्वरूप उनकी प्रतिभा बहुमुखी

साहित्य साधना के रूप में विकसित होने लगी। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के प्रभाव से वे खड़ी बोली में काव्य रचना में संलग्न हुए। उन्होंने भाषा भाव, छंद और अभिव्यंजना की पुरानी परंपरा को खारिज कर नूतन प्रयोग किए और कविता के भावपक्ष और कलापक्ष को नए आयामों से जोड़ा।

हरिऔधजी ने ब्रजभाषा और खड़ीबोली दोनों में काव्य रचना की है। 'रसकलश' ब्रजभाषा में रचित उनका प्रमुख काव्य-संग्रह है। कबीर-कुंडल, श्रीकृष्णशतक, प्रेमाम्बु-वारिधि, प्रेमाम्ब-प्रवाह, प्रेम-प्रपंच, उपदेश-कुसुम, विनोद-वाटिका, चोखे-चौपदे, चुभते-चौपदे, बोलचाल, पारिजात, प्रियप्रवास तथा वैदेही वनवास आदि खड़ीबोली में रचित हैं। इनमें अधिकांश फुटकर कविताओं में तत्कालीन सामाजिक दशाओं का चित्रण अत्यंत बारीकी के साथ किया गया है। इन रचनाओं में

सामाजिक कुरीतियों, रूढ़िग्रस्त बुराइयों तथा परंपरागत अंधविश्वासों में लिप्त देशवासियों की दुर्बलताओं का पर्दाफाश करते हुए जनता को जागरूक एवं सावधान होकर उन्नति के पथ पर बढ़ने की प्रेरणा दी गई है।

हरिऔधजी ने दो उच्च कोटि के प्रबंधकाव्य खड़ीबोली में लिखे हैं। ये 'प्रियप्रवास' (1914) तथा 'वैदेही वनवास' हैं। 'प्रियप्रवास' खड़ीबोली का प्रथम महाकाव्य है, जिसमें राधा और कृष्ण को सामान्य नायक-नायिकाओं से ऊपर उठाकर नवीनता से अभिमंडित कर विश्वकल्याण और विश्वात्मक प्रेम का संवाहक बना दिया है। यह उनकी मौलिक उद्‌भावना है। 'वैदेही वनवास' में राम और सीता के चरित्र में भी नवीनता लाकर उन्हें जननायक और जनसेवक की भूमिका में प्रस्तुत किया है। इन रचनाओं में काव्य का शिवतत्व बरकरार दिखाई देता है। लोकमंगल की भावना से ओत-प्रोत उनकी कविता में मनुष्य का परमधर्म परहित ही है—

''विपत्ति से रक्षण सर्वभूत का,
सहाय होना असहाय जीव का
उबारना संकट से स्वजाति को,
मनुष्य का सर्वप्रधान कृत है।''
—(प्रियप्रवास)

'प्रियप्रवास में यह कथन कृष्ण का है, जो आदर्श मानवीय छवि को दर्शाता है। कृष्ण के अनुरूप ही राधा का चरित्र भी उभरकर आया है, राधिका को विश्वप्रेमिका के रूप में चित्रित कर हरिऔधजी ने काव्य को उच्चस्तरीय भावों के सांचे में ढालने का स्तुत्य प्रयास किया है। अपने प्रियतम कृष्ण का वियोग सहन करते हुए वो लोकहित की ही कामना करती दिखाई देती है—

''प्यारे जीवें, जगहित करें,
गेह चाहे न आवें।''

'वैदेही वनवास' भी श्रेष्ठ महाकाव्य है। किंतु कथानक अत्यंत संक्षिप्त होने के कारण राम के आदर्श चरित्र का अपेक्षाकृत विकास नहीं हो पाया है। फिर भी यह काव्य रचना अप्रतिम है।

ब्रजभाषा में रचित 'रसकलश' भी उनकी प्रमुख रचना है। इसमें रीति पर आधारित रस की सूक्ष्म विवेचना की गई है। नायिका वर्णन और ऋतुवर्णन के अंतर्गत हरिऔधजी ने कुछ मौलिक उद्‌भावनाएं प्रस्तुत की हैं, पति-प्रेमिका, परिवार और लोक सेविका की विशेषताओं से उन्हें संयुक्त किया है।

हरिऔधजी के काव्य में शृंगार रस, करुण रस और वात्सल्य रस की प्रधानता दिखाई देती है। शृंगार के अंतर्गत विशेषकर वियोग का वर्णन है। शृंगार में जहां राधा के वियोग का चित्रण है, वहीं वात्सल्य रस के अंतर्गत पुत्र-वियोग भी दर्शनीय है। पुत्र-वियोग में माता यशोदा की व्यथित दशा का कारुणिक चित्रण किया गया है—

''प्रियपति, वह मेरा प्राण प्यारा कहां है,
दुःख जलनिधि डूबी का सहारा कहां है,
लख मुख जिसका मैं आज लौ जी सकी हूं
वह हृदय हमारा नैन का तारा कहां है।''

वियोग की परिधि में यशोदा, राधा और गोपियां ही नहीं हैं, समूची प्रकृति भी कृष्ण के वियोग में दुःखी दिखाई देती है। ब्रज के वृक्षों की वियोग-दशा देखने योग्य है—

''फूलों, पत्तों सकल पर है
वारि बूंदे लखाती रोते हैं,
या विटप सब यों
आंसुओं को दिखा के।''

हरिऔधजी के काव्य में प्रकृति वर्णन विविध रूपों में हुआ है। आलंबन रूप में प्रकृति चित्रण संध्याकालीन बिंब को उपस्थित करने में समर्थ एवं सफल दिखाई देता है—

''दिवस का अवसान समीप था
गगन था कुछ लोहित हो चला
तरुशिखर पर है अब राजती
कमलिनी कुल वल्लभ की प्रभा।''

खड़ीबोली हिंदी को काव्योपयुक्त बनाने की दिशा में हरिऔधजी अग्रणी रचनाकार है। इन्होंने दोहा, कवित्त, सवैया आदि के साथ संस्कृत के वर्णवृत्तों में भी काव्य रचना की है। छंदों और भावों के अनुरूप भाषा को ढालने में इन्हें सफलता मिली है। इस संबंध में निराला जी का कथन है कि ये हिंदी के सार्वभौम कवि हैं, खड़ीबोली, उर्दू के मुहावरे, ब्रजभाषा में कठिन-सरल सब प्रकार की कविता की रचना कर सकते हैं।

कवि के अतिरिक्त हरिऔधजी ने उपन्यासकार के रूप में भी अच्छी ख्याति प्राप्त की। उन्होंने दो उपन्यास 'ठेठ हिंदी का ठाठ' और 'अधखिला फूल' लिखे। 'ठेठ हिंदी का ठाठ' उपन्यास डॉ. ग्रियर्सन के अनुरोध पर लिखा गया था। हरिऔधजी ने इस उपन्यास में हिंदू-समाज की वैवाहिक समस्या का विवेचन करते हुए तत्कालीन भारतीय जीवन की झांकी अंकित की है। यद्यपि इस उपन्यास में औपन्यासिक कला का तो सर्वथा अभाव है। तथापि इसकी सबसे बड़ी विशेषता बोलचाल की ठेठ हिंदी के सुंदर रूप की प्रस्तुति है। डॉ. ग्रियर्सन इस उपन्यास को पढ़कर इतने प्रसन्न हुए थे कि उन्होंने इसे इंडियन सिविल सर्विस की परीक्षा के पाठ्यक्रम में सम्मिलित करवा दिया। हरिऔधजी का दूसरा उपन्यास 'अधखिला फूल' भी सामाजिक उपन्यास है। इसमें तत्कालीन विलासी जमींदारों की दुष्प्रवृत्तियों का सजीव चित्रण है। उपन्यास कला की दृष्टि से यह भी उच्चकोटि की कृति तो नहीं है, किंतु हिंदी की बोलचाल की भाषा का नमूना प्रस्तुत करने के लिए उक्त दोनों ही उपन्यास उस काल की अक्षयनिधि है। इनमें हिंदी-गद्य के नवीन प्रयोग के साथ-साथ लेखक की मौलिक सूझ-बूझ, नवीन स्वस्थ दृष्टिकोण और अनुपम भाषा-कौशल के

दर्शन होते हैं।

हरिऔधजी ने उपन्यास के अतिरिक्त 'रुक्मिणी-परिणय' और प्रद्युम्न-विजय (व्यायोग) नामक दो रूपक भी लिखे, जिनमें रुक्मिणी-परिणय का सृजन संस्कृत की प्राचीन नाट्य शैली के तर्ज पर किया गया है। इसमें संवाद प्रायः लंबे और अस्वाभाविक प्रतीत होते हैं और कविता के लिए ब्रजभाषा तथा गद्य के लिए ख़ड़ीबोली को अपनाया गया है। दूसरा रूपक 'प्रद्युम्न-विजय' एक व्यायोग है। संस्कृत नाट्य शास्त्रों में व्यायोग दस प्रकार के रूपकों में से एक है। जिसमें इतिवृत्त प्रख्यात होता है तथा प्रख्यात और उदात्त नायक का आश्रय लिया जाता है। इसमें गर्भ और विमर्श नामक दो संधियां नहीं होती। श्रृंगार और हास्य रस को छोड़कर शेष छह रस होते हैं। इसमें संग्राम दिखाया जाता है। बहुत से व्यक्तियों द्वारा इसमें अभिनय किया जाता है और एक दिन के चरित्र का वर्णन किया जाता है। इसी भारतीय परंपरा का पालन करते हुए हरिऔधजी ने इस व्यायोग को लिखा है। इसमें भागवत पुराण के आधार पर श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न द्वारा शंबरासुर के वध की कथा वर्णित है। नाट्यकला की दृष्टि से यह कृति साधारण है। परंतु नाट्य यात्रा के क्षेत्र में नवीन विधा होने के कारण इसका ऐतिहासिक महत्व तो है ही, क्योंकि भारतेंदु हरिश्चंद्र के प्रथम धनंजय व्यायोग के बाद हिंदी का यही दूसरा व्यायोग है।

गद्य की अन्य विधा के साथ हरिऔधजी ने इतिहास के रूप में भी साहित्य-साधना की है। पटना विश्वविद्यालय के अंतर्गत इन्होंने हिंदी साहित्य के इतिहास पर कई व्याख्यान दिए, जिन्हें पुस्तकाकार रूप में 'हिंदी भाषा और साहित्य का विकास' नाम से प्रकाशित किया गया। इस ग्रंथ में हरिऔधजी ने हिंदी भाषा के विकास पर एक भाषा-वैज्ञानिक की दृष्टि से विचार किया है। इसी कारण भाषा के मूल उद्गम की खोज करते हुए उसके उद्गम एवं विकास का मार्मिक एवं यथा तथ्य निरूपण किया है। इस ग्रंथ में हिंदी साहित्य के इतिहास पर भी गंभीर दृष्टि से विचार किया गया है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें उर्दू-भाषा के कवियों को भी हिंदी कवियों के संग स्थान दिया गया है। हरिऔधजी का मानना है कि उर्दू कोई स्वतंत्र भाषा नहीं है, अपितु हिंदी की ही एक शैली है। अंतर केवल इतना है कि इसमें कतिपय फारसी एवं अरबी के शब्दों का बाहुल्य है।

हरिऔधजी कुशल आलोचक भी थे। इन्होंने रसकलश नामक 'रीति-ग्रंथ' की बड़ी ही सारगर्भित भूमिका लिखी है, जो आलोचना जगत में प्रौढ़ता, प्रांजलता एवं सूझबूझ की दृष्टि से अद्वितीय मानी जाती है। इसमें इन्होंने रस संबंधी मान्यताओं एवं धारणाओं का प्रभावशाली विवेचन किया है तथा सभी रसों का अनुभूति एवं आनंदाभिव्यक्ति पर गंभीरता से विवेचन किया है साथ ही रीतिकालीन नायिका भेद की भर्त्सना करते हुए श्रृंगार अश्लीलता-रहित रसराजत्व का तर्कसंगत प्रतिपादन तथा नवीन नायिकाओं की उद्भावना भी की है। कबीर वचनावली की भूमिका में भी कबीर के जीवन-वृत्त, धर्म-प्रचार आदि का विवेचन करते हुए कबीर की साखियों का सारगर्भित विवेचन किया है।

आलोचक के अतिरिक्त हरिऔधजी ने अनुवादक के रूप में हिंदी साहित्य की सर्जना की है। उन्होंने गद्य और पद्य दोनों में अनुवाद किया है। गद्य के अंतर्गत 'वेनिस का बांका', रिपवान विकिल तथा नीति निबंध एवं पद्य के अंतर्गत 'उपदेश कुसुम-तीन भाग' तथा 'विनोद-वाटिका' कृति है। 'उपदेश-कुसुम' फारसी के ग्रंथ गुलिस्तां के आठवें अध्याय का अनुवाद है जो तीन भाग में है। और 'विनोद-वाटिका' फारसी के ही ग्रंथ गुलजारदबिस्तां का अनुवाद है। यह अनुवाद इतने सुंदर और सरल हैं कि कहीं-से भी मूल ग्रंथ का कथ्य प्रभावित नहीं होता।

हरिऔधजी यद्यपि कवि के रूप में अधिक विख्यात है तथापि आलोचक, उपन्यासकार, नाटककार तथा इतिहासकार आदि रूप में कम प्रभावशाली नहीं है। पद्य और गद्य दोनों पर इनका असाधारण अधिकार था। उन्होंने खड़ीबोली में जो अभाव देखे, उसकी पूर्ति के लिए साधनारत रहे। अतः खड़ीबोली के निर्माता कवियों में उनका मूर्धन्य स्थान है।

हिंदी साहित्य जगत में यशस्वी साहित्यकार की हैसियत से इन्हें यथोचित सम्मान भी प्राप्त हुआ। नागरी प्रचारिणी सभा, आरा (बिहार) ने उन्हें अभिनंदन ग्रंथ प्रदान किया। 'कवि सम्राट' तथा 'साहित्य वाचस्पति' आदि मानद उपाधियों से भी विभूषित किया गया। 'प्रियप्रवास' पर हिंदी का सर्वोत्तम पुरस्कार 'मंगला प्रसाद पारितोषिक' भी इन्हें प्राप्त हुआ।

देश और दुनिया में हिंदी का मान बढ़ाने वाले द्विवेदीयुगीन कवि एवं गद्यकार हरिऔधजी का निधन 16 मार्च 1947 को हुआ, जिससे हिंदी जगत को अपूरणीय क्षति हुई। दुनिया को कर्म की प्रेरणा देने वाले यशस्वी साहित्यकार अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔधजी की ये पंक्तियां (कर्मवीर से) भारत ही नहीं, समस्त विश्व के लिए लोकमंगल का संदेश संप्रेषित कर रही हैं—

''सब तरह से आज जितने देश हैं फूले-फलें
बुद्धि, विद्या, धन, विभव के हैं जहां डेरा डाले,
वे बनाने से उन्हीं के बन गए इतने भले
वे सभी है हाथ से ऐसे सपूतों के पले
लोग जब ऐसे समय पाकर जन्म लेंगे कभी
देश की और जाति की होगी भलाई तभी।''

**44, शिव विहार, फरीदी नगर,
लखनऊ-226015 (उत्तरप्रदेश)**

पुस्तक संस्कृति पर गहराता संकट

गंगा प्रसाद विमल

कई पुरस्कारों से सम्मानित वरिष्ठ साहित्यकार गंगा प्रसाद विमल कविता, कहानी, उपन्यास के साथ विविध विधाओं के लेखन में सक्रिय।

पुस्तकें केवल साक्षर लोग पढ़ सकते हैं। वैज्ञानिक उपलब्धियों ने यह संभव बनाया कि निरक्षर लोग पर्दे पर चित्रों के माध्यम से जीवन की सभी गतिविधियों को आंख से देखते हुए, दृश्यों द्वारा वास्तविकताओं को हृदयंगम कर सकें और जीवन की पुस्तक के समीप आ सकें। वैज्ञानिक उपक्रमों ने श्रव्य माध्यम से सूचना देना या सुनाना और श्रव्य माध्यम से ही गीत, कविता, कहानी और अन्य गद्य विधाओं में जो भी संभव होता है, उसे सुनाने की नई परंपरा का परिचालन हुआ। हम देखते हैं कि समूची बीसवीं शताब्दी रेडियो के द्वारा तत्काल सूचनाएं पाने की ताकत से परिपुष्ट हुई। भारत में रेडियो माध्यम बहुत लोकप्रिय रहा है। उसने भारतीय संस्कृति के विभिन्न रूपाकारों को जन सुलभ बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। याद करें अद्भुत संगीत सम्मेलनों के आयोजन को रेडियो ने संभव बनाया था। संगीत की उच्चस्तरीय वाद्य एवं गायन शैलियों का प्रसारण आकाशवाणी का प्रतिष्ठित कार्यक्रम रहा है। रेडियो पर ही अद्भुत नाटकों का प्रस्तुतिकरण हुआ और हम पाते हैं कि न सिर्फ उच्चकोटि के संगीतज्ञ रेडियो से जुड़े बल्कि नाटककार, कथाकार, कवि और संस्कृति के अन्य उपांगों के श्रेष्ठ सृजेता भी उसका अंग बने। यहां तक कि भारत के श्रेष्ठ कवि और कथाकार उसका अभिन्न अंग बने। इस प्रगति ने कहीं भी ऐसा अनुभव विकसित नहीं होने दिया कि 'अक्षर' अब समाप्त हो रहा है। परंतु समानांतर विकास के रूप में दृश्य माध्यमों के विकास की तुलनात्मक स्थिति का आकलन करें तो लगता है कि उसने 'अक्षर' की बजाय 'दृश्य' और वह भी दिखाए जाने वाले दृश्य को महत्वपूर्ण बनाना आरंभ किया। शायद इसी प्रवृति के चलते दिखाई देने वाले 'व्यक्ति' महत्वपूर्ण होते गए और एक समय आया कि हम 'अभिनेता' को सामान्य मनुष्यों से अधिक महत्व देने लगे। तब भी यह भाव स्पष्ट रूप से सामने नही आया कि ऐसा होना मुद्रित शब्द के लिए चुनौती बन रहा है। पर आज चुनौती एकदम स्पष्ट है। तत्काल विश्वास के भी बहुत से कारण हैं। जीवन शैली के कारण जो भागम-भाग मनुष्य जाति के हिस्से आई है उसके प्रभाव के क्षेत्र हैं– रोजगार, व्यापार, प्रोन्नतियां, तत्काल लाभ और प्रतिस्पर्धा। फलतः रोजगार के लिए दौड़ की तरह की अंतरराष्ट्रीय स्थिति बन चुकी है। बड़े व्यापारिक प्रतिष्ठानों में रोजगार, लाभ के लक्ष्य से प्राप्त होता है। बड़े व्यापारिक प्रतिष्ठान स्थानीय नहीं होते। वे राष्ट्रीय परिसीमाओं से बाहर अपना नया स्वरूप निर्मित करते हैं और बहुराष्ट्रीय दर्जा हासिल करते ही लाभ के अन्यान्य द्वार खोलने लगते हैं और इसमें जबर्दस्त योगदान कई तकनीकों, नए यंत्रों और द्रुत संचार साधनों का है।

ऐसे में यह आशंका एकदम अविश्वसनीय नहीं है कि द्रुत संचार साधनों, माध्यमों के मनोनुकूल विकास ने, ठहर कर पढ़ने, हृदयंगम करने, व्यक्त सत्य के साक्ष्य खोजने की शिथिल कोशिशों के प्रति मनुष्य का

अनुराग कम कर दिया है। फलतः यह डर व्यापने लगा है कि लोग अब अक्षर की ओर नहीं लौटेंगे, वे यंत्राधीन होकर यंत्र पुस्तकों का उपयोग करेंगे। सबसे ज्यादा खतरा नई पीढ़ी के आचरण ने पैदा किया है। वे इतने अधिक यंत्रानुरागी हो गए हैं कि मुद्रित शब्द के पास नहीं जाते। मुद्रित शब्द उन्हें केवल मार्ग संकेत जैसे प्रयोजनधर्मा कार्यों के लिए पर्याप्त लगते हैं और खतरा इसलिए बढ़ा नजर आता है कि यंत्राधीन काम करने के कारण दूसरे किसी भी कार्य के लिए उनके पास समय नहीं है। यंत्र प्रभावित क्षेत्र ने समूचे सामाजिकों को यंत्रानुरूप सोचने की बाध्यता से जकड़ लिया है। ऐसी स्थिति में यह आकलन भी संभव नहीं है कि उनका देहानुरागी कार्यक्रम क्या भावनाओं के अनुरूप चलता होगा कि वह भी मात्र स्खलन के उपरांत निश्चित्तता का बोधक बन गया होगा। अभी ऐसे आकलन सामने नहीं आए हैं किंतु यंत्रानुरागी जोड़ों के आचरण विस्मयकारी और इसी से कुछ ऐसे सूत्र उभरते हैं जो सिद्ध करते हैं, कि कुछ लोगों की शब्दासक्ति केवल संवाद तक सीमित रह गई है। लिव इन रिलेशन की पहली बलि किताब है। शायद ही कोई जोड़ा किताब पढ़ता होगा। उनके पास पढ़ने के लिए समय तो ही नहीं है। साधन भी नहीं हैं। उनके बजट में उसका कोई अंकन नहीं है। यहां तक कि वे सिर्फ अपने झगड़ों के विवरण लिखते हैं। ऐसे लोग न अपने घरों से संवादरत हैं न दुनिया से, उनकी सीमित दुनिया उनका पेशा और उनका विश्राम स्थल उनका घर या कहें डेरा या दबड़ा है, जिसमें सपनों की बौछार होती है कि आने वाले कल में उनके पास दुनिया की हर चीज होगी। उसमें पुस्तक नहीं है। नई पीढ़ी के पास 'ई-बुक' है। पर वह 'ई-बुक' अभी बाल्यावस्था में है। 'ई' अखबार जल्दी सुर्खियां देखकर बासी बन पड़ता है। जल्दी-जल्दी देखने की फुर्सत भी कहां है? कुल मिलाकर कमी है तो समय की। इसलिए आदमी इस तरकीब में है कि बिना श्रम किए

तत्काल जरूरी खबरें मिल जाएं, बाकी तो अपने दूरभाष पर छप ही जाएगी। अर्थात् खबरों की तात्कालिकता भी अब पलभर बाद बासी पड़ने वाली है।

यह तस्वीर उन लोगों से जुड़ी हुई है जो अति-शिक्षित हैं मात्र साक्षर नहीं। अति-शिक्षा में प्रमाण, सबूत, संदर्भ सब उपलब्ध हैं। बस खोजने की देरी है। परंतु यह अति-शिक्षा वास्तविक शिक्षा के लोप से प्राप्त होती है। अर्थात् जब ज्ञान की गंभीर विचारणा से हट कर तकनीकी विशेषज्ञता के अहंकार में व्यक्ति विकसित होने लगता है तो उसके आचरण में यह चीज व्यक्त होने लगती है कि शेष ज्ञान अनावश्यक है। जैसे ही अनावश्यक होने का निष्कर्ष अपनी जगह बना लेता है वैसे ही उसका यह विवेक समाप्त हो जाता है कि समाज, राष्ट्र और विश्व पर पड़ने वाले दुष्परिणामों से वह न सिर्फ आंख मूंद लेता है बल्कि उसे लगता है इस क्षेत्र में उसे किसी भी तरह की चिंता करने की जरूरत नहीं। विश्व में बढ़ते कंप्यूटरीकरण और आटोमोबाइल उद्योग को ही लें। जो लोग इसमें काम कर रहे हैं, वे इस बात से एकदम उदासीन हैं कि वे विश्व को सबसे ज्यादा प्रदूषित कर रहे हैं। वे यह भी नहीं जानना चाहते कि बढ़ते आटोमोबाइल कूड़े और ई-कूड़े को प्राकृतिक रूप से नष्ट करने की विधियां बहुत मंद हैं। वे शायद दो हजार साल से पहले मिट्टी बनने की स्थिति में नहीं आ पाएगा। स्पष्ट है उसे नष्ट करने पर प्राकृतिक स्तर पर लाने का काम बहुत खर्चीला है। ई-सामग्री तैयार करने वाली कंपनियों और आटोमोबाइल उद्योग द्वारा तैयार किए जा रहे सुविधा प्रदायी वाहनों की इकाईयां अभी सोच भी नहीं सकती कि कूड़े द्वारा घेरे जाने वाले 'मोबिल' यानी तैलाक्त रिसाव से या ई-उत्पादों के विकिरण प्रक्षेपण से होने वाली हानि का आकलन ही नहीं किया जा सकता। इस सामग्री के निकट रहने वालों के भी श्वास तंत्र में जटिलताएं पैदा होती हैं, जिनका आयुर्वैज्ञानिक अध्ययन अभी शेष है। कहने का अर्थ केवल यह है कि ई-बुक की आसान, द्रुत और दृश्य-श्रव्यात्मक सुविधा संपन्नता का उपयोग करने की मानसिक तैयारी में महत्वपूर्ण विवेक की जो उपेक्षा हो रही है, वह खतरनाक है।

और यह जोखिम भी बताता है कि पुस्तकों के प्रति अनुराग में घटाव आ रहा है। यह आकस्मिक नहीं है। यंत्रों के उत्पादक हर

ओर से, स्थिति में व्यापक रूप के परिवर्तन देखते हुए, परिवर्तनों के पक्षों का आर्थिक दोहन करने की जिस नीति का पालन कर रहे हैं, उसके मूल में पारंपरिक ज्ञान-अर्जन की पद्धति का बहिष्कार करना है। यह वैसा ही है जैसे पब्लिक स्कूलों में शिक्षार्थी को अपनी मातृभाषा, प्रांतीयभाषा और राष्ट्रभाषा या राजभाषा के प्रयोग की रोक लगी हुई है। दुर्भाग्य यह है कि फिर भी चोरी-छिपे अपनी मादरी जुबान के प्रयोग करने वाले का सार्वजनिक अपमान तथा सामूहिक बहिष्कार सामुदायिक रूप में किया जाता है।

किताबों से दूरी ने कई नुकसान किए हैं। किताब तो कागज से जुड़ी है। कागज प्राकृतिक साधनों से उत्पादित है। प्रकृति में उसका मिलना-घुलना एकदम नैसर्गिक-सी चीज है। तथापि उसके संरक्षण के द्वारा एक प्राचीन हस्तलिखित पुस्तक का संग्राहकों की दुनिया में ज्यादा आदर है, क्योंकि उसे देखते ही इतिहास से अपने जुड़ाव का अहसास पक्का हो जाता है। परंतु वही किताब अब नए सोशल मीडिया में बीती संस्कृति की चीज है और उसके उल्लेख या दृष्टांत की जरूरत सोशल मीडिया के संवाद में संभव ही नहीं है। किताब से जुड़ी हुई एक लिपि है। लिपि का अपना शास्त्र है। वाक् के उच्चारणगत वर्गीकरण लगभग दो हजार वर्ष पूर्व किए गए थे, जो आज भी अतुलनीय है। मनुष्य शरीर से जुड़े इस वृतांत के सभी विवरण प्राचीन चिंतकों ने अपनी ही सृजित वाणी में संरक्षित किए थे। इसलिए लिपि बहुआयामी संरक्षण विधि तो है, साथ ही वह मानव इतिहास से जोड़े रखने वाला एक बेजोड़ सूत्र है। ऐसी ही किताब अब विज्ञासित होने वाले नए वैभवों के सामने हतप्रभ, विवश और अपनी अकाल मृत्यु के लिए स्वयं रुदन की स्थिति में है। यह आकस्मिक नहीं है। यह सिर्फ एक किताब की मृत्यु नहीं है बल्कि संस्कृति, विचार और असहमति के महत्तम मूल्य की भी मृत्यु है, क्योंकि अब एकाकृति गठन के यंत्रों का युग है और संभव है भविष्य के यंत्र निर्माता वैसी ही ज्ञान राशि का प्रचार करें जिसकी सत्ता पर काबिज रहने वाले समुदायों को जरूरत रहती है।

यंत्र संस्कृति जैसे-जैसे विकास पा रही है वह नई यंत्रणाओं को जन्म देने वाला सूत्र है। नई यंत्रणाओं से तात्पर्य है कि कोई भी वस्तु उत्पादित करने वाली शक्ति को लाभान्वित किए बिना अपना सही अर्थ प्राप्त नहीं कर सकती। खासतौर से यंत्र संस्कृति के निशाने पर किताब है। इसलिए भी कि किताब अपने स्वतंत्र अस्तित्व में विमर्शों की जन्मदात्री शक्ति है। जब तक हम इन सूत्रों को नहीं समझेंगे तब तक हम अपने उन मूल प्रश्नों की आधार भूमियों को नहीं जान पाएंगे, जिनसे एक स्वतंत्र विवेक जन्मता है। इसे एक दूसरे ढंग से भी समझा जा सकता है। किताब अगर व्यापार की आद्य सामग्री है, तो उसका विकास लाभ की दृष्टि से ही होगा अर्थात् एक किताब में आपने किताब से धन कमाने की विधि समझाई तो दूसरा प्रतिभाशाली व्यापारी उससे संकेत लेगा कि कम खर्च में कैसे अधिक धन कमाया जा सकता है, जैसे विषय पर किताब निर्मित की जानी चाहिए, यानी यहां तत्काल विधि में बदलाव किया गया कि अब कम धन से ज्यादा पैसे की आमद के तरीकों पर गौर करना पड़ेगा। स्पष्ट है कि किताब के केंद्र में ज्ञान नहीं पैसा आ गया है। यही मूल आशय बना रहेगा तो किताब के खात्मे में कोई संदेह नहीं है। यह भी ऐसा तर्क है जो किताब के महत्व को ही रूपायित करता है किंतु किताब लोप का मुद्दा एकदम दूसरा है और उसे किताबों के ही संदर्भ में जांचना उचित होगा। ऐसा नहीं कि ऐसे प्रयोग पहले न हुए हों।

पुस्तकें बेचने के लिए प्रकाशकों के हथकंडों पर एक पूरा ग्रंथ लिखा जा सकता है। परंतु ज्ञान को फैलाने के काम में भी पुस्तकें अग्रणी रही हैं। हम याद करें वह समय जब छापाखाना नहीं आया था। लोग सारी सामाग्री को हाथ से लिखते थे और जगह-जगह वितरित करते थे। यही नहीं दूसरे के लिखे की प्रतिलिपियों की परंपरा भी पर्याप्त पुरानी है। इससे पहले की कथा तो भारतीय उपमहाद्वीप में एक ऐसी अविश्वसनीय गाथा को जन्म देती है, जो स्वयं पौराणिक कथा लगती है। अर्थात् हजारों वर्ष पूर्व गुरुकुलों में रटंत विद्या के दृष्टांत के रूप में अनेक ऐसे शास्त्रज्ञ तैयार

किए जाते थे, जो संपूर्ण शास्त्र को हृदयंगम कर स्मृति के रास्ते भाष्य के रूप में प्रस्तुत करने के कार्य में सदैव आगे रहते थे। ऐसी उपस्थिति पर अविश्वास करने के पर्याप्त कारण हैं तथापि संस्कृत शिक्षित जातकों में आज भी यह परंपरा विद्यमान है। कभी-कभी तो ऐसे किसी शास्त्रज्ञ को मिलकर विस्मित होना पड़ता है तथापि ऐसा व्यक्ति एकदम सामान्य आदमी की तरह अपने कर्तव्य का निर्वाह करता है। तथापि लिपिबद्ध साहित्य उपलब्ध होने से पूर्व शताब्दियों तक स्मृति के सहारे ज्ञान सुरक्षित रहा है। इसको न मानने के ठोस कारण नहीं है। सदियों की यात्रा के सुखद अवसर बीसवीं शताब्दी में मिले जब मुद्रित पुस्तक लोकप्रियता के मानकों को तोड़ती ऐसी संख्याओं का स्पर्श करने लगी जिन संस्थाओं को हम प्रातःकाल का समाचार पत्र पढ़ते हुए देखते हैं। इसी कारण एक भाषा से दूसरी भाषिक इकाई में गति से अनुवाद के कार्य भी हुए हैं और पूरा विश्व एक समुदाय के रूप में, पूरा ग्लोब एक घर के रूप में मनोलोक में सामीप्य पाने लगा। यह चमत्कार अन्य उपादानों से भी संभव हुआ है। खासकर संगीत, फिल्में और टेलीविजन और विश्व सामीप्य के अनेक दृष्टांत ऐसे रचित हुए कि इसी अहसास के अंतर्गत कदाचित ज्यादा मुद्रित सामग्री विश्व मानस उत्पादित करने लगा।

पुस्तक को भविष्य निधि मानकर उसकी सुरक्षा के लिए भी समय-समय पर नए कदम उठाए गए। इतिहास में ऐसे समय भी आए जब संग्रहीत सामग्री को नष्ट कर एक संस्कृति को नष्ट करने का शौर्य भी प्रदर्शित किया गया। भारत में ही नालंदा एक ऐसा उदाहरण है, जिसे आक्रमणकारियों द्वारा नष्ट किया गया। ऐसे अन्य अनेक उदाहरण अन्यत्र भी उपलब्ध हैं किंतु भविष्य के नागरिकों ने ऐसे कृत्यों की भर्त्सना ही की है। यही कारण है कि कालांतर में जब साक्षरता का अनुपात बढ़ने लगा, ज्ञान प्रसार के लिए सर्वोत्तम साधन पुस्तकें ही बनीं।

स्थूल रूप से कह सकते हैं कि उन्नीसवीं शताब्दी के अभूतपूर्व आविष्कारों को ज्ञान, संचित ज्ञान और सुरक्षित ज्ञान ने संभव बनाया है। पुस्तकों की भूमिका न सिर्फ साक्षर जनों की ज्ञान पिपासा शांत करने की रही है अपितु वैश्विक धरातल पर ज्ञान का विश्वव्यापी, धर्मनिरपेक्ष, राष्ट्रीयता निरपेक्ष स्थिति का अनुभव भी पुस्तकों द्वारा ही परिपुष्ट हुआ है। यह कहना असंगत न होगा कि मनुष्य के मन में क्रांति की आग फूंकने का काम भी पुस्तकों द्वारा हुआ है। इसमें उन्नीसवीं शताब्दी के लेखकों, चिंतकों और विचारकों की बड़ी भूमिका है। उन्होंने न सिर्फ भविष्य दृष्टि का निर्माण किया है बल्कि अपने अतीत से भी उन तात्विक चीजों का अन्वेषण किया है जो मनुष्य जाति के लिए अब तक विलुप्त या अप्राप्त थीं। यह भूमिका पुस्तकों द्वारा ही परिपुष्ट हुई है।

पुस्तकों ने ही विज्ञान की ओर आदमी को धकेला है। बफलर ने अपनी पुस्तक 'न्यू वेव' में स्पष्ट लिखा है कि जितने भी आविष्कार हुए हैं वे उन्नीसवीं शताब्दी में हुए हैं और उन्होंने औद्योगिक क्रांति के समानांतर अन्य वैज्ञानिक हलचलों से दुनिया की दशा बदलने में योगदान दिया है। सिर्फ बीसवीं शताब्दी की क्रांतियों की तरफ देखें तो पता चलेगा उनकी पीठिका का निर्माण उन्नीसवीं शताब्दी की ज्ञान पिपासा ने किया।

बिलेंस्की, हर्जेन आदि विचारकों ने पूर्वी यूरोप, रूस और मध्य पूर्व एशिया में नए विचारों की क्रांति को संभव बनाया है, जिसने सर्वहारा के हाथों में शक्ति पहुंचाई है। आज बेशक व्यक्तिगत स्वतंत्रता के धक्के से समाजवाद को ध्वस्त करने की शेखी नव उपनिवेशवाद के समर्थक करते हों पर वे भी महसूस करते हैं कि कुछ है कि जो केवल पुस्तकों द्वारा संभव हुआ है। यही नहीं समाजवाद ने भी पुस्तकों का सहारा लेकर विलक्षण काम किए हैं।

सर्वमान्य स्वीकृति आधार है कि लिखित शब्द ने श्रुति के विस्मयकारी प्रभाव को बहुगुणित किया है क्योंकि तमाम तरह के अनुशासनों में नया कुछ प्रस्तुत करने की बौद्धिक होड़ एक विश्वव्यापी परिघटना के रूप में अनेक शताब्दियों तक बनी रहेगी। यह अनुमान तुलनात्मक रूप से लगाया जा सकता है कि आज के द्रुत 'इलैकट्रोनिक' उपकरणों ने सूचना के विराट क्षेत्र को तत्काल प्रस्तुत करने की जो सुविधा प्रदान की है, वह अतीत यानी हमारी सदी के कुछ दशकों पूर्व की धीमी शोधात्मक सूचना संकलन की प्रवृति के मुकाबले कितनी सार्थक है? इसका मात्रात्मक आकलन हमारे लिए संभव नहीं है केवल इस तर्क की पुष्टि के लिए कि पुस्तकों का विकल्प ई-पाठ्य सामग्री नहीं हो सकती क्योंकि शोध या अनुसंधान में सामग्री से उभरने वाले प्रमाणों या निष्कर्षों को कुछ विराम या कूलिंग अवधि की अवश्य दरकार होती है। उसे उत्पादन के किसी भी नैसर्गिक कालावधि के क्रम में चाहे न रखा जा सके तब भी शास्त्र के अंतर्मंथन में द्रुत का हिस्सा नहीं है। क्योंकि भागम-भाग या दौड़ते हुए या अन्य किसी बौद्धिक प्रकल्प में व्यस्त होते हुए सैद्धांतिक संवादों के निष्कर्ष उतने अर्थपूर्ण नहीं होंगे। इसलिए भी कि प्रत्येक शास्त्र की सैद्धांतिक फलश्रुतियां अनेक अन्य संप्रेक्ष्य निष्कर्षों को भी उत्पादित करती हैं। अतः पुस्तकें इस समूचे संदर्भ में अनिवार्य आधार सामग्री हैं। अब नए ई-संसार में यदि पुस्तकों की मुद्रण परंपरा का महत्व कम होता है, तो उससे बौद्धिक जगत के ज्ञानोत्पादन पर भी प्रभाव पड़ेगा। तथा हम वर्तमान संसार के वासी बहुलतावादी भी हैं, हमारी बहुभाषीय सांस्कृतिक बुनावट के छिन्न-भिन्न होने से जो दुष्प्रभाव उपस्थित होंगे वे केवल ई-यंत्रों के 'वायरस' रोगाणुओं से ज्यादा भयंकर होंगे।

पुस्तक संस्कृति इस अर्थ में अब सिर्फ मुद्रित शब्द की संस्कृति नहीं रह गई है बल्कि वह 'ज्ञाननुशासनों' की वैज्ञानिक प्रविधि है और संयोग से 'ई' अभिकर्म भी वैज्ञानिक प्रकल्प ही है किंतु एक दूसरे के विरुद्ध आमने-सामने आकर पुस्तक और पुस्तकों के 'ई' विकल्प निश्चित रूप से 'पुस्तकों' के पारंपरिक स्वरूप को ध्वस्त करेंगे। भविष्य की ऐसी संघर्षपूर्ण स्थिति की कल्पना भी यह भय उत्पन्न करती है कि कहीं वैज्ञानिक दौड़ में पुस्तकें मिस्र की 'ममियों' की तरह कब्रों में सुरक्षित रहेंगी और आने वाले भविष्य का उनसे कोई लेना-देना नहीं रहेगा।

पुस्तक संस्कृति पर नए विकल्पों का यह हमला उन व्यापारिक घरानों द्वारा प्रायोजित होगा जो विश्वव्यापी अपने व्यापार को बढ़ाने के लिए 'गंभीरता' नामक तत्व की हत्या कर देंगे व हम पूरी तरह से इलैक्ट्रोनिक प्रगति के बंधन में बंधने के लिए विवश रहेंगे। यह हमला उन्हीं तत्वों द्वारा आज भी प्रयोग के तौर पर जारी है। गौर करें, प्रयोग की तौर पर कहने का अभिप्राय सिर्फ यह है कि पुस्तकों के प्रति विरक्ति कोई स्वाभाविक प्रक्रिया नहीं है अपितु यह एक जानी-बूझी, सोची-समझी रणनीति है। इसे समझने के लिए इलैक्ट्रोनिक माध्यमों के विकास की पूरी नीति भी समझनी होगी। यह तो एक सामान्य अनुभव है कि विज्ञान की खोजें सामाजिक आवश्यकताओं और प्रतिभाओं की मिली-जुली कोशिश का परिणाम है परंतु उन कोशिशों से निर्मित उत्पादों पर फिर न प्रतिभाओं का स्वामित्व रह जाता है और न समाज का, अपितु वे व्यापक रूप से माल उत्पादक शक्तियों के हाथ या कब्जे में आ जाती हैं। ऐसी शक्तियां वैज्ञानिक प्रतिभाओं को नई खोजों के लिए तो प्रोत्साहित करेंगी किंतु उसी सीमा तक जब तक उन्हें मुनाफे का ज्यादा हिस्सा उपलब्ध होता रहेगा। और यह भावना या रणनीति माल उत्पादकों की भावी नीति का हिस्सा बन जाती है। एक छोटे से उदाहरण से बात स्पष्ट हो सकती है। नए आविष्कारों से विश्व मानव की बढ़ती सुविधाओं में यह पक्ष गायब है कि उत्पादक लोग श्रम, शक्ति, ऊर्जा, स्थान अंतरक्षीय दिक् या स्पेस का उपयोग तो करते हैं परंतु इन सब चीजों के सामुदायिक स्वामी मनुष्य को उसके परिपूर्ण हिस्से को लौटाने का कोई भी विकल्प अपने औद्योगिक साम्राज्यों में नहीं रखते क्योंकि इसकी शिक्षा भी, इसका ज्ञान भी ऐसी शक्तियां विश्व मानव के हिस्से में नहीं आने देती। यह समूचा ज्ञान क्योंकि पुस्तकें धीरे-धीरे विकसित करती हैं अतः पुस्तकों की उपयोगिता या ज्ञान की जरूरत सिर्फ साक्षर भर बना देने तक सीमित कर, समूची पुस्तक संस्कृति को ऐसी बदहाली की स्थिति में ला पटकने की है कि लोग उनकी तरफ देखें भी नहीं। नए इलैक्ट्रोनिक उपकरणों के प्रयोगकर्ता अपने ज्ञान संबंधी सामग्री की मांग तो सभी विकल्पों में देखना चाहते हैं किंतु वे इस बारे में सचेत नहीं हैं कि ज्ञान की सबसे महत्वपूर्ण संरक्षिका 'पुस्तक' बची रहनी चाहिए।

बीसवीं शताब्दी के अंत में ही पुस्तक संस्कृति के अंत का अनुमान उन महत्तम पत्रिकाओं, प्रकाशनों का अपने नए कार्यक्रमों में मुद्रण की गतिविधि को धीमा कर, धीरे-धीरे इलैक्ट्रोनिक माध्यमों के रूपांतरण से होता है जिन्होंने अपने कारोबार को व्यावसायिक फायदे की दृष्टि से या विश्व कारोबार में कुछ घरानों के हस्तक्षेप से मुद्रण से जुड़े व्यवसाय को हाशिए की तरफ धकेलना आरंभ किया।

अभी अगर आलोक की कोई किरण बाकी है तो वह विकासशील राष्ट्रों के पाले में है जहां अभी भी मुद्रित शब्द का महत्व कम नहीं हुआ है।

112, साउथ पार्क, कालकाजी,
नई दिल्ली-110019

आधुनिक तेलुगु गद्य-साहित्य एवं गद्य साहित्यकार

प्रो. के. लीलावती

लेखन तथा अनुवाद कार्य में सक्रिय प्रो. के. लीलावती के विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लगभग साठ लेख प्रकाशित हो चुके हैं।

आंध्रप्रदेश की भाषा तेलुगु है। तेलुगु, देश की उन भाषाओं में से है, जिसका साहित्य-भंडार समृद्ध और आकर्षक है। तेलुगु भाषा को जानने से पहले आंध्रप्रदेश के भौगोलिक स्वरूप को तथा यहां के लोगों की सभ्यता एवं संस्कृति की जानकारी प्राप्त करना आवश्यक ही नहीं बल्कि समीचीन भी प्रतीत होता है। आंध्रप्रदेश की उत्तरी-पूर्वी दिशा में ओडिशा, उत्तर में मध्यप्रदेश, पश्चिम में महाराष्ट्र, दक्षिण में मैसूर तथा पूरब में बंगाल की खाड़ी है। 'आंध्र' शब्द सर्वप्रथम जातिपरक रूप में प्रयुक्त हुआ, उसके बाद क्रमशः देश और भाषापरक रूप में। यह कहना कठिन है कि आंध्र जाति का अस्तित्व कब से प्रारंभ हुआ है। लेकिन यह कहा जा सकता है कि 'आंध्र' शब्द का प्रयोग 'ऐतरेय ब्राह्मण' में हुआ, जिसका रचना काल ई.पू. 1000 वर्ष माना जाता है। महाभारत के सभा पर्व में आंध्र जाति का चित्रीकरण हुआ है। इसके बाद जब उत्तर हिंदुस्तान छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त हो गया था तब गंगा तथा यमुना नदी के तटीय निवासी दक्षिण की ओर अग्रसर हुए और उनमें आंध्र के भी लोग थे और उन्होंने वहां अपने राज्य की स्थापना भी की। इस प्रकार प्रवासी आंध्रों का प्रतिनिधित्व करने वाले राजा सातवाहन थे। ई.पू. 4-3 शती तक आंध्रवासियों ने अपना एक बड़ा साम्राज्य स्थापित किया। इसकी पुष्टि मैगस्थनीज के शब्दों यों व्यक्त होती है—''मौर्यों के बाद शक्तिशाली लोग आंध्र के ही है।'' फिर अशोक के शिलालेखों में आंध्र का नाम आता है। प्राकृत शिलालेखों में भी आंध्र शब्द का प्रयोग हुआ है। 'आंध्र' शब्द ने भाषापरक रूप में अपनी पहचान पाई। तेलुगु भाषा के प्रथम महाकवि नन्नय भट्ट ने नंदपूडि के शिलालेख में अपने बारे में यों लिखा है—''आंध्र कवित्व विशारदंडु'' (आंध्र तेलुगु भाषा की कविता का विशारद हूं)। इसके पश्चात् इतिहास में 'आंध्र' और 'तेलुगु' शब्द एक-दूसरे के पूरक शब्दों के रूप में प्रयुक्त होने लगे।

तेलुगु द्रविड़ परिवार की भाषा होते हुए भी आर्य परिवार की भाषाओं से अधिक प्रभावित हुई। इसके साथ इस भाषा में अंग्रेजी, फारसी, फ्रेंच आदि विदेशी भाषाओं के शब्दों ने भी अपना स्थान पा लिया है। अतः तेलुगु भाषा के विकास-क्रम को तीन युगों में बांटा जा सकता है—प्राचीन युग, मध्य युग और आधुनिक युग। आधुनिक युग में ही विशेषतः संपूर्ण भारत में पाश्चात्य लोगों के कठोर शासन एवं देश की रूढ़िगत मान्यताओं के कारण, अनेक ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न हुईं जिसके फलस्वरूप मानव की सोच के साथ भाषा में भी परिवर्तन होने के कारण द्रविड और आर्य दोनों भाषाओं का समन्वयात्मक रूप परिलक्षित होता है।

तेलुगु वाङ्मय के आधुनिक युग का प्रारंभ 19वीं शती के उत्तरार्ध में हुआ। भारत के इतिहास में यह युग अत्यंत महत्वपूर्ण एवं परिवर्तनशील माना जा सकता है। फलस्वरूप इस युग की समस्त प्रवत्तियों का प्रभाव आंध्र प्रांत पर भी पड़ा है।

हालांकि आंध्र प्रांत प्राकृतिक संपदा से भरपूर है। फिर भी प्राचीन परंपराओं, रूढ़िगत मान्यताओं एवं अंधविश्वासों के शिकंजे में आंध्र की जनता धंसती चली गई। तभी युगीन परिस्थितियों से प्रेरित अनेक समाज-सुधारवादी आंदोलनों के फलस्वरूप आंध्र के समाज-सुधारकों ने भी आंध्र प्रांत में नवीन जाग्रति लाने का भरसक प्रयास किया। इस युग में गद्य एवं पद्य दोनों का विकास साथ-साथ चला। तेलुगु के मर्मज्ञ विद्वान श्री परवस्तु चिन्नयसूरि (सन् 1806 से सन् 1862) ने ''बाल-व्याकरण'' की रचना की। इस व्याकरण द्वारा उन्होंने आधुनिक तेलुगु भाषा का स्वरूप निर्धारित किया और 'नीति चंद्रिका' के नाम से प्रथम प्रामाणिक गद्य-ग्रंथ का प्रणयन किया। इस प्रकार आधुनिक गद्य शैली का बीजारोपण हुआ और भाषा का अनुशासन भी। इसी कारण कविता की भांति गद्य रचनाएं भी व्याकरण सम्मत विकसित हुईं। इसी गद्य को विकसित करते हुए आगे बढ़ने वाले महानुभाव हैं श्री कंदुकूरी वीरेशलिंगम पंतुलुजी। गद्यात्मक साहित्य के विकास में अधिकतम श्रेय श्री वीरेशलिंगम पंतुलुजी को ही दिया जा सकता है। 'गद्य तिक्कन' नाम से विख्यात वीरेशलिंगम पंतुलु ई. सन् 1848 से 1919 की सेवा अविस्मरणीय है।

वीरेशलिंगम पंतुलुजी ने साहित्य को समाज-

सुधार का साधन भी बनाया। नारी समाज को शिक्षित करने के लिए इन्होंने ''विवेक-वर्धिनी' नाम से पत्रिका निकाली। इसी पत्रिका के माध्यम से उन्होंने विधवा विवाह की उपयुक्तता जताई। ''वितंतु (विधवा) शरणालय'' की स्थापना करके इन्होंने अपनी ओर से इस संस्था के लिए तीस हजार रुपये भी दिए। इनकी इन सेवाओं से प्रसन्न एवं प्रभावित होकर सरकार ने इन्हें सन् 1893 में ''राव-बहादुर'' नामक उपाधि प्रदान की। साहित्य क्षेत्र में भी इनका योगदान अतुलनीय है। वीरेशलिंगम पंतुलुजी ने कुल मिलाकर 13 ग्रंथ लिखे। इन्होंने तेलुगु में सर्वप्रथम 'प्रहसन' का आरंभ किया। समाज सुधार को लक्ष्य बनाकर इन्होंने कई प्रहसनों की रचना की। उनमें 'अपूर्व-ब्रह्मचर्य प्रहसन', 'विचित्र-विवाह', 'कलह-प्रिया', 'बलात्कार-गान-विनोद', 'वेश्या-प्रिय', 'महावंचक', 'असहाय-शूर', 'कौतुक वर्द्धनी' आदि उल्लेखनीय हैं।

नारी चेतना संबंधी विचारों को प्रस्तुत करते हुए इन्होंने 'सत्यवती चरित्र', 'चंद्रमती-चरित्र', 'सत्यसंजीवनी', 'सतीमणि-विजयमु', 'भानुमती-कल्याण' आदि स्त्री उपयोगी साहित्य की रचनाएं की। 'श्री विक्टोरिया महारानी चरित्र', 'जीसस-चरित्र' आदि जीवनियां लिखकर इन्होंने 'जीवनी-साहित्य' का भी श्रीगणेश किया। तेलुगु साहित्य का इतिहास लिखने में ये ग्रंथ आज भी महत्वपूर्ण साबित होता है।

इनके बाद वेंकटरत्नम पंतुलुजी 'आंध्र-जाक्सन' नाम से प्रख्यात हैं। वे तेलुगु एवं संस्कृत के प्रकांड पंडित हैं। इनके गद्य-ग्रंथों में नीतिचंद्रिका का पूरक ग्रंथ 'विग्रह-तंत्रमु' उल्लेखनीय है। 'महा-महोपाध्याय' की उपाधि से इन्हें सम्मानित भी किया गया।

इनके पश्चात् गुरजाडा श्रीराममूर्ति का नाम लिया जाता है। सन् 1851 से 1899 तक आप विजयनगर के सम्स्थान में आस्थान कवि थे। इन्होंने 'कवि-जीवितमुल' (कवियों की जीवनियां) नामक ग्रंथ लिखा है। 'मर्चेंट आफ वेनिस' का तेलुगु रूपांतर इन्होंने किया। इनकी अन्य कृतियों में 'कलापूर्णोदय कथा-संग्रह', 'तेनालि रामाकृष्णनि कथलु', 'तिम्मरूसु चरित्र' आदि मुख्य हैं। इन्होंने 'राजयोगी' नामक पत्रिका का संपादन कार्य भी संभाला था।

इनके पश्चात् आंध्र के विद्वानों में वेदम वेंकटराय शास्त्री का स्थान अनुपम है। ये एक ही साथ समालोचक, नाटककार और संपादक भी हुए। शास्त्रीजी ने संस्कृत से 'उत्तर-रामचरित', 'अभिज्ञान-शांकुतम्', 'मालविकाग्नि-मित्र', 'नागानंद', 'रत्नावली' आदि मौलिक नाटकों का प्रणयन भी किया।

आधुनिक तेलुगु साहित्य के प्रमुख युगकर्ताओं के अंतर्गत गुरजाडा अप्पाराव का नाम आदरपूर्वक लिया जा सकता है। समाज सुधारक एवं साहित्यिक गतिविधियों द्वारा समाज में जाग्रति फैलाने वाले गुरजाडा अप्पाराव अत्यंत वंदनीय व्यक्ति हैं। गद्य एवं पद्य में अपनी प्रतिभा के कारण वे अत्यंत लोकप्रिय हुए। वे विशाखपट्टणम जिले के एलमंचिलि के समीप के रायवरम गांव के निवासी हैं। उन्होंने कॉलेज में प्राध्यापक के रूप में कुछ दिनों तक कार्य संभाला फिर आनंद गजपति के दरबार में तथा रानी के आंतरंगिक सचिव के रूप में कार्यरत रहे। फिर मद्रास विश्वविद्यालय में फेलो के रूप में नियुक्त हुए। उनकी गद्यात्मक कृतियों के अंतर्गत लिखित नाटक 'कन्याशुल्कम' अत्यंत लोकप्रिय नाटक के रूप में आज भी प्रसिद्ध है। इस नाटक में इन्होंने सामाजिक कुरीतियों का खंडन किया, विशेषतः बाल-विवाह, विधवा-जीवन, अंग्रेजी शिक्षा के प्रति मोह तथा कन्या-शुल्क आदि विषयों पर हास्य व्यंग्य शैली में प्रहार किया। इस नाटक के संबंध में डॉ. सी.आर. रेड्डी जी का कथन है—''Kanyasulkam remains a master piece in the realm of social satire. Lastly tis is the grandest merit of our auther, his charecters are less types than individuals''. लगता है अप्पारावजी ने अपने जीवन के यथार्थ को संपूर्णतः इसमें व्यक्त कर दिया है। 'दिद्दुबाटु' तथा 'मी पेरिमिटि' प्रमुख कहानियां हैं। इसके बाद अप्पारावजी की लघु कहानियों को 'चिन्न कथलु' में संगृहीत किया गया है। गुरजाडाजी प्रगतिशील मानवतावादी साहित्यकार हैं।

पाश्चात्य नाटक संप्रदायों के अनुकरण पर तेलुगु में मौलिक नाटकों की रचना कर प्रदर्शित करने का श्रेय धर्मराजु कृष्णमाचार्युलु को मिला है। तेलुगु रंगमंच के विकास में इनके द्वारा ही नया अध्याय प्रारंभ हुआ है। तेलुगु में सर्वप्रथम इन्होंने ही 'विषाद-सारंगधर' नाम से एक दुःखांत नाटक को प्रस्तुत किया। इनकी कलम से 30 नाटक निकले, जिसमें 12 तेलुगु नाटक मुद्रित हैं। इनके नाटकों में 'प्रह्लाद', 'सावित्री' और 'पादुका पट्टाभिषेक' नाटकों ने विशेष ख्याति प्राप्त की। वे कुशल अभिनेता भी थे।

कोलाचलमु श्रीनिवास राव (सन् 1854 से 1919 तक) पेशे से वकील थे। इसी के साथ नाटककार भी थे। इनके नाटकों में 'राजराजु-चरित्र', 'मैसूर-राज्य', 'चांद बीबी' प्रसिद्ध नाटक हैं।

साहित्यिक तेलुगु को प्रधानता देते हुए भी गिडुगु वेंखटराममूर्ति पंतुलु ने सर्वप्रथम जन साधारण तक साहित्य को पहुंचाने निमित्त व्यावहारिक तेलुगु भाषा का प्रयोग किया है। इनका एक और महत्वपूर्ण कार्य है 'सवर' (शबर) जातियों से संबंधित कहानियां और गीत भी इन्होंने लिखे हैं। इनकी कलम से 'गद्य चिंतामणि' नामक ग्रंथ भी निकला है।

नादेल्ला पुरुषोत्तम कवि उत्तम कवि,

नाटककार और संपादक रहे। इन्होंने कोष और उपन्यास शास्त्र-ग्रंथों का प्रणयन किया है। 'बुधविधेयिनी' नामक मासिक पत्रिका का संपादन करते हुए राष्ट्रीय विचारों को इस पत्रिका के माध्यम से प्रोत्साहित किया। इनके द्वारा रचित तेलुगु नाटकों में 'पारिजातपहरण', 'हरिश्चंद्र' और 'सारंगधर' प्रमुख हैं।

दासु श्रीराम कवि (सन् 1864 से 1908 तक) जन्मजात प्रतिभा संपन्न व्यक्ति थे। इन्होंने सन् 1880 में 'कल्पवल्लि' नामक पत्रिका का संपादन किया।

पानुगंटि लक्ष्मीनरसिहं राय (सन् 1865 से 1940) ने 'साक्षी' नाम से समाज, जाति, साहित्य, संप्रदाय तथा अत्याचारों का खंडन-मंडन करते हुए अनेकानेक निबंध लिखे, जो छः भागों में प्रकाशित हैं। ये निबंध तेलुगु साहित्य की निधियां हैं।

श्री चिलकमूर्ति लक्ष्मी नरसिंहम् ने कई नाटक, उपन्यास, कहानियां लिखे। अन्य मौलिक उपन्यासों में 'अहिल्याबाई', 'हेमलता', 'गणपति', 'सौंदर्य तिलक', 'द्रौपदी-परिणय', 'नल-चरित्र' आदि प्रमुख हैं।

तेलुगु गद्य-साहित्य के विकास तथा आंध्र के इतिहास के अनुसंधान की दिशा में चिलकूरी वीरभद्र राय (सन् 1862 से 1923 तक) ने सराहनीय कार्य किया है। इनकी कृतियों में 'आंधुल-चरित्र' (आंध्रों का इतिहास) अत्यंत प्रमुख माना जाता है।

तेलुगु भाषा को सुसमृद्ध बनाने की दिशा में कोम्मराजु वेंकट लक्ष्मण कवि (सन् 1877 से 1923 तक) ने 'विज्ञान-चंद्रिका-मंडली' नामक ग्रंथ-माला का प्रकाशन आरंभ किया। इन्होंने ही सर्वप्रथम सन् 1913 में तेलुगु विश्वकोश के निर्माण का श्री गणेश किया। इतिहास संबंधी इनके ग्रंथों में 'हिंदू-मुहम्मदीय-युगमुलु', 'शिवाजी चरित्र', 'हिंदू-देश-कथा-संग्रहमु' उल्लेखनीय माने जाते हैं। 'लक्ष्मणराय-व्यासालु' इनके आलोचनात्मक निबंधों में हैं।

तेलुगु की सर्वप्रथम दैनिक पत्रिका 'आंध्र-पत्रिका' के शुभारंभ का श्रेय काशीनाथुनि नागेश्वर राय (सन् 1867 से 1938 तक) को ही जाता है। इसके अलावा 'अमृतांजन' नामक औषधि का आविष्कार इन्हीं के साथ संपन्न हुआ है। इसी औषधि के प्रचार निमित्त 'आंध्र-पत्रिका' चली। इसके बाद इन्होंने 'भारती' नामक तेलुगु मासिक साहित्यिक पत्रिका का संपादक कार्य वहन किया। इसके अलावा 'आंध्र वाङ्मय चरित्र' नाम से तेलुगु-साहित्य का इतिहास भी इन्होंने लिखा है।

तंजनगरमु तेवप्पेरूमालय्या (सन् 1872 से 1921 तक) का जन्म एवं निवास स्थान मद्रास था। आपने गद्य-साहित्य की अपूर्व सेवा की। इन्होंने 'महाभारत', 'रामायण', 'भागवत' ग्रंथों की गद्य में रचना की। 'वसुचरित्र', 'मधुचरित्र' आदि प्राचीन काव्यों की भूमिकाएं तथा व्याख्याएं भी लिखीं।

मंत्रीप्रगड भुजंग राव (सन् 1876 से 1940 तक) महान पंडित थे। साथ-साथ वह आलोचक और नाटककार भी थे। 'मंजुवाणी' नामक पत्रिका का संपादन भी इन्होंने किया। 233 पंडित कवियों की जीवनियां 'आधुनिकांध्र कवि-जीवितमुलु' नाम से प्रकाशित करवाने के अतिरिक्त 'दिलीप-चरित्र', 'गोखले चरित्र', 'आंध्र कथा सरित्सागरमु' आदि इनकी अन्य गद्य कृतियां हैं।

कट्टमंचि रामलिंगा रेड्डी (सन् 1880से 1951 तक) आंध्र विश्वविद्यालय के प्रथम उपाध्यक्ष रहे। इनके द्वारा रचित निबंधों का संग्रह 'व्यास-मंजरी' नाम से प्रकाशित है, जो पांच भागों में पाया जाता है। तेलुगु-साहित्य का प्रामाणिक, प्रौढ़ एवं प्रथम समीक्षा ग्रंथ के रूप में 'कवित्त-तत्व विचारमु' इनके द्वारा रचित प्रशस्त ग्रंथ है।

तेलुगु साहित्य का इतिहास लिखने का श्रेय बंगूरी सुब्बराव (सन् 1886 से 1923 तक) को मिलता है। इनके द्वारा रचित 'आंध्र वाङ्मय चरित्र' में आंध्र वासियों का वृत्तांत और तेलुगु भाषा की उत्पत्ति और विकास क्रम का परिचय दिया गया। इनकी अन्य कृतियों में 'प्रभातमु' (उपन्यास), 'वेमना-जीवित चरित्र', 'ईसप नीति-कथलु' (ईसप की उपदेशात्मक कहानियां), 'अरेबियन नाइट्स कथलु' इत्यादि प्रमुख हैं।

इस प्रकार इस आधुनिक एवं नवजागरण युग के प्रारंभ में कई समाज-सुधारकों के अथक प्रयासों से प्रभावित होकर कई साहित्यकारों ने गद्यात्मक साहित्यिक कृतियां लिखीं। इनकी कृतियों द्वारा उस समय के स्वस्थ समाज के निर्माण में योगदान प्राप्त हुआ। इसके अलावा गद्यात्मक विधाओं में सामाजिक कुरीतियों का खंडन करते हुए समाज में क्रांति की लहर फैला दी। इसी समय तेलुगु भाषा एवं साहित्य को नया रूप मिला है। संस्कृतनिष्ठ साहित्यिक भाषा से हट कर व्यावहारिक भाषा के प्रयोग को अमल करने में कई गद्यात्मक साहित्यकारों ने आंदोलन प्रारंभ कर दिए। केवल भाषा में ही परिवर्तन नहीं वरन् जाति-धर्म-वर्गगत वैमनस्यों के निर्मूलन में भी इनका नवीन प्रयास आधुनिक आंध्र समाज के निर्माण में प्रशंसनीय रहा है।

हिंदी विभाग, आंध्र विश्वविद्यालय,
विशाखपट्टणम-530003

तुलसी के हनुमत्-विग्रहों का काशी के सामाजिक जीवन में महत्व

डॉ. उदय प्रताप सिंह

श्रीमहंत रामाश्रयदाय स्नातकोत्तर महाविद्यालय में डॉ. उदय प्रताप सिंह एसोसिएट प्रोफेसर हिंदी के पद पर कार्यरत।

वाराणसी अर्थात् काशी एक नदी का उत्तरमुखी गंगा तीर्थ है। वरुणा और अस्सी नदियां इसे अपनी सीमाओं में बद्ध करते हुए गंगा के तीर्थ केंद्र में पंचनद गंगा को स्थापित करती है। कुंड, पुष्कर, वापी, कूप, गढ़हा और मत्स्योदरी झील जैसी छोटी-मोटी जल संस्थाएं इसे तीर्थ, पूर्णतीर्थ और परमतीर्थ बनाती हैं। काशी में मरना मोक्ष है, जीना चना-चबैना पर निर्भर है। यहां की आंखें पढ़ने के लिए खुलती हैं, जिह्वा और होंठ मंत्र बोलते हैं। हर छोटा-बड़ा आदमी काशी की मिट्टी पर पांव रखते ही ऋषितुल्य हो जाता है। पूरे शहर में कहीं सौ-दो-सौ मीटर सीधी सड़क नहीं, विशाल पार्क नहीं। बहुत सुंदर सभाकक्ष नहीं पर यहां जो आता है, जाने का नाम नहीं लेता। वह आसमान में चलता है और ऋतुओं की हवा में नहाता है। मंदिरों के शिखर पर प्रणाम रोपता है। व्यक्ति यहां आना चाहे न चाहे, आने पर जाना नहीं चाहता। स्वामी राघवानंद दक्षिण से चलकर आए और पंचगंगा घाट पर अपनी भक्ति साधना का परचम लहरा गए। उन्हीं के शिष्य स्वामी रामानंद अल्पवय में ही प्रयाग से वाराणसी आकर उसी पंचगंगा पर निर्गुण, सगुण और सामाजिक समरसता की त्रिवेणी प्रवाहित कर गए। स्वामी रामानंद के शिष्य कबीर और भक्त रैदास शहर बनारस के ही हैं। यह नगर गोस्वामी तुलसीदास का बसेरा रह चुका है। बुद्ध ने यहीं से 'धर्मचक्र प्रवर्तन' किया। गांधी के हरिजन आंदोलन की प्रथम धारा कबीर मठ से ही निकली। यहीं पंडितराज जगन्नाथ ने सभी पंडितों का मान-मर्दन किया और गंगा की उठती लहरों में एक लहर की तरह तर गए। भारतेंदु, प्रेमचंद और प्रसाद से धूमिल तक यहीं के जनकवि हैं। तंत्र विद्या के आचार्य पं. गोपीनाथ कविराज की साधनाभूमि काशी है। संगीत के परम पारखी और राग-रागिनियों के निष्णात पंडित ठाकुर जयदेव सिंह का आवास आज भी यहां विद्यमान है। सन् 1857 में स्वतंत्रता की लड़ाई को नई धार देने वाली महारानी लक्ष्मीबाई का जन्म काशी में ही हुआ था।

धर्म, शास्त्र और ज्ञान का केंद्र ही नहीं, संस्कृति, कला, साहित्य, पत्रकारिता और आजादी के आंदोलन की स्थली भी काशी है। 'बनारस' अखबार से लेकर 'रणभेरी' और 'मर्यादा' जैसी अनेक क्रांतिकारी पत्रिकाएं यहीं विचार-परिवर्तन के साथ स्वीकृत और वर्जित रास्तों से गुजरती गईं। यहां के राजनेता साहित्यकार कहलाने में गौरव का अनुभव करते थे और संत महात्मा उपदेश के लिए साहित्य को ही माध्यम बनाते थे। स्वामी रामानंद से लेकर काष्ठजिह्वा स्वामी तक और राजाओं में ईश्वरीप्रसाद नारायण सिंह से अंतिम काशीराज विभूति नारायण सिंह तक साहित्य-सेवा को ही अपना कर्म मानते थे। नगर सेठों में साहित्य के प्रति वैसी ही निष्ठा है जैसे शिव के प्रति है। शेखअली हजी ईरान से आकर बनारसी बन जाते हैं। दाराशिकोह के गुरु शेख चेहली बनारस के रंग में रंगे होने का अहसास गहराई से करते हैं। तेग अली जैसे मौज-मस्ती वाले 'रामधे' की कसम खाने वाले और नजीर बनारसी जैसे गंगा पुजारी औलिया इसी शहर की हसीन हस्ती थे। कलकत्ता जाते समय एक दिन का 'सुबहे बनारस' मियां गालिब को ऐसा जमा कि महीनों वह काशी के घाटों की मस्ती में डूबे रहे। यहां के कण-कण में उन्हें देवता नजर आने लगे। चंद्रशेखर आजाद और हजारीप्रसाद द्विवेदी बनारस के कारण ही इतनी ऊंचाई प्राप्त कर सके थे। महामना मदनमोहन मालवीय की अक्षय कीर्ति का स्तंभ 'काशी हिंदू विश्वविद्यालय' इसी नगर में आधुनिक तक्षशिला और नालंदा की भूमिका का निर्वहन कर रहा है। आज से लगभग एक सौ से अधिक वर्षों पूर्व राजर्षि उदय प्रताप सिंह 'जू देव' ने आधुनिक शिक्षा का विद्यामंदिर 'क्षत्रिया कॉलेज' के रूप में बनारस में ही स्थापित किया था। आधुनिक ऋषि गुरु गोलवलकर यहीं के ज्ञान चेतना से आप्लावित हो संपूर्ण भारत को सामाजिक एकात्मकता का महामंत्र दे गए। आधुनिक हिंदी को नई दिशा देने वाले भारतेंदु हरिश्चंद्र ने इसी बनारस में रहकर हिंदी को हिमालयी व्यक्तित्व प्रदान किया।

आधुनिकता की दौड़ में काशी किसी से पीछे नहीं है। इस समय बनारस पर वृत्तचित्र बन

रहे हैं। फिल्में बनाई जा रही हैं। करोड़ों की लागत से शॉपिंग सेंटर बन रहे हैं। हर नगर में एक बनारस बस रहा है। देश में, परदेश में हिंदुस्तान के कई अखबारों में बनारस का जिक्र हो चुका है। रेडियो, दूरदर्शन, साहित्य, छोटी-बड़ी मीडिया संस्थाएं यहां दिल्ली का रक्त-बीज लेकर मुंबई शैली में धड़कने लगी हैं। इन सबके बावजूद काशी की मस्ती मरी नहीं, अपितु और हरी-भरी हुई है। यहां के देवालय, संस्कृत के विद्यालय, घाटों की सुषमा, तीर्थ की महत्ता, ज्ञान की गुणवत्ता आज भी बनारस के रस को बनाए हुए हैं। देवाधिदेव महादेव तो हैं ही तुलसीदास द्वारा स्थापित बारह हनुमान विग्रह काशी की जीवंतता में अन्यतम महत्व रखते हैं। तुलसीदास नरहरिदास के शिष्य थे। नरहरिदास के गुरु स्वामी रामानंद स्वयं श्रीराम के साथ हनुमान की आराधना में लीन रहा करते थे। तुलसीदास के मानस में द्वादश हनुमत् विग्रहों की स्थापना का संकल्प निश्चित रूप से उक्त परंपरा से जुड़ा है। भारतीय धर्म साधना में बारह संख्या का महत्व प्राचीन काल से ही प्रचलित है। सूर्य के बारह रूप, बारह ज्योतिर्लिंग, बारह आलवार, स्वामी रामानंद के बारह शिष्य इसके दृष्टांत हैं। तुलसीदास द्वारा स्थापित बारह हनुमत् विग्रहों की अंतर्सूत्रता इस परंपरा से अभिन्न है।

भारतीय धर्म साधना में गौतम बुद्ध, गोरखनाथ तथा स्वामी रामानंद—तीन ऐसी विभूतियां हुईं, जिन्होंने चिंतन की मूलधारा को अपनी अलौकिक मनीषा और अद्‌भुत मेधा से संचालित किया है। बुद्ध धर्मचक्र प्रवर्त्तन का सिद्धांत कार्यान्वित करते हैं। गोरखनाथ जीवन और उससे संपृक्त धर्म को व्यावहारिक धरातल पर उतारते हैं। स्वामी रामानंद उक्त चिंतन का समिश्रण परोसते हैं। सगुण और निर्गुण उनके यहां बाह्य आवरण हैं। दोनों ईश्वर तक पहुंचने के मार्ग हैं। लोकहित में उन्होंने दोनों को मान्यता प्रदान की। उनके बारह प्रमुख शिष्यों में इस पारंपरिक भक्ति के लक्षण देखे जा सकते हैं। उन्हीं में से एक नरहरिदास ने तुलसीदास को रामभाव तथा रामचरित प्रसारित करने का आदेश दिया। उल्लेखनीय है कि 'श्रीमठ' (काशी) रामभक्ति परंपरा का आदिपीठ है। उसी काशी को तुलसीदास ने अपनी कर्मभूमि बनाई। श्रीरामचरितमानस की रचना और बारह हनुमत् विग्रहों की स्थापना की।

आज जिस तरह सांस्कृतिक संकट गहराता जा रहा है। समाज में भ्रष्टाचार और मूल्यहीनता चरम सीमा पर है। अपनी परंपरा से उछिन्न होने में हमें गौरवान्भूति होने लगी है। तुलसीदास का कालखंड भी इन्हीं विसंगतियों से ग्रस्त दिखाई पड़ता है। उस समय तक पारंपरिक वर्ण व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गई थी। भारतीय समाज जातियों-उपजातियों एवं संप्रदायों में विभक्त था। मुस्लिम शासकों का आगमन और आक्रमण भारतीय समाज में दोहरी प्रतिक्रिया उत्पन्न कर रहा था। बड़ी जातियां सुरक्षात्मक संकीर्णता का दायरा पकड़ चुकी थीं। छोटी जातियां भय, प्रलोभन और कभी-कभार सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए धर्मांतरण कर रही थीं। समाज में एक विचित्र प्रकार की ऊहात्मक स्थिति थी। अकबर के लाख कूटनीतिक प्रयास के बावजूद हिंदू धर्म इस्लाम से ताल-मेल नहीं बैठा पा रहा था। एक में विजेता का दर्प था तो दूसरे में अपने देश व संस्कृति का प्रबल स्वाभिमान।

ऐसे युगीन अंतर्संघर्ष में तुलसीदास का साहित्य विशेष विमर्श की आवश्यकता रखता है। उनके जीवन का अधिकांश समय अकबर के शासनकाल में ही व्यतीत हुआ। अकबर के गद्दी पर बैठते समय तुलसीदास युवावस्था की दहलीज पर थे। सत्ता की बागडोर संभालते ही अकबर ने उत्तर भारत के राजपूत राज्यों पर आक्रमण प्रारंभ कर दिया था। सं. 1619 में मालवा, सं. 1621 में गोंडवाना, सं. 1625 में चित्तौड़गढ़ और कालिंजर, सं. 1626 में रणथंभौर, सं. 1629 में पंजाब, सं. 1629-30 में गुजरात और सं. 1633 में उसने बिहार पर भयंकर आक्रमण किया। आक्रमणों की इस शृंखला से भारतीय जनमानस खिन्न था। वह एक ऐसे लोकनायक की तलाश में था, जो इनका प्रतिकार दृढ़ता से कर सके। अकबर के स्वेच्छाचारी एवं दमनकारी रूप से तुलसीदास खिन्न थे। तुलसीदास इस समय रामचरितमानस की रचना में तल्लीन तो थे पर राजनीतिक और तात्कालिक परिवेश पर उनकी दृष्टि अत्यंत सजग थी। वे शासक की निरंकुशता भूलते नहीं हैं। कवि-कर्म की यह सजगता तुलसी सरीखे कवि में ही देखी जा सकती है—

''गोंड गंवार नृपाल महि जमन महा महिपाल।
साम न दाम न भेद कलि केवल दण्ड कराल।।''

भारतीय समाज की दुर्बलताएं उन्हें ज्ञात थीं। उक्त विषम परिस्थिति में गोस्वामीजी ने कालजयी साहित्य का सृजन किया। राम और रामकथा के माध्यम से उन्होंने सामाजिक भेद-भाव को समाप्त करने का प्रयास किया। महत्वपूर्ण बात यह है कि उनकी रचना का उत्कृष्ट रूप तथा कर्म का उज्ज्वल पक्ष काशी में ही संपन्न हुआ।

ऐतिहासिक दस्तावेजों तथा स्वयं कवि के साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि तुलसीदास को काशी बहुत प्रिय थी। काशी में रहते हुए उन्हें पीड़ित भी किया गया। उनकी कालजयी रचना श्रीरामचरितमानस को क्षति पहुंचाई गई। उनकी साधना में विघ्न भी डाला गया। फिर भी रामचरितमानस का अधिकांश भाग यहीं रचा गया। उनकी प्रौढ़तम कृति 'विनय

हनुमानघाट, वाराणसी

पत्रिका' यहीं सृजित हुई। काशी में वैष्णव कृष्णभक्ति का केंद्र 'गोपाल मंदिर' में विनय पत्रिका के रचने का प्रमाण है। स्पष्ट है कि उस समय भारत इस्लाम मतावलंबियों द्वारा शासित था। रामकथा को अपने स्वातंत्र्य अभियान का मेरुदंड घोषित करते हुए तुलसीदास वनाटन करते राम को प्रतिज्ञाबद्ध करवा लेते हैं। उनकी उस प्रतिज्ञाबद्धता में वानर-रीछ, भालू, जटायु सभी सहायक बनते हैं। श्रीराम कह उठते हैं, ''निसिचर हीन करहुं मही भुज उठाय प्रन कीन्हं।'' वस्तुतः राम का इस प्रकार प्रतिज्ञाबद्ध होना भारतवासियों की प्रसुप्त चेतना को जाग्रत करना है। हनुमान इत्यादि पराक्रमशाली वीर भक्तों को इस अभियान से संलग्न करना राष्ट्रीय स्वाधीनता को वाणी देना है। गोस्वामीजी का विश्वास था कि जब तक राष्ट्र के नागरिक शारीरिक और बौद्धिक दोनों रूपों से मजबूत नहीं होंगे तब तक स्वतंत्रता की प्राप्ति दिवास्वप्न ही रहेगी।

इसी आवश्यकता की पूर्ति हेतु तुलसीदास ने काशी में बारह हनुमत् विग्रहों की स्थापना की। ज्ञातव्य है कि जहां भी हनुमत् विग्रहों की स्थापना हुई वहां प्रायः 500 वर्षों से शक्ति के प्रतीक अखाड़े भी हैं। ये अखाड़े मात्र मल्लों के व्यायाम स्थल ही नहीं, अपितु शक्ति के केंद्र भी हैं। ये काशी की सांस्कृतिक विरासत के जीवंत रूप हैं। आश्चर्य की बात है कि आज भी कुश्ती-दंगल तथा पहलवानों के परमाराध्य बजरंग बली हैं। तुलसीदास द्वारा स्थापित बारह हनुमत् विग्रह आज भी अपने स्थान पर सुरक्षित हैं। कहीं-कहीं तो हनुमत् मूर्तियों को रोजी-रोटी का साधन बनाकर गृहस्थ व्यवस्था में उलझा दिया गया है। नरिया पर मंगलकरण की मूर्ति इसका साक्षात् दृष्टांत है। कुष्ठी हनुमान (कर्णघंटा) भी कुछ इसी तरह के भौतिक पचड़ों से घिरे प्रतीत होते हैं। आदमपुर थाना के पार्श्व भाग में स्थित हनुमत् विग्रह का बालरूप तुलसीदास की प्रथम स्थापना है। बहिर्साक्ष्य इस पर पूर्णतः मुखर हैं कि तुलसीदास का काशी में प्रथम पड़ाव प्रह्लादघाट पर ही हुआ था। वहां का विग्रह जीवंत अवस्था में विद्यमान है। पत्थरों पर उत्कीर्ण वाक्य भी इस बात की पुष्टि करते हैं। 'बृद्धकाल' की मूर्ति महामृत्युंजय दारानगर के समीप है। वहां मंदिरों का संकुल है पर हनुमत् विग्रह की छटा न्यारी है। राजमंदिर, गायघाट, पंचगंगाघाट, नीचीबाग (संकटदहन) , कर्णघंटा (कुष्ठी), मीरघाट, हनुमानघाट, नरिया (मंगलकरण),

संकटमोचन मंदिर, वाराणसी

संकटमोचन तथा तुलसीदासघाट के विग्रह पांच सौ वर्षों से निरंतर श्रद्धा एवं शक्ति का केंद्र बने हुए हैं। इसमें संदेह नहीं कि तुलसीदास रामभक्त हनुमान से अत्यंत प्रभावित हैं। 'कवितावली', 'हनुमान बाहुक' और 'विनय पत्रिका' की हनुमत् प्रशस्ति उसी के प्रमाण हैं।

उक्त विग्रहों के संदर्भ में कहा जाता है कि तुलसीदास का प्रह्लादघाट पर निवास करते समय गंगाराम से मित्रता हो गई। वह ज्योतिष विद्या के जानकार थे। अकस्मात् एक दिन महाराज कुमार बनारस शिकार के लिए जंगलों में दूर तक चले गए। रात्रि तक वापस न आने पर महाराजा बनारस को चिंता हुई। समाधान के लिए उन्होंने गंगाराम से संपर्क किया पर समाधान न निकलता देख गंगाराम के मित्र तुलसीदास ने 'रामाज्ञाप्रश्न' के माध्यम से मित्र की चिंता दूर की। प्रातः राजकुमार का सकुशल लौटना महाराजा के लिए प्रसन्नता की बात थी। पुरस्कार स्वरूप उन्होंने गंगाराम को बारह सौ रुपये प्रदान किए। गंगाराम ने वह पुरस्कार राशि 'रामाज्ञा प्रश्न' के रचयिता अपने मित्र तुलसीदास को दे दी। उन्हीं रुपयों से गोस्वामी तुलसीदास ने बारह हनुमत् विग्रहों की स्थापना की। ऐसा लोकविश्वास तो है ही 'गुंसाईचरित' में इसका उल्लेख भी मिलता है।

तुलसीदास द्वारा स्थापित हनुमत् मूर्तियों का मुख दक्षिण दिशा की ओर एक विशेष उद्देश्य से किया गया है। कपिध्वज अर्जुन के ध्वज की हनुमत् मूर्ति पौराणिक है, पर हनुमान पूजा का प्रसार-प्रचार वर्तमान रूप में जैसा मिलता है वैसा पहले नहीं था। शक्ति के केंद्र अखाड़ों का निर्माण और धार्मिक रंग में रामदल, महावीर दल की विस्तृत योजना तुलसीदास की थी। हनुमत् विग्रहों के अतिरिक्त लाटभैरव से लंका तक रामलीला का आयोजन भी उन्हीं

प्रह्लादघाट, वाराणसी

के चिंतन का परिणाम है। हनुमत् विग्रहों की उक्त शैली के अनुकरण पर ही उत्तर भारत में अनेक संस्थाएं खड़ी हो गईं। अयोध्या की हनुमानगढ़ी इसका उदाहरण है। पश्चिमी भारत में उन्हीं की अनुकृति पर समर्थगुरु रामदास ने मारुतिनंदन मंदिरों की गांव-गांव स्थापना करवा कर बल और बुद्धि को समान महत्व प्रदान किया था। समर्थ गुरु रामदास के इन्हीं प्रयत्नों के प्रतिफल थे शिवाजी महाराज। बीसवीं शती में उसी अनुकृति पर लोकमान्य तिलक ने संपूर्ण महाराष्ट्र में 'गणपति बप्पा मोर्‌या' की स्थापना कर संगठित एवं समर्थ भारत की कल्पना को साकार किया। इस प्रकार तुलसीदास काशी के साथ पूरे भारत को समर्थ, स्वतंत्रचेता और सुसंगठित कर रहे थे। इस प्रयास द्वारा रामायणकालीन चरित्रों को नया तेवर और नई ऊर्जा भी मिल रही थी।

गोस्वामी तुलसीदास भारतीय संस्कृति के सूर्य हैं। उनकी रचना रूपी रश्मियों से संपूर्ण भारतीय जनमानस आलोकित है। रचनाओं में पात्रों का युगबोध और उनके माध्यम से व्यक्ति युगीन संदर्भ तुलसीदास को आज भी प्रासंगिक बनाए हुए हैं। भारतीय संस्कृति पर निरंतर होने वाले घात-प्रतिघात से तुलसीदास के पात्र टूटते नहीं, अपितु जिजीविषा संपन्न बने रहते हैं। हनुमान उन पात्रों में अग्रणी हैं। यह सब उनके ऊर्जावान पात्र ही संभव बनाते हैं। राम, लक्ष्मण, सीता, हनुमान आदि को केंद्र बिंदु में रखकर गोस्वामीजी ने स्वाधीनता के सूर्य को प्रथम अर्घ्य दिया है। उन्होंने रामभक्ति को केंद्र में रखकर भारतीय समाज को एकात्म होने का मंत्र दिया। हनुमत् विग्रहों की स्थापना इस संदर्भ में महत्वपूर्ण बन जाती है।

काशी में हनुमत् आराधना की प्राचीन परंपरा है। तुलसीदास के समकालीन वरुणापार इलाके में भी इधर 16वीं शती का एक हनुमत् विग्रह प्राप्त हुआ है, जो अस्सी क्षेत्र में तुलसी स्थापित विग्रहों के अतिरिक्त है। यह बालरूप हनुमत् विग्रह आंजनेय सिद्धपीठ श्री संकटहरण हनुमान मंदिर-बेनीपुर, सारनाथ के नाम से जाना जाता है। श्रीचित्रापुर मठ उत्तरी केनरा (कर्नाटक) के साधुओं ने इसकी पूजा नवंबर 2011 में प्रारंभ की थी। आज यहां ग्राम समितियां बनी हैं जिनके माध्यम से विशाल प्रांगण और प्राचीन सरोवर का पुनरुद्धार हो सका है। इसके प्रेरक समाजसेवी श्री ललित मालवीय बताए जाते हैं।

तुलसीदास प्रेम को सुदृढ़ समाज का मेरुदंड स्वीकार करते हैं। प्रेम के समक्ष सभी नियम बौने हैं। प्रेम में नियम शिथिल हो जाते हैं। नियम व्यवस्था का नियामक है, पर प्रेम मनुष्यता का। उनके राम निषाद को गले लगाते हैं। शबरी का जूठा बेर खाते हैं। गिद्ध को गोद में बैठाते हैं। रीछ-वानर-भालू जैसी जातियों को महत्तर उद्देश्य के लिए जोड़ते हैं। मित्रवत् व्यवहार करते हैं, सुहृदवत् सम्मान देते हैं। काशी में बैठे इस मनोजगत की रचना तुलसीदास ने की थी। हनुमत् विग्रहों की स्थापना उसी महान उद्देश्य का प्रथम चरण था। इन योजनाबद्ध उपक्रमों से तुलसीदास ने सामाजिक एकता तथा राष्ट्रीय स्वाभिमान के जो स्वप्न देखे थे कालांतर में वे कैसे सफलीभूत हों इसके लिए और अधिक चिंतन की आवश्यकता है। पर इतना तो कहा ही जा सकता है कि उत्तरी भारत से वे भारत को राममय कर गए। उनका दृढ़ विश्वास था कि जहां हनुमान हैं, वहां राम भी हैं। उनके हृदय में राम हैं। उनके मन में राम हैं। उनकी भक्ति में राम हैं। उनके स्वप्न और जागरण में राम हैं। अतः गोस्वामीजी ने धनुर्धारी राममंदिर न बनाकर, रामविग्रह की स्थापना न कर हनुमत् विग्रहों की स्थापना की, हनुमत् मंदिरों का निर्माण करवाया। इस राममयता में काशी स्थित बारह हनुमत् विग्रहों का अविस्मरणीय महत्व है।

एसोसिएट प्रो. हिंदी, बी.एफ.एस.-13,
हरनारायण विहार, सारनाथ,
वाराणसी-221007, उत्तरप्रदेश

जीवन सौंदर्य के युगधर्मी कवि ठाकुर

डॉ. ओम प्रकाश भटनागर

डॉ. ओम प्रकाश भटनागर विभिन्न साहित्यिक पत्रिकाओं में विविध विषयों पर स्वतंत्र लेखन में सक्रिय।

बुंदेलखंड ने समय-समय पर अनेक इतिहास प्रसिद्ध हस्तियों को जन्म दिया है। जिन्होंने अपने विलक्षण कृतित्व और व्यक्तित्व से इतिहास में अपना नाम हमेशा के लिए दर्ज करा दिया। बुंदेलखंड का नाम आते ही आल्हा-ऊदल और महारानी लक्ष्मीबाई का नाम सहज रूप से जुबान पर आ जाता है। लेकिन इनसे भी पूर्व इस धराधाम पर ऐसी महान विभूतियों ने जन्म लिया, जिनके अद्‌भुत कृतित्व और व्यक्तित्व ने इतिहास में बुंदेलखंड का नाम अमर कर दिया। इन्हीं विभूतियों में थे अद्‌भुत व्यक्तित्व और कृतित्व के धनी कविवर ठाकुरदास। कवि ठाकुर का कृतित्व ही अद्‌भुत नहीं है बल्कि उनका व्यक्तित्व भी विलक्षण था। बुंदेलखंड के इस युगधर्मी रचनाकार ने अपना सारा जीवन समाज को साहित्य के माध्यम से समाज सुधार के लिए समर्पित कर दिया था।

कवि ठाकुरदास का जन्मकाल वि.सं. 1823-1880 माना जाता है। ये महाकवि पद्‌माकर के समकालीन थे। पद्‌माकर बुंदेली भाषा के ओजस्वी कवि थे। दोनों कवियों में खूब गठती थी। हाजिर-जवाबी में जैसे कविवर पद्‌माकर थे उसी प्रकार से कवि ठाकुर भी थे। ऐसा लगता था जैसे हर समय सरस्वती उनके जुबान पर सवार रहती हैं। ये आशु कविता के सिद्धहस्त थे। कभी भी, किसी भी विषय या दृश्य पर कविता बना देना इनके लिए साधारण बात थी। कवि ठाकुर का पूरा नाम लाला ठाकुरदास था। इनके पितामह कायस्थ खंगराय थे जो काकोरी, उत्तरप्रदेश के मनसबदार थे। पिता लाला गुलाबराय ओरछा महाराज के मुसाहब थे। इनके पूर्वज उत्तरप्रदेश से आकर जैतपुर (बिजावर राज्य) में बस गए थे। जिन दिनों इनके पिता ओरछा में कार्यरत थे, उसी दौरान इनका जन्म हुआ था। इस प्रकार इनका जन्म वि.स. 1823 में ओरछा में हुआ था। प्रारंभ से ही इन्हें कला, संस्कृति और साहित्य में विशेष रुचि थी। परिवार में भी शिक्षा और साहित्य का वातावरण होने के कारण इन पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से साहित्य का गहरा प्रभाव पड़ा। इनके पिता साहित्य-प्रेमी ही नहीं साहित्य के पारखी भी थे। बचपन में ही बेटे में साहित्य के प्रति विशेष रुचि देखकर इन्हें जहां प्राचीन शिक्षा पद्धति से शिक्षा दिलवाने का प्रबंध किया गया, वहीं गणित में 'लीलावती' तथा काव्य में 'कविप्रिया, रामचन्द्रिका, मानमंजरी और अनेकार्थ-नाल-भाला' जैसे अनेक ग्रंथों का भी उत्तम तरीके से अध्ययन करवाया गया। इन्हें संस्कृत भाषा का ज्ञान था। पुराणों का भी इन्होंने अध्ययन किया था। इस प्रकार बचपन में ही इन्होंने गणित, साहित्य और पुराण का ज्ञान प्राप्त कर, इसी रास्ते पर आगे बढ़ने के संकेत पिता को दे दिए थे।

बुंदेलखंड के प्राकृतिक सौंदर्य और वातावरण ने इन्हें काव्य के लिए तो प्रेरित किया ही, साथ ही इनमें प्रकृति के प्रति आकर्षण भी पैदा हुआ। पारंपरिक शिक्षा और संस्कार प्राप्त करने के उपरांत बड़े होने पर अपनी विलक्षण काव्य प्रतिभा के कारण जैतपुर-नरेश केशरी सिंह के ये आश्रित कवि हो गए और उनकी मृत्यु होने के बाद उनके सुपुत्र राजा पारीछत के ये आश्रित कवि हो गए। राजा पारीछत ने इन्हें अपनी सभा के रत्नों में प्रमुख स्थान दिया। इनकी हैसियत राजकवि की होने के कारण इन्हें अन्य राजदरबारों से आमंत्रण मिलता था। जिससे इनकी लोकप्रियता जैतपुर के बाहर भी हो गई थी। उसी समय कविवर पद्‌माकर बांदा-नरेश के राजकवि हुआ करते थे। उनका बांदा-नरेश हिम्मत बहादुर बहुत आदर करते थे। इस तरह कवि ठाकुर और कविवर पद्‌माकर दोनों राजकवि होने के कारण दोनों का दोनों राज्यों में अक्सर आना-जाना हुआ करता था। और कविताई की प्रतियोगिता दोनों में अक्सर होती रहती थी। एक बार बांदा-नरेश हिम्मत बहादुर ने पद्‌माकर से चुहल करते हुए पूछा—''पद्‌माकरजी कहिए, ठाकुर की कविता कैसी होती है?'' पद्‌माकर वैसे तो कवि ठाकुर से ऊपरी तौर पर खूब स्नेह प्रदर्शित करते थे, लेकिन अंदर ही अंदर ईर्ष्या करते थे। पद्‌माकर ने ईर्ष्या-भाव से कहा, ''कविता अच्छी और भावना से पूर्ण होती है, परंतु चरण कुछ हल्के होते हैं।'' ठाकुर से रहा न गया तुरंत इसका उत्तर दिया।

कवियों के साथ किवदंतियों का चोलीदामन का संबंध हुआ करता है। विशेषकर शृंगार और ओज के कवियों का जीवन तो

किवदंतियों से भरा हुआ है। कहा जाता है कि कवि ठाकुर बहुत ही स्वाभिमानी, दूरदर्शी और ठसकपन वाले व्यक्ति थे। बड़े से बड़े व्यक्ति को उचित जवाब अवश्य दिया करते थे। न तो किसी का कभी अपमान करते थे और न अपमान सहकर चुप बैठ जाते थे। एक दिन किसी बात को लेकर राजा पारीछत ने इन्हें कुछ अपमान भरे शब्द कह दिए। फिर क्या था, कवि ठाकुर को यह नागवार गुजरा। आव देखा न ताव। तलवार म्यान से खींच ली और ये छंद कहते हुए अपमान का उत्तर इस प्रकार दिया—

''सेवक सिपाही हम उन रजपूतन के,
दान युद्ध जुरिबे में जे न नेकु मुरके।
नीति देन बारे हैं मही के महिपाल को,
कवि उनहीं के जे सनेही सांचे उरके।
ठाकुर कहत हम बैरी बेवकूफन के,
जलिम दमाद हैं, अदानियां ससुर के।
भोजन के चोर रस भौजन के पातसाह,
ठाकुर कहावत, पै चाकर चतुर के।।''

रीतिकालीन कविता का मुख्य विषय श्रृंगार होता था। अधिकतर कवि राज दरबारी हुआ करते थे। दरबार का आश्रय पाकर काव्यकला खूब फलती-फूलती थी। कवियों के सामने जीविका का संकट कम ही होता था। रीतिकालीन रीतिमुक्त कवियों में कवि ठाकुर का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। इनकी कविताएं, रीति की परंपरा से मुक्त दिखाई पड़ती हैं। प्रेम इनका मुख्य विषय था। स्वच्छंद शैली में प्रेम के ये अमर गान करने वाले उन्मुक्त कवि थे। उन्मुक्ता इनकी कविताओं में ही नहीं स्वभाव में भी दिखाई पड़ती है। इनके दो प्रमुख कविता संग्रह मिले हैं—'ठाकुर ठसक' और 'ठाकुर शतक'। सवैया और कवित्त छंद में इनकी रचनाएं मिलती हैं। जीवन के विविध रंग, विविध पक्ष इनकी कविताओं के विषय हैं। गांव में लगने वाले मेलों, त्योहारों और प्रकृति का सुंदर वर्णन इनकी कविताओं का विषय तो है ही, नीति-रीति की बातों को भी इन्होंने अपनी कविता का विषय बनाया। भक्ति-परक और नीति-परक छंदों में इनकी कविता लालित्यपूर्ण और हृदयग्राही बन पड़ी है। कविता को ये प्रेम और भक्ति से ओत-प्रोत होना आवश्यक मानते थे। इसके साथ ही लय, छंद, शब्द और तुक की रीति भी निभाना आवश्यक मानते थे। लीक से हटकर 'श्रृंगार' के बे-लीक मार्ग पर चलना इन्हें प्रिय था। वे कहते हैं—परंपरा की लीक से हटकर अनुकरण का गदला पल्ला झाड़कर, कवि का श्रेयस्कर मार्ग है। जो कवि लीक का अनुसरण करता और स्वार्थ के वशीभूत होकर राजा या अपने आश्रयदाता की बड़ाई करना ही कविताई मानता था, उससे ये अक्सर नाराज रहते थे। अपनी कविता में इस बात को इन्होंने पुरजोर ढंग से कहा जिससे परवर्ती कवियों को नई सीख मिली—

''सीख लीन्हों मीन मृग खंजन कमल नैन,
सीख लीन्हों यश औ प्रताप को कहानो है।
सीख लीन्हों कल्प वृक्ष कामधेनु चिंतामनि,
सीख लीन्हों मरुओं कुबेर गिरि आनो है।।
ठाकुर कहत याकी बडी है कठिन बात,
याको नहीं भूलि कहूं बांधियत बानो है।।
डेल सो बनाम आय मेलत सभा के बीच,
लेनग कबित कीबो खेल करि जानो है।।''

यह माना जाता है कि ठाकुर ने लोकोक्ति-वांङ्मय को एक नया रूप प्रदान किया। इससे कविता का एक नया रंग उभर कर आया जो रीतिकालीन रीतिमुक्त कविता की विशेषता है—

''यह चारहूं और उदौ मुख-चन्द की,
चांदनी चारू निहारि लै री।
बलि जो पै अधीन भयो पिय प्यारी
लै एतो विचार विचारि लै री।
कवि ठाकुर चूकि गयो जो गोपाल,
तो वै बियरी को सम्हारि लै री।
अब रैहैन रे है यहै समयो,
बहती नदी पांव परवारि लै री।।''

कृष्ण, गोपियों का वर्णन साथ में वर्षा ऋतु का वर्णन करते हुए कवि की कविताई अपने पूरे रंग में रंगी दिखाई देती है। वहीं बाल कृष्ण, शरारती कृष्ण और सखा कृष्ण वर्णन के साथ राम का अतिशय मनोरम चित्र खींचते हुए वे विभोर हो जाते हैं। ठाकुर कहते हैं—

''राम मेरे पंडित कलाविद् सुदिन सोधे,
राम मेरे गुरु जय मेरे राम नाम है।
राम राम गावतहि राम राम ध्यावतहिं,
राम राम सोचत कटत आठौ जाम है।
ठाकुर कहत सांचौ आस मोहि राम ही की,
राम ही से काम धन-धाम मेरे राम है।
राम मेरे बैद बिसराम मेरे राम सांचौ,
राम मेरी औषधि जतन मेरे राम हैं।।''

बात-बात में या गोष्ठी सभा में कवि ठाकुर की कविताई ऐसी जमती थी कि अन्य कवि फीके पड़ जाते थे। इसलिए वे ईर्ष्यावश इन्हें नीचा दिखाने के लिए अवसर ढूंढते रहते थे। कभी-कभी चुहलबाजी में तो कभी उकसाने में आकर कविता में रम जाते थे। एक बार गोष्ठी में राजा पारीछत के साथ अन्य गणमान्य लोग भी उपस्थित थे। उस रास्ते से एक सुन्दर और आकर्षक श्रेष्ठी की बहुरिया आया-जाया करती थी, लेकिन घूंघट निकाले, किसी की तरफ एक बार भी ताकती नहीं थी। फिर क्या था। वहां उपस्थित एक व्यक्ति ने कवि ठाकुर को उकसाते हुए कहा—अगर इसकी (श्रेष्ठी की बहू) दृष्टि, आप अपनी कविता के द्वारा, हम लोगों की ओर आकर्षित कर सको, तो हम सभी आप को सच्चा कवि मान लें। ''का करि साधि रहा बलवाना'' वाली बात भला किसे नहीं उकसाती। दूसरे दिन जैसे ही श्रेष्ठी की बहू उधर से निकली, कवि ठाकुर ने उच्च स्वर में उस पर कविता कहना प्रारंभ कर दिया—

''आंख न देखत ध्यान में बोलत,
नेह बढ़ाए नित आ नित जा।

××××

कै मानी खुशी अभिमानी चितै जा।
ठाकुर छैल छबीले कहूं,
सौतन माहिं सुहाग जितै जा।
दयजा दिखाई दी कै जा निहाल,
बितै जा बियोग चितैजा-चितैजा।।''

लौकिक व्यंजना कविता का एक बहुत सशक्त पक्ष है। ठाकुर लौकिक व्यंजना के महारथी थे। जीवन के विविध संदर्भों को इस प्रकार से प्रस्तुत करते थे मानो वह दृश्य सम्मुख आ खड़ा हुआ हो। शब्दाडंबर और कल्पना की उड़ान में कहीं खो जाना इन्हें बिल्कुल पसंद नहीं था—

''दस बार बीस बार बरजि दई है जहि,
ऐसे पै न माने जौ जरन बरन देव।
कैसी कहा कीजै, कुछ आपनो कहो न होय,
जाके जैसे दिन ताको तैंसौई भरन देव।
ठाकुर कहत मन आपनो मगन राखो,
प्रेम निहसंक रस रंग बिहरन देव।
विधि के बनाए जीव जेते हैं जहां के तहां,
खेलत फिरत तिन्हें खेलन फिरत देव।।''

साहित्य में नीति-अनीति आज साहित्य का मुख्य विषय भले ही न स्वीकार किया जा रहा हो, लेकिन रीतिकालीन कविता में ये बातें प्रमुखता से कविता का विषय हुआ करती थी। जगत की नीति कैसी हो कि सबका भला हो। दरबार में दूसरों को प्रेरणा देने और काव्य समस्या पूर्ति के समय भी नीति-अनीति की बात बहुत सलीके से कह दी जाती थी। काव्य का विषय प्रेम, काम का हो या शृंगार का, हर जगह नीति-अनीति का ध्यान रखने की परंपरा थी। कवि ठाकुर की कविताएं भी जगत की नीति को दर्शाती दिखाई पड़ती हैं—

''मेरी कहौ मान सपनौ सो जाने जग,
छोड़ि अभिमान फेर ऐसो नहीं दाव रे।
दीन ह्वै, दया कौ सीख संपत्ति विपति भीख,
एक सम दीख नाहीं बनै हैं बनाव रे।
ठाकुर कहते ब्रज-चन्द चन्दमुखी राधा,
वृंदावन बीथिन मैं हरि-गुन गावरे।
बीति जात उमर भंडार तन रीति जात,
बीति जात काल कैं हवाले होत बावरे।।''

भारतीय संस्कृति की एक विशेषता है, इसकी अनेकता के भाव में भी सुरम्यता का बोध। एक भाव व्यंजना से भरे हुए जीवन-रस से परिपूर्ण परिवार के सभी लोग मिलकर पर्व-त्योहारों को जिस उमंग से मनाते हैं, वह शायद ही कहीं और दिखाई पड़ता हो। वसंत ऋतु आ गई है। होली का प्रेमोत्सव का रसीला उत्सव ब्रज में प्रारंभ हो गया है। होली ऐसा त्योहार है जो एक उत्सव, धार्मिक साम्यता और प्रकृति के सम्मिलन से मनाया जाता है। वसंती रंग का अपना अलग ही रंग होता है। इस रंग का वर्णन हिंदी की आदि कविता में ही नहीं रीतिकालीन कविता और आधुनिक कविता में भी पूरे यौवन से स्फुरित दिखाई पड़ता है। कवि ठाकुर का तो अपना ही अलग रंग है—

''डरियो जो गुलाल रंग के सर की अंग-अंग,
आन झकझोरि भीड़्यो दौर मुख रोरी मैं।
चाहि चितवारी हित बारी नित बारी करी,
काहै कहौं कौन अब जैहैं ब्रज-खोरी मैं।
ठाकुर कहत ऐसे रस मैं निरस होत,
कहा भयो छाती जो छबीले छुइ चोरी मैं।
अंक भहि लीनो तो कलक की (नासक) कीजै,
आजु बरजोरी कौ न दोषहोत होरी मैं।''

होली ऐसा पावन सरस उत्सव है कि इसका आना और जाना दोनों सुखदायी है। स्त्री ही नहीं पुरुष भी, बच्चे-किशोर ही नहीं बड़े-बुजुर्ग भी इसके रंग में डूब जाते हैं। जाति, धर्म, संबंध, मर्यादा, बंधन और सभी तरह के लोकाचार का अंत हो जाता है। होली के इस अवसर पर कवि ठाकुर की कविता का अपना अलग रंग और छटा अतिशय आनंद दे जाते हैं। जैसे इन पंक्तियों में जिसमें एक गोपी कृष्ण पर खीझी हुई है। इस खीझ में वह कृष्ण का फटकार भी देती है और अपना प्रेम का संबंध भी भूल जाती है—

''होली को हौंस हमें ना कछू,
हम जानती हैं तुम सर करैया।
फूलौ न मोहि अकेला निहारि कै,
भूलियां ना तुम गाय चरैया।।
ठाकुर जो बरजोरि करौ तु,
हौं हू नहीं कछु दीन परैया।
फारिहौ काहू कौ आंख लला,
रहो नोखे गोपाल गुलाल डरैया।।''

शृंगारपरक कविता में संयोग-वियोग का वर्णन विरह वेदना का सबसे संवेदनशील पक्ष है। नायक-नायिका का मिलन फिर उनका बिछुड़ना, विरह का सबसे विकट समय माना जाता है। ठाकुर की कविता में संयोग-वियोग का वर्णन रीतिकालीन कवियों की कविता के वर्णन से अलग हटकर है। इसमें न तो कल्पना को आधार बनाया गया है और न तो शब्दाडंबर को ही उभारा गया है। विरही-विरहणी की मनोदशाओं का चित्रण इस तरह से किया है—

''ठाकुर या घर चौचंद को
डर तातैं धरी-धरी ऐयत नाहीं।
भेंटन पैयत कैसे तिन्हें
जिन्हें आंखिन देखन पैयत नाहीं।।''

कवि ठाकुर का संयोग वर्णन अन्य रीतिकालीन कवियों से अलग तरह का है। इनकी कविता में संयोग के समय भी कहीं वासना का भाव द्रष्टव्य नहीं होता है। एक लावण्यमयी नव यौवना जिसने प्रीति की डगर पर अभी-अभी पग रखा है, उसे देखकर कवि के मन की दशा कुछ इस प्रकार हो जाती है—

''घर बाहर पास पड़ोस के बैर,
अकेले कबै कर पैयत है।
भग मांझ कजात मिले सजनी,
ते बिलोकत चित्त हरैयत है।
कह ठाकुर मेंटिबे के उपचार,
बिचारत धौस बितैयत है।
बतिया न बनै जिनसो कबहूं,
छतिया तिन्हें कैसे लगैयत हैं।।''

काव्य में यह प्रश्न हमेशा से रहा है कि आदर्श कविता का प्रतिमान क्या होना चाहिए। इसके प्रतिमान पर कभी एक मत नहीं हुआ जा सका है। आदि कविता में जिस प्रतिमान को आदर्श माना गया, उसे रीतिकालीन कविता में नकार दिया गया। इसी प्रकार, जिसे रीतिकालीन कविता में प्रतिमान माना गया, उसे अन्य ने नकार दिया। इसी प्रकार आधुनिक हिंदी कविता के प्रारंभ से लेकर आज तक इस विषय पर विद्वानों के अलग-अलग मत रहे हैं। कवि ठाकुर कविता का आदर्श किसे मानते हैं। अपनी इस कविता में उन्होंने बेझिझक इसे इस प्रकार कहा है—

''मोतिन कैसो मनोहर माल गुहै,
तुकि अच्छर जोरि बनावे,
प्रेम को पंथ कथा हरिनाम को,
बात अनूठी बनाई सुनावै।।
ठाकुर सो कवि भावत मोहि,
जे राजसभा में बड़प्पन पावै।
पंडित लोक-प्रवीनन को,
जोई चित्त हरै सो कवित्त कहावै।।''

कविता के इस काव्य-प्रतिमान को हिंदी साहित्य के महान समालोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कहा है कि ''यह हमें काव्य के अत्यंत मान्य रस-सिद्धांत के समीप ले जाता है। ये हमें पंडितराज जगन्नाथ की 'रमणीयता और आचार्य विश्वनाथ की 'रसात्मकता' का ध्यान दिलाते हैं।''

इस प्रकार कविवर ठाकुर का काव्य-संसार कविता के प्रत्येक पक्ष को लालित्य से पूरित करता है। एक दरबारी कवि होते हुए भी ठाकुर कभी चाटुकारिता को स्वीकार करते नहीं द्रष्टव्य होते हैं। जीवन के विविध पक्षों का जो लालित्य है, वह इनकी कविताओं में ऐसे अनुपम ढंग से व्यंजित हुआ है कि कहीं इसमें दोष नहीं दिखाई पड़ता है। भाव की सरसता, छंदों की छंदई, शिल्प-कला की साम्यता और प्रकृति के सुशोभित रूप को कवि ठाकुर एक साथ लेकर आगे बढ़ते हैं। यही कारण है कि रीतिकालीन रीतिमुक्त कविता में ठाकुर अपनी विलक्षणता प्रत्येक स्थान पर बनाते हुए, आगे बढ़ते दिखाई पड़ते हैं।

2, दयानंद ब्लॉक, शकूरपुर, दिल्ली-110092

रचनाकारों से अनुरोध

- **कृपया अपनी रचना ए-4 आकार के पेज पर ही टाइप कराकर भेजें। रचना यदि ई-मेल से भेज रहे हों तो साथ में फॉन्ट भी अवश्य भेजें।**
- **रचना अनावश्यक रूप से लंबी न हों। शब्द-सीमा 3000 शब्दों तक है।**
- **रचना के साथ लेखक अपना संक्षिप्त जीवन परिचय भी प्रेषित करें।**
- **रचना के साथ विषय से संबंधित चित्र अथवा कहानी के साथ विषय से संबंधित कलाकृतियां (हाई रेज्योलेशन फोटो) अवश्य भेजें।**
- **रचना भेजने से पहले उसे अच्छी तरह अवश्य पढ़ लें।**
  यदि संस्कृत के श्लोक अथवा उर्दू के शेर आदि उद्धृत किए गए हैं तो वर्तनी को कृपया भली-भांति जांच लें।
- **ध्यान रखें कि भेजी गई रचना के पृष्ठों का क्रम ठीक हो।**
- **यदि फोटो कॉपी भेज रहे हों तो यह सुनिश्चित कर लें कि वह सुस्पष्ट एवं पठनीय हो।**
- **रचनाएं किसी भी दशा में लौटाई नहीं जाएंगी। अतः उसकी प्रतिलिपि (फोटो कॉपी) अपने पास अवश्य सुरक्षित रखें।**
- **स्वीकृत रचनाएं यथा समय प्रकाशित की जाएंगी।**
- **रचना के अंत में अपना पूरा पता, फोन नंबर और ई-मेल पता स्पष्ट शब्दों में अवश्य लिखें।**
- **आप अपने सुझाव व आलोचनाएं कृपया ddgnk.iccr.nic.in पर संपादक को प्रेषित कर सकते हैं।**

अवधी लोकगीतों में नारी संवेदना

डॉ. अरुण कुमार वर्मा

विविध विषयों पर स्वतंत्र लेखन के अलावा डॉ. अरुण कुमार वर्मा वर्तमान में अध्यापन कार्य से संबद्ध।

मनुष्य के उद्‌भव के साथ ही लोकगीतों की उत्पत्ति की संकल्पना सच प्रतीत होती है। वैदिककाल में जिन लोक-गाथाओं का उल्लेख मिलता है, वे ही लोकगीत की पूर्व प्रतिनिधि कही जा सकती हैं। महाकवि कालिदास ने 'रघुवंश' में स्त्रियों के गीतों का उल्लेख किया है। लोकगीत सीधे जनता का संगीत हैं जो लोच, ताजगी और लोकप्रियता में शास्त्रीय संगीत से भिन्न हैं, जिनमें आज भी जीवन, नियमों की जकड़ में न बंधकर स्वतंत्र है।

लोकगीतों की धारा अबाध गति से आज भी प्रवाहित हो रही है। विभिन्न क्षेत्रों, बोलियों और जातियों के अलग-अलग लोकगीत हैं, जिसे स्त्री और पुरुष दोनों के द्वारा गाया जाता है। वास्तविक गीत देश के देहातों में मिलते हैं, जिनके हर क्षेत्रों के अपने-अपने विद्यापति हैं। देश में अनंत संख्या स्त्री गीतों की हैं, जिन्हें वे ही रचती और गाती हैं। देश में अन्य बोली-भाषाओं की तरह अवधी में भी लोकगीत की परंपरा विद्यमान है जिसकी परिणति संस्कार गीत (सोहर, अन्नप्राशन, मुंडन, जनेऊ गीत) विवाह गीत (मंडप छावन, अगवानी, भाती खिलाने, गारी, द्वार पूजा, पांव पुजाई, सिंदूरदान, लावा परछने के गीत, भांवर के गीत, बाती मिलाई, बड़हार, ज्योनार, विदाई गीत), ऋतु गीत (कजली, हिंडोला, बारामासा, फगुआ, चइता) जाति गीत (कहरवा, बिरहा, धोबिया, नाइयों के गीत) श्रम गीत (रोपनी, निरहवी, कटनी, कोल्हू, जांत गीत) और देवी-देवताओं के गीतों के रूप में देखा जा सकता है।

अवधी के लोकगीतों का विस्तार उत्तरप्रदेश के लखनऊ, उन्नाव, रायबरेली, सीतापुर, हरदोई, लखीमपुर, बाराबंकी, फैजाबाद, गोंडा, बहराइच, सुल्तानपुर, प्रतापगढ़, इलाहाबाद, फतेहपुर, मिर्जापुर और जौनपुर के पश्चिमी हिस्से में है। अवधी भाषा का साहित्य हिंदी साहित्य जगत में महत्वपूर्ण स्थान रखता है, जिसने तुलसीदास और जायसी जैसे दो महान व्यक्तित्व हिंदी साहित्य को दिए हैं।

लोकगीत ने कविता और संगीत दोनों को प्रभावित किया है। आज जहां फिल्म संगीत में लोकगीत की धुनों को महत्व दिया जा रहा है वहीं कवियों ने लोकगीतों की मान्यताओं और परंपराओं को स्वीकार किया है। अवधी के लोकगीत की एक पंक्ति जिसे तुलसीदासजी और मैथिलीशरण गुप्त ने उसके मूलरूप को कविता में स्थान दिया है—

''गोरकू त हउए मोरे भाई जी क पुतवा,
संवरू ननद जी क भैया।''
''सहज सुभाय तन गारे।
नाम लखन लघु देवर मोरे।।''

—तुलसीदास

''शुभे तुम्हारे कौन उभय से श्रेष्ठ हैं?
गोरे देवर श्याम उन्हीं के ज्येष्ठ।''

—मैथिलीशरण गुप्त

अवधी के लोकगीतों में नारी संवेदना के संदर्भ में यह विचारणीय है कि लोकगीत ही ऐसा प्लेटफार्म था, जहां नारी अपने आप को स्वतंत्र रूप में अभिव्यक्त कर पाती थी। वैदिककाल जरूर नारी महत्व का काल था, लेकिन मध्यकाल में नारी का वह स्थान कायम नहीं रह सका। यहां तक की मीराबाई जैसे व्यक्तित्व को भी सामाजिक और पारिवारिक अवहेलना के दौर से गुजरना पड़ा। यही कारण है कि लोकगीतों में नारी का दुःख-दर्द व्यक्त हुआ है। ज्यादातर लोकगीत उत्सव के अवसर पर ही गाए जाते हैं। खुशनुमा माहौल में उसके संकोच का बांध टूट पड़ता है और हंसी-मजाक के वातावरण में वे अपने दर्द को व्यक्त कर मन का बोझ हल्का करती है और समाज के द्वारा गलत ठहराए जाने से भी बचती है क्योंकि वह ऐसी दहलीज पर होती है, जहां न अपने पिता के घर की बुराई कर सकती है और न ही पति के घर की। पं. रामनरेश त्रिपाठी द्वारा संकलित अवधी के संस्कार गीत 'सोहर' में समाज की उस मान्यता का जिक्र किया गया है, जहां धनबल से लड़की के महत्व को आंकने की परंपरा को दर्शाया गया है—

''सुखिया दुखिया दोनों बहिनिया
दोनों बधवा ले आई, हो राजा बीरन।।1।।
सुखिया ले आई गुजहरा गोड़हरा
दुखिया दूब के कड़ा, हरे राजा बीरन।।2।।
सुखिया जे पूछे अपने बीरन से
बिदा करौ घर जाई, हरे राजा बीरन।।3।।
लेहु न बहिनी कोंछ भर मोतिया

सैंया चढ़न का घोड़ा, हरे राजा बीरन।।4।।
दुखिया जे पूछे अपने बीरन से
बिदा करौ घर जाई, हे राजा बीरन।।5।।
लेहु न बहिनी कोछ भर कोदव
उहै दूब का पैंड़ा, हरे राजा बीरन।।6।।''

लोकगीत मूलतः गांवों के गीत हैं, जिसमें ग्रामीण संवदेना कूट-कूट कर भरी है। भारत की अधिकांश आबादी गांवों में बसती है और आज भी किन्हीं रूपों में वह धारणा विद्यमान है जो प्राचीन काल से चली आ रही है। विवाह के समय के विभिन्न कर्मकांड और इससे संबंधित गीतों का प्रचलन आज भी देखने को मिलता है। विवाह के कर्मकांड के गीतों में नारी की संवेदना व्यक्त हुई है। उसे अपने आप को पराई समझे जाने का दर्द असहनीय है, जिसका उदाहरण विवाह गीत में देखने को मिलता है। धर्मशास्त्रों में भी उसे पराई बताया गया है—''विवाहात सप्तम पदे (सप्तपदी के बाद कन्या पराई हो जाती है।)'' विवाह गीत में इस संवेदना को उकेरा है—

''जब लगि आए सातवीं भांवरि
बाबा अब मैं पराई।''

इसी तरह गवना के गीत में लड़की के विदा होते समय का कारुणिक दृश्य कितना मार्मिक और संवेदनशील है—

''भितरे बैठि गोहरावै मइया
अंचरा म पोंछे आंसू
मोरी बेटी आजु चली है परदेशवा
कोखिया भई मोरी सूनी
सभवा बैठि के रोवै बाबा
पटके म पौंछ आंसू
आजु मोरी बेटी चली ससुररिया
भवन भए मोर सून।''

लड़की के पराई होने का दर्द सिर्फ विवाह गीत में ही देखने को नहीं मिलता अन्य गीतों में भी इस दर्द की अभिव्यक्ति हुई है। आज भी गांवों में यह धारणा विद्यमान है। जितना ध्यान हम बेटे पर देते हैं उतना बेटी पर नहीं दे पाते हैं क्योंकि वह पराई है। 'हिंडोले' के एक गीत में लड़की अपने पिता से कहती है कि ऐ बाबा! नीम का पेड़ मत काटिए क्योंकि यह चिड़ियों का बसेरा होता है और बिटिया भी चिड़ियों की भांति होती है। चिड़िया प्रातःकाल उड़ जाएंगी और नीम खड़ा ही रह जाएगा—

''बाबा निमिया के पेड़ जिनि काटेउ
निमिया चिरइया बसेरा
बलैया लेऊं बीरन।।1।।
बाबा बिटिया जिनि कोउ दुःख देई
बिटिया चिरइया की नाई
बलइया लेऊं बीरन।।2।।
सबेरे चिरइया उड़ि उड़ि जइहई
रहि जइहैं निमिया अकेली
बलइया लेऊ बीरन।।3।।
सबेरे बिटिया जइहैं सासुर
रहि जइहई माई अकेलि।
बलइया लेऊं बीरन।।4।।''

अवधी लोकगीतों में श्रम संबंधी गीतों का खूब प्रचलन है। इन गीतों को महिलाएं समूह में कार्य करते समय गाती हैं। ये गीत जहां उन्हें थकान का अहसास नहीं होने देते, वहीं भावना के व्यक्त करने का माध्यम भी साबित होते हैं। इन गीतों में रोपनी, निरवही, कटनी और जांत के गीत प्रमुख हैं। रोपनी के गीत में कामकाजी महिलाओं के असहनीय कामों के बोझ का जिक्र हुआ है—

''जहिया से आयो पिया तोहरी महलिया
रतिया दिनवा करौ टहलिया रे पियवा
देहिया झुरानी मोरी करत टहलिया
सपना में सुख के सपनवा रे पियवा
बखरी के हरा तुहैं जोत्या राति दिनवा
तबहूं न भर पेट भोजनवा रे पियवा।''

लोकगीत कई सामाजिक विडंबना को प्रदर्शित करते हैं। ये गीत महिलाओं द्वारा समाज के प्रति सूक्ष्म विद्रोह है। शायद यह सामाजिक विडंबना विधि द्वारा नारी के सृजन की ही विशेषता है। जिसे तुलसीदासजी ने भी स्वीकार किया है—

''कत विधि सृजी नारि जग माहीं।
पराधीन सपनेहुं सुख नाहीं।।''

आज के मशीनी युग में जांत चलाने का कार्य अब समाप्त प्रायः है लेकिन कुछ समय पहले स्त्री के दैनिक कार्यों में जांता चलाना अनिवार्य कार्य था। सुबह चार बजे उठकर स्त्रियां पिसाई का कार्य करती थीं। हर कठिन कार्य को स्त्रियां गाकर करती हैं। आज जांता तो नहीं चलता लेकिन उनके गीत अवधी समाज में आज भी विद्यमान हैं। जांत के एक गीत में भाई, बहन की ससुराल गया है। भोजन करते समय बहन के कष्टों को देखकर भाई की आंखों से आंसू की धारा बहने लगती है। उसे देखकर बहन की व्यथा का चित्रण कुछ इस तरह हुआ है—

''जेवन बइटै सार बहनोइया
सरवा के चुवै अंसुइया हो रामा।।1।।
कियाम मोंरि भइया तिरिया सुधिया आई
किया समझया माइया के कलेउआ
हो रामा।।2।।
नाहीं मोरी बहिनी हो तिरिया सुधिया आई
नाहीं समझाया मइया के कलेउआ
हो रामा।।3।।
सोनवा त जरै बहिनी सोनरा दुकनिया
बहिनी जरथीं ससुररिया हो रामा।।4।।''

भाई के इस कथन पर बहन उससे कहती है कि मेरे इस दुःख को माता-पिता या गांव वालों से मत कहिएगा। ऐ भाई! मेरी इस विपत्ति की गठरी को गंगा और यमुना की धारा में फेंक दीजिएगा, जिससे परिवार के किसी व्यक्ति को कष्ट न हो और जग में हंसाई भी न हो। बहन का यह वक्तव्य भारतीय नारी का व्यक्तव्य है, जो सारे दुःखों को पीकर परिवार की खुशी चाहती है—

''ई दुख जिनि कहा भइया बाबा के अगवां

सभवा बैठि पछतइहीं हो राम।।6।।
ई दुख जिनि कहा भइया मइया के अगवां
छतिया पीटत मरि जइहंई हो राम।।7।।
ई दुख जिनि कहा भइया बहिनी के अगवां
नहीं उ गवनवा न जइहंई हो राम।।8।।
ई दुख जिनि कहा भइया भौजी के अगवां
राम रसोइयां बोलिया बोलिहंई हो राम।।9।।
ई दुख जिनि कहा भइया गउंआ के लोगवा
झगरा करत तनवा मरिहंई हो राम।।।10।।
हमरी ई विपत्ति क गठरिया मोरे विरना
गंगा जमुना बीचे छोरा हो राम।।।11।।''

अवधी क्षेत्र के समाज में स्त्रियों की एक प्रमुख संवेदना प्रिय के साथ न रह सकने की है। यह सामाजिक अवधारणा आज भी विद्यमान है कि पति जीविका के लिए अकेले ही शहर जाता है और पत्नी की यह इच्छा हमेशा रहती है कि वह भी पति के साथ ही रहे लेकिन सामाजिक मान्यताओं की रक्षा में अपनी इच्छा को अंदर ही दबा कर रह जाती है। इस मान्यता का जिक्र करते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने हिंदी साहित्य के इतिहास में किया है–

''आगि लाग घर जरा बड़ा सुख कीन्हि।
पिय के हाथ घइलवा भरि-भरि दीन्हि।।''

समाज की इस मान्यता को नारी संकोचवश तोड़ नहीं पाती परंतु उसकी यह दमित भावना लोकगीत में जीवित हो उठती है। एक लोकगीत में जब वह रूढ़ियों को तोड़ नहीं पाती तो असहाय होकर कह उठती है कि उस शहर पर वज्र टूट पड़े और शहर ही नष्ट हो जाए जिससे उसके पति को परदेश ही न जाना पड़े–

''ई रेलिया बैरन पिया क लेहे जाई रे
जबवने टिकटवा पे पिया मोर जइहैं
बरसई पनिया टिकट गलि जाई रे।।1।।
जवने शहरवा के पिया मोर जइहैं
लागई अगिया शहर जरि जाई रे।।2।।
जवने सेठियवा क पिया मोर नौकर
लागई गोलिया सेठ मरि जाई रे।।4।।''

समाज की यह विडंबना हिंदी साहित्य के कवियों में भी देखने को मिलती है। 'रामचरितमानस' में राम के द्वारा सीता को वन में न ले जाने का प्रस्ताव इस सामाजिक मान्यता को बल देता है और साथ जाने का रास्ता सीता के तर्कों के द्वारा ही निकलता है–

''जिय बिनु देहि नदी बिनु वारि।
तैसेहि नाथ पुरुष बिनु नारि।।''

अवधी क्षेत्र के कवि त्रिलोचन की कविता में भी इस विचारधारा के दर्शन होते हैं। इनके काव्य की चंपा द्वारा यह विचार व्यक्त हुआ है–

''तो मैं अपने बालक को संग साथ रखूंगी
कलकत्ता मैं कभी न जाने दूंगी
कलकत्ते पर बजर गिरे।।''

प्रिय के साथ रहने की नारी की यह अपील हर क्षेत्र के लोकगीतों में देखने को मिलती है। प्रिय के साथ या पास रहने की उसकी लालसा सदैव बनी रहती है। अवधी के ऋतु गीतों में यह भाव अधिक मात्रा में देखने को मिलता है परंतु पतिव्रत धर्म अटूट बना रहता है–''चुके लागे मोर उमरिया, हरि जी नहिं आयेनि।।'' नारी को अकेले आवागमन की स्वतंत्रता का प्रचलन प्राचीनकाल में कम ही रहा है। सावन में मायके जाना चाहती है तो भाई या पिताजी का इंतजार करती है, तो कभी सावन बीतता जा रहा है पति के पास न होने का दर्द सता रहा है–

''अरे रामा सावन बीतत जाय
बलम न आए रे हरी
ठंडी ठंडी बहै बयरिया
पवन चलत पुरवैया रामा
हरे रामा कवने जतन धरू धीर
पिया बिन न भावे रे हरी।।''

नारी आदिकाल से ही विभिन्न बंधनों की परंपरा से जकड़ी है, जिसकी अभिव्यक्ति सिर्फ लोकगीतों में ही नहीं आदिकालीन साहित्य नरपति नाल्ह के 'बीसल देव रासो' में भी देखने को मिलती है। 'राजमती' की विवशता सामान्य नारी की विवशता के रूप में अभिव्यक्त हुई है–

''अस्त्रीय जनम काई दीधउ महेस
अवर जनम धारइ धणा रे नटेस
राणि न सिरजीय धउलीय गाई
वणखण्ड काली कोइली।
भषती दाष बीजोरड़ी
इणि दुष झूरइ अवलाजी बाल।।''

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि अवधी के लोकगीत बहुत समृद्ध अवस्था में है। यह सांस्कृतिक और साहित्यिक विरासत है जिसमें हमारी वास्तविक संवेदना समाहित है। इसका बहुत बड़ा भाग आज भी गांवों में अलिखित रूप में बिखरा पड़ा है और उसके प्रचलन में भी कमी आने लगी है, इसलिए हमारी जिम्मेदारी बनती है कि इस अमूल्य धरोहर को संजोकर रखा जाए।

**पी.जी.टी. हिंदी, जवाहर नवोदय विद्यालय,
सिरमौर, रीवा-486448 (मध्यप्रदेश)**

गिफ्ट

क्षमा शर्मा

अनेक पुरस्कारों से सम्मानित सुप्रसिद्ध साहित्यकार क्षमा शर्मा की पचास से अधिक कृतियां प्रकाशित हो चुकी हैं। कई भाषाओं में रचनाओं का अनुवाद। कुछ कृतियों पर टेलीफिल्म और धारावाहिक भी बन चुके हैं। प्रसिद्ध बाल पत्रिका 'नंदन' की पूर्व कार्यकारी संपादक। वर्तमान में संस्कृति मंत्रालय की सीनियर फैलो।

रास्ते भर मनीष क्या-क्या सोचता रहा। रेडलाइट वाली लड़की उसकी गाड़ी का शीशा ठकठका के चली गई। और कोई दिन होता तो वह जरूर उसे कुछ न कुछ देता। तेज रोशनियों से भरा फ्लावर पार्क भी निकल गया। किसी फूल ने उसका ध्यान नहीं खींचा। न गाड़ी एक ओर खड़ी करके वह उन्हें देखने ही गया। दिन के वक्त ऑफिस पहुंचने की भागमभाग रहती थी। अकसर रात में वह उन्हें देखने जाया करता था। सारे फूल उसे गहरी नींद में सोए लगते थे। वह फूलों के खर्राटे लेने की कल्पना करता और मुसकराता। स्टीरियो पर उसके पसंदीदा गाने बज रहे थे, एक को भी तो उसने नहीं गुनगुनाया। आज की मीटिंग में गया ही न होता तो अच्छा रहा होता। जैसे उसे सुनाकर ही मालिक ने कहा था, कि चैनल घाटे में जा रहा है। वह यह घाटा ज्यादा दिन नहीं उठा पाएगा। इसी तरह रहा तो लोगों की सैलरी देना तक मुश्किल हो जाएगा। उसकी बात सुनकर मनीष को लगा था, कि जब चैनल खूब मुनाफा कमा रहा था, तब इन्हें याद नहीं आया कि कुछ हिस्सा उन लोगों को भी दे दें जो हर वक्त काम में जुटे रहते हैं। और जब घाटे की बात हो रही है तो सैलरी न देने तक की बात कही जा रही है। उसे पता है कि चाहे जितना घाटा हो इनकी अय्याशियों में कभी कोई कमी नहीं आएगी। उतना पैसा ये हमेशा अपने पास एडवांस में रखेंगे और घाटे का रोना रोते रहेंगे। तलवार जब गिरेगी तब उन्हीं का सिर काटेगी जिनकी तनख्वाह एक महीने न आए तो घर ही न चले। बच्चों की फीस न जाए। किसी बीमार का इलाज न हो। हल्ला है न हर तरफ ग्रोथ हो रही है। ग्रोथ के लिए कुछ सेक्रीफाइज करना ही पड़ता है। आखिर देश के विकास से तो बड़ी नहीं है न तनख्वाह। सरकार आए-जाए आम आदमी के कंधे पर देश को बचाने की भारी जिम्मेदारी पड़ी रहती है। हर आदमी अपने को देश समझने लगता है। तब उसे पैसे की नदियों में लोट लगाते इन लोगों का कोई कुसूर भी कभी नहीं दिखता। क्योंकि इनके हिसाब से इनकी याद इनके क्रूज, इनकी रेव पार्टीज सब देश को बचाने के नाम पर ही तो होती हैं।

उसके एक सीनियर जो अब नहीं रहे, जब मुनाफे में हिस्सा बंटाते कुछ और बाकियों को अंगूठा दिखाते देखते थे तो बहुत नाराज हो जाते थे। कहते थे—तुम देखना जिनको रात-दिन सिर्फ इसीलिए लगाया गया है कि वे दूसरों की मौज के लिए चौबीस घंटे काम करते रहें। और ये हाय पैसा, हाय पैसा, पिछली बार से ज्यादा पैसे का कोड़ा उनकी पीठ पर फटकारते रहें, चाहे इसके लिए किसी की जान ही क्यों न चली जाए, ऐसे लोग एक दिन सड़कों पर पिटेंगे। पैसा होगा, बंगला, गाड़ी, हर सुख-सुविधा होगी मगर एक रोटी के लिए भी तरसेंगे। उस राजा की कहानी याद है जिसके छूते ही रोटी भी सोने की हो जाती थी और भूखा मरा था। यही होगा इन नए कुबेरों का। लोगों को इतना क्यों सता रहे हो कि उनका सब्र का प्याला भर जाए और वे उसी पर टूट पड़ें जो सामने दिखाई दे।

मनीष को भी पता है, सबने बंदरबांट कर रखी है। नाम लोगों के भले का होता है। तेरा ये इलाका, हमारा यह इलाका, बस एक-दूसरे को गाली ही तो देनी है। गाली देने से अगर संसार का हर सुख मिलता हो तो क्या बुरा।

साले रात-दिन लगे रहो, न रात देखो न घर-बार। उसकी कलीग बुलबुल सही कहती है कि जिस दफ्तर के लिए रात-दिन कुरबान हुए रहते हो न, वह कभी तुम्हें याद नहीं रखता। दफ्तर की पहचान इकतरफा होती है। तुम उसे अपना-अपना कहकर पहचानते हो। दफ्तर किसी को नहीं पहचानता। उसकी स्मृति नहीं होती। इसीलिए तो अंदर घुसने के लिए हर रोज आई कार्ड चाहिए और जरूरत पड़ने पर ऐसी लात जमाता है कि सारी औकात पता चल जाती है।

दफ्तर जिसका कोई चेहरा नहीं होता, न जाने कितने लोगों को मिलाकर बनता है, उसका यह सम्मिलित स्वरूप कितना क्रूर और अहंकारी होता है।

मनीष को भी याद आता है कि कितने दिन से तो ये बातें चल ही रही हैं कि नए चैनल हैड को पुरानों के चेहरे पसंद नहीं। बात-बेबात

डांटता है। सुनने में तो यहां तक आया है कि वह कई मंत्रियों और ब्यूरोक्रेट्स के बच्चों को लाना चाहता है। और क्यों न लाए। कल को यहां से हटाया जाएगा तो गाढ़े वक्त में वे संपर्क ही तो काम आएंगे, जिन्हें इस पद पर रहकर बनाएगा। नाम होता है इंटेलीजेंस का, काम के प्रति हर पल तैयार रहने का। कमिटमेंट का। मीडिया ऐसी दुधारू गाय है, जिसे दुहने के लिए बड़े-बड़े तीस मार खां वहां घुसने की जुगत भिड़ाना चाहते हैं।

खैर मनीष को इससे क्या, कोई किसी को भी लाए। जो भी आएगा वही ऐसा करेगा। जब कोई आता है तो इंटरनल मेल से उसको कैसे दुनिया का सबसे अच्छा, होशियार, हंबल, दुनिया के आसमान में सबसे अधिक चमकता सितारा बताया जाता है। गॉड फीयरिंग, फैमिली मैन, गरीबों को हफ्ते में एक बार पढ़ाने वाला, अपनी सैलरी का बड़ा भाग उनके लिए देने वाला बताया जाता है। दयालु, डिपेंडेबिल आदि विशेषणों से नवाजा जाता है। मगर जैसे ही कोई नया आता है, इस पुराने सितारे के खराब दिन आ जाते हैं, छोड़कर जाना पड़ता है, तो अचानक ही यह चमचमाता सितारा टूटकर धूलि में मिल जाता है। किरचें भी नहीं मिलतीं। कैसे, क्यों... इसका शायद ही कोई जवाब किसी को मिले। एक चमकने वाला सूर्य एकाएक धूमकेतु में कैसे तब्दील हो जाता है।

हाल ही की तो बात है—जय को कैसे हटाया। उसे बिना किसी सूचना के बाहर से ही चलता कर दिया गया। अपना सामान भी नहीं उठाने दिया गया। जिस गार्ड की नमस्ते का भी वह कभी जवाब नहीं देता था, उसी ने आदेश पर उसे अंदर नहीं घुसने दिया। सामान लेने की बात कही तो एचआर ने कहा कि सामान घर भिजवा देंगे। सामान की अच्छी तरह से तलाशी भी ली गई कि कहीं कोई ऐसा क्लू हाथ आ जाए कि जय ऑफिस की किसी मामूली चीज जैसे कि एक ए फोर का या एक लिफाफे का अपने निजी काम के लिए इस्तेमाल करता था। जो एक ए फोर चुरा सकता है, आखिर वह लाखों-करोड़ों का चूना कंपनी को क्यों नहीं लगा सकता।

मनीष के पास उसी रात को जय का फोन आया था। बेहद ठंडी आवाज में उसने कहा था—अब बीबी-बच्चों को क्या बताऊं कि मुझे नौकरी से निकाल दिया गया। मैं एक ऐसा गुनहगार बन गया जिसके एक दिन ऑफिस में घुसने भर से कोई भारी नुकसान हो जाता।

मनीष ने उसे समझाने की कोशिश की थी—यार तू परेशान मत हो। दिल पर मत ले। ऐसा होता रहता है। तुझ जैसे के लिए नौकरी की

क्या कमी। उससे बात करते हुए वह बेहद सावधान भी था कि कहीं कल किसी को पता चले कि जय ने उसे फोन किया था और उसके कॉल डिटेल्स निकलवा ले। और जय का भी क्या पता कि उसकी बातों को रिकॉर्ड कर रहा हो। टैक्नोलॉजी ने यह क्या कर दिया। आदमी का आदमी से भरोसा उठ गया। वैसे तो पहले भी दफ्तर में दोस्तियां दिखावे के लिए होती थीं लेकिन अब तो दिखावा करना भी मुश्किल हो गया। पता चला आप किसी के गले भर लगे, फोटो खिंचा और नौकरी गई या जेल गए।

कैंटीन के सामने से गुजरते हुए मनीष को याद आया कि जय जब आया था तो उसकी पहली भिड़ंत मनीष से ही हुई थी। सीईओ ने पहले दिन ही मनीष की तारीफ उसके सामने की थी कि वह अपने काम को लेकर कितना सीरियस है और अकसर उसके बनाए प्रोग्राम्स को ऑडियंस और एडवरटाइजर दोनों की कितनी तारीफ मिलती है। जय ने शायद इसे अपने ईगो पर लिया था। आखिर वह बॉस था तारीफ उसी को मिलनी चाहिए थी। उसकी थाली में छेद करने वाले मनीष जैसे की हैसियत बताने की जरूरत थी।

एक दोपहर खाना खाते वक्त जय ने कहा था, कि प्रोग्राम्स के कंटेंट में कुछ चेंज होना चाहिए। तुम क्या सोचते हो। उसने मनीष से पूछा था। वह बोला था कि हां, उसे भी लगता है कि सीरियल्स में अकसर वुमैन फोक को काफी नेगेटिवली दिखाया जाता है। सब एक-दूसरे के बाल खींचती, षड्यंत्र करतीं और गाली-गलौच करती नजर आती हैं। कुछ अच्छे मैसेज वाले सीरियल्स बनने चाहिए। उसकी बात सुनकर जय के होंठ टेढ़े हो गए थे। वह हंसा था। उस हंसी में मनीष को यह दिखाना ज्यादा था कि कैसी बेवकूफी भरी बात की है। जय ने मनीष को चिढ़ाते हुए पूछा था—कितने दिन हुए तुम्हें यहां।

पांच साल होने को हैं। क्यों?

यदि तुम ऐसा ही सोचते हो तो आई वंडर कि उस दिन सीईओ तुम्हारे किस काम की तारीफ कर रहे थे। स्टार बता रहे थे।

क्या मतलब—मनीष ने उसकी बात को समझते हुए भी कहा था।

मतलब यही कि हम कोई रिफार्मिस्ट नहीं हैं। हमने समाज सुधार और खासतौर से फैमिली के रिलेशंस के सुधार का कोई ठेका नहीं ले रखा है। यह सब नेताओं और समाज सुधारकों का काम है। वी नीड मनी। ऐसे सीरियल्स दिखाने लगें जिनमें सब स्वीट टॉक करते हैं, एक-दूसरे का भला चाहते हैं, तब तो हो लिया। टीआरपी क्या तुम्हारे फोर फादर्स लाएंगे। आई वांट मोर वायलेंस, मोर सैक्स। यूथ को यही सब चाहिए कोई पकाऊ चीज या प्रवचन नहीं... हा... हा... हा....।

मनीष को ताव आ गया। अभी तक तुम-तुम पर बात हो रही थी और अब तू-तड़ाक पर आ गई—तू फोर फादर्स का नाम कैसे ले रहा है।

ऑफिस के भले के लिए तो फोर फादर्स क्या मैं किसी का भी नाम लूंगा। तू क्या करेगा मेरा। नौकरी से निकलवाएगा। अपनी औकात में रह।

ऑफिस अगर मेरे बाप का नहीं तो तेरे का भी नहीं। ज्यादा उड़ मत। यहां एक से एक बड़े आए और मुंह लटकाकर चले गए। हम सब यहां नौकर ही हैं। जिसने मालिक समझने की गलती की वह यहां का चपरासी भी नहीं रहा।

नौकर होगा तू, चपरासी बनने का टेलेंट तुझमें होगा। समझा। माय फुट। कहता हुआ जय पैर पटकता चला गया था। उसके हिस्से के खाने का बिल भी मनीष को ही देना पड़ा था उस दिन।

जय जिससे भी कर सकता था, उससे मनीष की शिकायत की थी। उसने उसे हर तरह से हटवाने की कोशिश की थी, मगर कुछ हुआ नहीं था। लेकिन उस दिन के बाद मनीष कभी उसके साथ कैंटीन नहीं गया था। वह बार-बार कहता रहा था, मगर कभी नहीं। मनीष के साथ ऐसा ही है। एक बार दिल से जो उतर जाता है, वापस वह फिर कभी नहीं चढ़ता है।

जिस दिन जय को जाना पड़ा, महीनों तक वह इसी बात का रोना रोता रहा था कि दफ्तर में न जाने उसने किस-किस के लिए क्या-क्या किया, मगर वहां से आने के बाद तो कभी किसी ने एक बार फोन करके तक नहीं पूछा कि वह कैसा है। कुरसी जाते ही सबसे पहले वे बदलते हैं, जो रात-दिन उस कुरसी के इर्द-गिर्द मंडराते हैं। बाद में मनीष ने भी उसका फोन उठाना बंद कर दिया था क्योंकि जय की हमेशा कोशिश होती थी कि दफ्तर में क्या चल रहा है, सारी की सारी अंदरूनी खबर मनीष उसको दे। और फिर वह किसी ब्रेकिंग न्यूज की तरह मनीष का नाम लगाकर उसे बताता फिरे।

बाहर पार्किंग की तरफ आते मनीष ने फिर आज मालिक की कही बात को सोचा। उसे लगा कि कल अगर फिर से उसके सामने घाटे का रोना रोया गया, तो बिना किसी से कुछ कहे रिजाइन कर देगा। क्या फायदा कि उसे भी जय की राह दिखाई जाए। जिस जगह से दाना-पानी उठ जाए, वहां से पहले पहल ही निकल लेना चाहिए।

गाड़ी बाहर निकालते हुए उसे लगा कि पता नहीं कितनी देर से वह सिर्फ खुद से ही बातें कर रहा है। कोई दूर-दूर तक ऐसा ढूंढे नहीं मिल रहा है, जिससे अपने मन की बात कह सके। यों हर वक्त बात करते रहने के लिए मोबाइल कंपनियां उकसाती रहती हैं कि कम से कम पैसे में ज्यादा से ज्यादा बातें कैसे की जाएं। लेकिन जितनी बातें बढ़ी हैं, आदमी को अपने बारे में चुप रहना सीखना पड़ा है। एक चेहरे पर बीसियों मुखौटे लगाने पड़ते हैं।

मोबाइल स्क्रीन पर जैसे ही किसी का नंबर चमकता है, सेकंड के भीतर रणनीति बनानी पड़ती है कि जिससे बात करनी है, उसे कितना बताना है कितना छिपाना है। हद तो यह हो गई है कि जब कोई बीमार पड़ता है और कोई गेट वैल सून कहता है तो जैसे उसकी भाषा और न दिखाई देने वाले चेहरे में छिपा रहता है कि अरे जल्दी बताओ कब इस दुनिया से कूच कर रहे हो। मिडिल क्लास की इतनी ईर्ष्या, इतनी नफरत, इतना कंपटीशन जो उम्र के साथ ही नहीं, उम्र के बाद भी चलता रहता है।

न जाने कैसे पूरा रास्ता कट गया। कैसे ड्राइव करके उसने इतना लंबा रास्ता पार कर लिया पता ही नहीं चला। उसे बार-बार लग रहा था कि कुछ न सोचे। मगर नेगेटिव विचार किसी आंधी की तरह उसके दिमाग में दौड़े चले आ रहे थे। वह उनसे पिंड छुड़ाने की कोशिश करता भी कितना असहाय था।

गाड़ी पार्क करके घर की घंटी बजाई तो मम्मी ने दरवाजा खोला। पानी लेकर आईं तो उसने ही पूछा—निशा...

अपने कमरे में होगी।

यह होगी शब्द जिस तरह से उन्होंने कहा उससे लगा कि जरूर दोनों में कोई बात हुई होगी। आज क्या फिर सारी रात कभी इसको और कभी उसको मनाने और लड़ाई खत्म करने में निकल जाएगी। मम्मी से कुछ कहेगा तो वह कहेंगी कि उसे तो उनमें ही कमियां नजर आती हैं और निशा से कुछ कहेगा तो वह बिफरती हुई पैर पटकेगी कि हां-हां सारी कमियां तो मुझमें ही हैं। और सब तो दूध के धुले हैं न।

चलो... अभी किसी से कुछ नहीं पूछेगा। घर आओ तो यहां महाभारत, दो पल का चैन नहीं। कल को नौकरी चली जाए तो क्या होगा, किसी को परवाह नहीं। फ्रेश होकर कमरे में पहुंचा तो निशा फोन पर बात कर रही थी। उसने उसकी तरफ देखा तक नहीं।

दोनों आपस में लड़ी हैं और बात मुझसे नहीं करेंगी। दोनों के लिए मैं अपराधी। मां के लिए संसार का सबसे बुरा बेटा जोरू का गुलाम। और बीबी के लिए ममाज बेबी। उसने सोचा। भूख तेज लगी थी। मम्मी ने खाना परोस दिया था, मगर वह निशा का इंतजार करने लगा। जब वह बहुत देर तक नहीं आई, तो वह कमरे में उससे पूछने गया। वह उसकी तरफ बिना देखे ही बोली—मुझे नहीं खाना।

तो आकर बैठ तो जाओ। हाउ वाज द डे।

कैसा भी हो तुम्हें इससे क्या। तुम तो अपने ऑफिस में मौज करो।

अरे भाई, मुझसे क्यों झगड़ रही हो।

तो और किससे झगड़ूं। यहां तो कोई नहीं है मेरा। किसी को मेरी परवाह भी नहीं। दफ्तर से हारी-थकी आती हूं तो कोई यह तक नहीं पूछता कि किस मुसीबत को भुगतकर आई।

कौन नहीं पूछता। घर में घुसी थी तो पूछा था न कि चाय पिओगी। मगर तूने देखा तक नहीं। सीधी अपने कमरे में चली गई। मम्मी ने उसकी बात को काटा।

मुझे नहीं पीनी तुम्हारे हाथ की बनाई घटिया सी चाय। और न तेल-मसाले से बना खाना खाना है। मोस्ट अनहैल्दी।

हां, अब खाना बनाना भी तुझसे ही सीखूंगी। हमेशा ऑफिस से आने से पहले खाना बनाकर रखती हूं कि थकी-हारी आ रही होगी। इसके लिए कोई थैंक्यू कहे, इसके बदले में हर काम में नुक्स निकालती है।

थैंक्यू तो तुम कहो, जो सालों से मेरे घर में रहती हो। और खाना बनाना ऐसी कौन सी बिग डील है। पांच हजार किसी सर्वेंट को दूंगी तो सब कर देगा। उसकी कोई जिम्मेदारी नहीं उठानी पड़ेगी न हर समय कोई चौकीदार की तरह सिर पर खड़ा रहेगा। अकेली रहने तक के लिए तरस गई। लगता ही नहीं कि शादी भी हुई है।

तेरे घर का क्या मलतब। मेरे बेटे का घर नहीं है।

तो रखो न अपने बेटे को पल्लू से बांधकर। दूध पीता है न अभी तक, मुझे तो माफ करो। शादी मैंने इसलिए नहीं की कि दहेज में मुझे तुम मिल जाओ। कल ही अपना सामान लेकर चली जाऊंगी और फिर कभी नहीं आऊंगी। निशा चीखी।

मम्मी कुछ कहतीं कि मनीष ने रोका—मां आप ही चुप हो जाएं। बड़ी हैं आप। कुछ उम्र का भी खयाल करें।

अरे इस उम्र की लाठी से कब तक पिटती रहूंगी। जाऊं भी तो कहां।

दो-चार बच्चे होते तो किसी और के पास चली जाती।

जैसी तुम्हारी आदतें हैं न उनसे दो-चार तो क्या दर्जन भर भी होते, तो उनमें से कोई तुम्हें अपने पास न रखता। सब घर से निकालते। मैंने तो फिर भी दो साल सह लिया। निशा ने दांत पीसते हुए कहा तो बोलते-बोलते मम्मी चुप हो गईं। आंसू पोंछने लगीं।

रोते हुए वहां से चली गईं तो निशा बोली आंसू बहाने का नाटक करना भी खूब आता है। सिंपेथी गेन करने का सबसे आसान तरीका। अब मेरे तो आंसू भी निकलते नहीं जल्दी से। और मैं क्यों रोऊं। मेरी क्या गलती है। मैं हर वक्त क्यों चमचागीरी मम्मीजी, मम्मीजी करती रहूं।

निशा फार गॉड सेक अब तुम भी चुप हो जाओ। कहता हुआ मनीष थाली छोड़कर उठ गया। भूख खत्म ही हो गई थी।

बिस्तर पर बहुत देर तक नींद नहीं आई। जब उसने जय से लड़ाई-झगड़ों के प्रोग्राम्स के बजाय दोस्ताना सीरियल्स बनाने की बात कही थी तो शायद उसके दिमाग में अपना घर ही कौंध रहा होगा। जहां सिर्फ दो औरतें थीं और वे एक-दूसरे को नहीं देख सकती थीं। वह जैसे किस्मत की चक्की में पिस रहा था। क्या करे। मम्मी को कहीं और रख दे। मगर कहां। कोई दूसरी जगह भी नहीं।

ओल्ड एज होम में। मगर जैसे ऐसे होम्स का नाम याद आते ही उसका कलेजा मुंह को आने लगता था। कितनी तो दर्दनाक कहानियां जानता है इन जगहों की। फिर इतने पैसे भी नहीं। अभी महीने के अंत तक आते-आते पैसे की खींचखांच होने लगती है। न ही उसके पास जोड़े हुए इतने पैसे हैं कि दो गृहस्थियों का खर्चा उठा सके।

कल नौकरी चली गई तो न जाने कब दूसरी मिलेगी, मिलेगी भी या नहीं, क्योंकि अब तो पैंतीस तक आते-आते नौकरियों के दरवाजे बंद होने लगते हैं। वह तो सैंतीस को पार कर रहा है। घर से दफ्तर भागता है, कुछ चैन की सांस, कुछ ज्यादा ऑक्सीजन मिले, और दफ्तर से घर आता है कि हो सकता है कि आज सब ठीक-ठाक हो, मगर रास्ता कहीं नहीं मिलता।

क्या सचमुच निशा चली जाएगी। वह उसे कैसे रोकेगा। क्या पता कि वह कहे कि अब वह मम्मी के साथ एक दिन भी नहीं रहेगी। तब वह क्या करेगा। वह जिसकी तरफ भी बोलता है, दूसरा उसे अपना दुश्मन समझता है। बीच-बचाव करने वाले की हालत ऐसी क्यों होती है। काश कि शांति कहीं से खरीद सके और हर जगह, दफ्तर और घर में लोगों को गिफ्ट कर सके।

उसने आंखें बंद करने की कोशिश की, मगर वहां भयावह सपने तैर रहे थे। वह चौंककर उठ बैठा और सुबह होने का इंतजार करने लगा। बिजली चली गई थी और कमरे में तेज उमस थी। खिड़की के बाहर अंधेरा अब भी घना था। सड़क के दोनों किनारे लगे पेड़ काले बुतों की तरह दिखाई देते थे। क्या उन्हें भी किसी बात का दुःख था।

17/बी-1, हिंदुस्तान टाइम्स अपार्टमेंट,
मयूर विहार, फेज-1, दिल्ली-110091

कहानी

पता-ना-पता के बीच

जयंती रंगनाथन

जयंती रंगनाथन ने अपने करियर की शुरुआत जानी-मानी हिंदी पत्रिका 'धर्मयुग' से की। सोनी एंटरटेनमेंट चैनल में काम किया, तो महिला पत्रिका 'वनिता' की भी संपादक रही। तीन उपन्यास प्रकाशित। वर्तमान में दैनिक हिंदुस्तान में वरिष्ठ फीचर संपादक।

15 सितंबर 2015

स्विमिंग पूल के आसपास लाल रंग छितरा हुआ था। पानी में तैर रही हो जैसे कोई लाल रंग की बड़ी सी तितली। सतरंगी दुपट्टा पानी में उदासीन सा पड़ा था, उसके बीच से दिखते काले केश।

सुवीर ने मुंह फेर लिया। तनु ने आंखें बंद कर ली।

उनके घर काम करने वाली नौकरानी मुन्नी तैश में बोल रही थी, ''अररे, आप लोगों को पता ही नहीं चला? दो-तीन घंटे पहले हुआ बताते हैं। वो दसवें फ्लोर पर दास अंकल रहते हैं ना, उन्होंने तो अपनी आंखों से देखा... बड़ी जोर की आवाज थी गिरने की।''

दो-तीन घंटे पहले यानी रात तीन बजे के आसपास। उस वक्त तो पूरी बिल्डिंग नींद के आगोश में डूबी होगी। नीचे झांका, स्विमिंग पूल के पास भीड़ जमा होने लगी थी। मुन्नी बिल्डिंग में आने से पहले पूरी जानकारी ले कर आई थी, ''पता नहीं कौन है? वॉचमैन बोल रहा था बारहवें या तेरहवें माले से कोई होगा।''

बारहवां? उनके फ्लोर में कौन रह रहा है, जिसकी बालकनी स्विमिंग पूल की तरफ खुलती हो? उनसे ऊपर के फ्लोर में बुजुर्ग दंपती रहते हैं और एक फ्लोर नीचे अंबिका और उनकी बेटी अप्सरा।

मुन्नी खुद ही बोल उठी, ''अंबिका मैडम तो घूमने गई हैं ना बेटी के साथ। वॉचमैन बोल रहा था।''

सुवीर उठ खड़ा हुआ, ''मैं नीचे जा रहा हूं।''

तनु ने आवाज दी, ''रुको, मैं भी आ रही हूं।''

नाइटी के ऊपर एक स्टोल डाल कर वो भी सुवीर के पीछे चल दी। लिफ्ट में कुछ परिचित मिल गए। हवाइयां उड़ते चेहरे। एक ही सवाल—कौन है वो?

उनके पहुंचने से पहले पुलिस आ गई। सामने जमीन पर लड़की थी, हरे रंग का छींट का टॉप, नीली जीन्स। स्टोल से ढका चेहरा। नंगे पैर। छोटे कद की, उजले रंग वाली लड़की। साथ में थी लगाना अजीब लग रहा था।

महिलाओं की भीड़ एक तरफ हो गई। रितु समाज सेवी टाइप थीं। वे उत्तेजित हो कर कहने लगीं, ''कितने शर्म की बात है। हमारी बिल्डिंग में ऐसा हादसा? मैंने देखा था चेहरा। यहां की तो नहीं लगती। कुल जमा अस्सी फ्लैट हैं, सबको जानती हूं मैं।''

तनु पीछे को खिसक आई। ठाकुर अंकल बैंच पर बैठे थे, साथ में कर्नल नायर। सुबह की सैर पर निकले थे। उन लोगों की ही सबसे पहले निगाह पड़ी थी स्विमिंग पूल पर।

नायर चुप थे। चेहरे पर अजीब सी चिंता की लकीरें। ठाकुर अंकल शायद बैठे-बैठे अनुलोम-विलोम कर रहे थे। अचानक किसी ने कहा, ''ठाकुर अंकल, पुलिस इंस्पेक्टर आपसे बात करना चाहते हैं।''

देखते ही देखते एक अधेड़ सा पुलिसिया उनके सामने आ गया। उसके लिए कुर्सी भी आ गई।

''सर, आपने ही पुलिस का नंबर लगाया था?''

ठाकुर अंकल ने सिर हिलाया, फिर धीरे से बोले, ''हां भई... वॉचमैन से कहा था... एंबुलेंस आई कि नहीं। उसे अस्पताल ले कर जाओ।''

पुलिस वाले ने कहा, ''सर, एंबुलेंस आ गई है। पर लड़की बची नहीं है। आप बता सकते हैं कौन थी वो?''

ठाकुर अंकल के चेहरे पर अजीब से भाव आए, सिर हिलाने लगे और उसी तरह हिलते हुए बोले, ''पता नहीं, पता नहीं...।''

तनु को दहशत-सी होने लगी। पलटी तो सामने फिर से वही नजर आ गई। कुछ देर पहले तक एक जिंदा लड़की!

पुलिस वाले हर कोण से लड़की की तस्वीरें खींच रहे थे। रितु कुछ ज्यादा ही उत्साहित हो कर उनकी मदद पर अमादा थी। अचानक आवाज आई—चेहरे से दुपट्टा हटाइए। फोटो लेनी है। रितु झुक कर फौरन दुपट्टा हटाने में जुट गई।

कई जोड़ी निगाहें वहां जम गईं। तनु ठिठक गई। लाइशा?... दो कदम बढ़ा कर उसने गौर से देखा। गोल चेहरा, चिंकी आंखें। तनु की आंखें सुवीर को खोजने लगी। वो उसके पीछे ही था। तनु ने उसके चेहरे का रंग उड़ते साफ देखा।

21 फरवरी 2014

आज तीसरा दिन था लेह में। सुबह से हड्डियां कंपाने वाली ठंड पड़ रही थी। तनु दरवाजा खोल मिंकू को ढूंढने निकली। इस छोटे से होटल में पीर-बावर्ची-भिश्ती सबकुछ था मिंकू। ठिगना, हंसमुख, अजीब तरह से हिंदी बोलने वाला नेपाल का बाशिंदा। सुवीर ने पहले ही दिन उसके हाथ में सौ का पत्ता थमा दिया था, टिप।

मिंकू खुश हो गया। दौड़-दौड़ कर उनका काम करने लगा। जब कहो, दौड़ कर गर्मागर्म मोमोज खरीद लाता, चाय की केतली ले आता। बस, उसे दरवाजा खोल पुकारने की जरूरत थी। पर आज सुबह चाय पिला कर ना जाने कहां गायब हो गया था। दरवाजे से बाहर निकल कर तनु मिंकू को आवाजें निकालने लगी। कुछ देर बाद कहीं से मिंकू प्रकट हुआ। वो हांफ रहा था, ''मेमसाब, वो कमरा नंबर तेरा वाला दीदी का तबीयत खराब हो गया। मैं डॉक्टर को बुलाने गया था।''

तनु ने पूछ लिया, ''क्या हुआ?''

''सुबह मैं चाय देने गया, तो दीदी जमीन पर लेटा था। मुंह से झाग। मैं डर गया मेमसाब।''

''कौन है? कहां से आई है?''

''हमारे उधर की है, नेपाली। दस दिन हो गए इधर आए।''

''अकेली रहती है?''

मिंकू ने सिर हिलाया।

तनु ने सोच कर कहा, ''चलो, देखती हूं।''

बीसेक साल की लड़की। गोल चेहरा, घुंघराले बाल, चिंकी आंखें। आंखों के नीचे गहरे काले गड्ढे। बिस्तर पर लेटी हुई थी। तनु को देख कर उठने की कोशिश करने लगी। तनु ने तुरंत कहा, ''लेटी रहो। मिंकू ने बताया कि तुम बीमार हो। कुछ चाहिए तो नहीं? हम यहीं रहते हैं, रूम नंबर पच्चीस में।''

लड़की की आंखों में हलकी-सी चमक आई। धीरे से बोली, ''बहुत भूख लगी है। कुछ खाने को मिलेगा?''

''जरूर, क्या खाओगी? नूडल्स? मोमोज?''

लड़की ने सोच कर कहा, ''पूरी-भाजी!''

तनु ने मिंकू की तरफ देखा।

उसने फौरन कहा, ''मिल जाएगा मेमसाब।

वो कोने वाला होटल है ना, स्वागत बोल के।''

तनु ने लड़की से कहा, ''अभी मंगवाते हैं। तुम बैठना चाहोगी?''

लड़की ने अपने मरियल सा हाथ आगे बढ़ाया। तनु ने उसे सहारा दे कर बिठाया और मिंकू से कहा, ''तुम मेरे कमरे में जा कर सुवीर से पैसा ले लो। बोलो मैंने कहा है। तीन प्लेट पूरी-भाजी ले आना।''

दस मिनट में मिंकू पूरी-भाजी ले आया, बाकायदा प्लेट में डाल कर। तनु के सामने लड़की ने पूरी-भाजी खत्म किया। एक गिलास पानी पिया। चेहरे पर जरा-सी रौनक आई। तनु ने उठते हुए कहा, ''अपना खयाल रखना। कुछ चाहिए तो बताओ। हम आज कहीं नहीं जाएंगे।''

लड़की ने हां में सिर हिलाया।

तनु कमरे में आ गई। आधा घंटा नहीं हुआ कि लड़की दरवाजे पर आ खड़ी हुई, ''मुझे डॉक्टर के पास ले चलो। पेट में बहुत दर्द है।''

इसके बाद ना सुवीर को ठंड की परवाह रही ना तनु को। मिंकू ने बताया कि वांगचुक अस्पताल पास में ही है।

अस्पताल में भर्ती करते समय सुवीर ने तनु से पूछा, ''उसका नाम क्या है?''

नाम तो तनु को भी नहीं पता था। स्ट्रेचर पर लेटी लड़की के कान में बुदबुदाते हुए तनु ने पूछा, ''अपना नाम बताओ? वॉट इज युअर नेम?''

लड़की धीरे से बोली, ''लाइ...सा।''

तनु ने सुना मलायका। कई दिनों तक तनु और सुवीर उसे इसी नाम से बुलाते रहे और वह शरमा कर कहती, ''मलायका नहीं, लाइशा...।''

तनु और सुवीर लेह अपना हनीमून मनाने आए थे। तीसरे दिन के बाद वे जब भी घूमने गए, लाइशा उनके साथ होती। लाइशा बौद्ध धर्म की पढ़ाई के सिलसिले में लेह आई थी। तनु को वह दीदी कहती और सुवीर को नाम से बुलाती। कहती—जीजू बुलाना अजीब लगता है। बात-बात पर रूठ जाती। सुवीर और तनु कहीं अकेले चले जाते, तो उनके कमरे में आ कर रोने लगती। बच्चों की तरह आंसू बहाती हुई कहती—तुम दोनों अकेले कैसे चले गए? मुझे कोई प्यार ही नहीं करता।

फिर देर तक तनु उसे मनाती रहती। सुवीर की गोद में जब-तब सिर रख लेती और कहती—तुम मेरे डैडी हो। मेरा बाल सहलाओ।

तनु हंसती, ''एकदम पगली है।''

लाइशा भी मुंह बना कर फिक-सी हंस देती। कभी तो तनु के बाल बनाने बैठ जाती, तो कभी अपने हाथ से खाना खिलाने की जिद पाल लेती।

तनु उसके गाल पर चपत लगाती हुई कहती, ''मलायका, तुम भूल रही हो कि हम दोनों हनीमून पर आए हैं। कुछ तो वक्त अकेला छोड़ दो।''

लाइशा इतरा कर कहती, ''दीदी, दिल्ली लौटने के बाद तो साथ रहोगे ना। वहां मैं कहां होऊंगी? मना करना होता, तो पहले ही दिन कर देते। अब तो देर हो गई।''

दस दिन निकल गए। सुवीर और तनु को शाम की फ्लाइट से लौटना था। लाइशा सुबह से अनमनी थी। नाश्ते पर दोनों उसका इंतजार करते रह गए। तनु झल्ला कर बोली, ''एकदम पगली है। अभी आ कर रोने लगेगी कि उसके बिना नाश्ता कर लिया। एक तो इतना करो उसके लिए, फिर देखो ये बचपना?''

सुवीर एकदम से उठ कर खड़ा हो गया। दरवाजा खोल बाहर आ कर मिंकू को आवाज देने लगा। मिंकू नीचे के माले से भागा-भागा आया, ''जी शाब!''

''वो तुम्हारी गांव वाली लाइशा कहां है? बुलाओ उसको जल्दी से।''

मिंकू ने मुंह बना कर कहा, ''कुछ समझ में नहीं आता शाब। आधा घंटा पहले उसको चाय वाली दुकान के पास देखा। बोली, वो अभी वापस नहीं आएगी, पेंगाग लेक की तरफ जा रही है।''

सुवीर चौंका, ''आज? तुमने उसे रोका नहीं?''

मिंकू ने कंधे उचकाए। तनु को सुवीर का यह उतावलापन खल गया। लाइशा कहीं भी जाए, कभी भी जाए, सुवीर को इतनी फिक्र क्यों होने लगी? तनु कुछ झल्लाई-सी कमरे के बाहर निकली, पर वहां सुवीर नहीं था। उसकी नजर सीढ़ियों पर पड़ी, तनु की पुकार को अनसुना कर वह तेजी से होटल से बाहर निकल रहा था।

दो घंटे बाद सुवीर लाइशा के साथ लौटा। इस बीच तनु ना जाने उसे कितने फोन और मैसेज कर चुकी थी। झींकती, गुस्साती, रोती तनु। इस खयाल के साथ कि जाने किस घड़ी लाइशा को अपने पास आने दिया... सुवीर पर ज्यादा गुस्सा आ रहा था। उसकी हिम्मत कैसे हुई, अपनी पंद्रह दिन पुरानी पत्नी को छोड़ किसी दूसरी लड़की के पीछे भागने की?

सुवीर जैसे ही लाइशा के साथ कमरे के अंदर आया, तनु ने उसके ऊपर मेज पर रखा पेपर वेट दे मारा। निशाना सीधे सुवीर के माथे पर लगा। वह चिल्लाया और लाइशा चीखती हुई जमीन पर बैठ गई। तनु झपटती हुई आगे बढ़ने लगी। लाइशा को लगा, वह उसे मारने आ रही है। वह सुवीर का सहारा ले कर पीछे की तरफ बढ़ने लगी। तनु ने पास आ कर उसको डपटते हुए कहा, ''तुम निकलो यहां से।''

सुवीर ने लाइशा को बचाते हुए कहा, ''तनु, क्या हो गया है तुम्हें? इसने क्या किया?''

तनु अकबकाई-सी सुवीर के चेहरे की तरफ देखने लगी। सुवीर इस समय उसे कोई दूसरा ही आदमी लग रहा था, वो नहीं, जिसके साथ

तीन साल उसका धुआंधार अफेयर चला, जिसके लिए उसने अपने घरवालों से झगड़ा मोल लिया। अचानक लाइशा ऊंची आवाज में रोने लगी और रोते-रोते भागती हुई कमरे से बाहर निकल गई।

सुवीर उसे रोकते-रोकते रुक गया। तनु गुस्से से सुवीर का हाथ झंझोड़ती हुई बोली, ''तुम बताओ क्या हो रहा है? कौन लगती है ये तुम्हारी?''

सुवीर माथा सहलाते हुए खड़ा रहा, फिर ठहर कर बोला, ''तनु, तुम इतना ही समझती हो मुझे? मेरी कौन लगती है? अरे तुम ही तो उसे ले कर आई थी। मैंने कहा था? वो लड़की प्रॉब्लम में है। कल रात कह रही थी कि वह सुसाइड करने की सोच रही है... मैं तो बस...।''

तनु के चेहरे की तरफ देखते हुए सुवीर ने जोड़ा, ''देखो तनु, मुझे नहीं पता कि हम उससे अब कभी मिलेंगे भी कि नहीं। दो दिन पहले रात को जब मैं सिगरेट पीने बाहर निकला था, वो अंधेरे में खड़ी थी। एकदम ट्रांस में। वो अपने बारे में बहुत कुछ नहीं बताना चाहती। पर इतना तो है कि वह किसी बात से डर कर नेपाल से यहां भाग कर आई है। मैं तो बस... तुम भी अजीब हो। तुम्हारे कहने पर उसके लिए कुछ करूं तो ठीक है, नहीं तो गलत!''

अपना सिर झटकते हुए सुवीर कमरे से बाहर निकला, दो सेकेंड बाद पलट कर आया, ''और कोई टंटा मत खड़ा करना। मैं डॉक्टर के पास जा रहा हूं, अपना माथा दिखाने।''

उनके जाने तक लाइशा अपने कमरे से बाहर नहीं निकली। सुवीर एयरपोर्ट आने तक आश्चर्यजनक रूप से चुप रहा। तनु उससे एक पत्नी की तरह झगड़ना चाहती थी। उसके बाल झिंझोड़ते हुए, गालियां देते हुए, छाती पर मुक्का मारते हुए।

उसने सुवीर से बात करने की कोशिश की, पर वह चुप रहा, बिलकुल चुप।

दिसंबर 2014

लाइशा प्रसंग वैसे तो लेह की उस यात्रा तक ही खत्म हो जाना था। दिल्ली आने के बाद सुवीर और तनु को कुछ दिनों तक तो बिल्कुल समय नहीं मिला। सुवीर का परिवार बड़ा था। रोज किसी ना किसी के घर से न्योता। दोनों की नौकरी। घर जमाने का काम। शुरू में कुछ दिनों तक तनु सुवीर से नाराज रही। फिर धीरे-धीरे भूल गई। हनीमून का एलबम ही उठा कर दराज के सबसे निचली शेल्फ में डाल दिया। लाइशा का जिक्र लगभग दस महीने बाद आया, जब नया साल मनाने वे दोनों शिमला पहुंचे।

होटल के कमरे में पलंग पर पसरते ही तनु ने कुछ जोर से कहा, ''देख लो, कहीं किसी कमरे में लाइशा ना निकल आए।'' दोनों हंसने लगे। सुवीर ने जोड़ा, ''फिर से किसी पगली को पकड़ मत लाना।'' तनु बोली, ''इस बार पगली नहीं, किसी पगले को लाऊंगी।'' दोनों हंसने लगे। तनु की बाहों में सुवीर का सिर। उसके बालों में उंगलियां फिराते हुए तनु ने सोचा—अब वो कुछ गलत नहीं होने देगी। किसी भी लाइशा को उन दोनों के बीच आने नहीं देगी।

8 फरवरी 2015

शिमला से आने के बाद एक शाम दिल्ली हाट में गर्मागर्म मोमोज खाते समय तनु ने अचानक सवाल किया, ''सुवीर, फिर उस मलायका का क्या हुआ?''

सुवीर को दो मिनट समझ नहीं आया कि वह किसके बारे में पूछ रही है। तनु ने चुटकी ली, ''अरे वहीं, तुम्हारी लाइशा। उस दिन क्या हुआ था उसे? क्यों खुदकुशी करने की कह रही थी?''

सुवीर ने अपनी पत्नी की तरफ निगाह डाली। शब्दों को तौलते हुए कहा, ''तुम्हें बड़ी जल्दी आ गया उसका खयाल? तुम्हें लगता है मुझे पता होगा?''

तनु ने अपनी आंखें चौड़ी की, ''हां, तुम्हें डैडी कहती थी।'' कहते-कहते खिल-खिला कर हंसने लगी।

सुवीर चुप रहा। तनु ने टोका, ''बताओ ना सुवी!''

''तुम सच में जानना चाहती हो? तनु, मैं कुछ कहूंगा तो तुम गुस्सा तो नहीं होगी?''

''ना... प्रॉमिस।''

''लाइशा दिल्ली में है।''

तनु का मुंह चलते-चलते रुक गया।

''क्यों?''

सुवीर ने गर्दन झटक कर कहा, ''यह क्या सवाल हुआ? तुम जानना चाहती थी ना उसके बारे में?''

''मैं उससे मिल सकती हूं?''

सुवीर सोचने लगा। तनु उतावली हो उठी, ''अरे, मैं कुछ नहीं कहूंगी। मुझे मिलना है उससे। कितनी परेशान थी उस दिन। मुझे तुमने पूरी बात भी तो नहीं बताई। अब बताओ, क्या हुआ था उसे?''

सुवीर ने मोमोज के पैसे दिए। तनु का हाथ पकड़ कर दिल्ली हाट से बाहर आ गया। तनु बेसब्र हो रही थी, ''बताओ ना सुवी।''

सुवीर ने कुछ तेज चलते हुए कहा, ''ऐसा कुछ नहीं था। वह बीमार थी। बचपन की कोई बात थी। अपने चाचा के घर पली थी। बहुत मारते थे उसे। रीढ़ की हड्डी में चोट थी। फिर नेपाल में ही उसकी जिंदगी में कोई आ गया। गाना गाता था। मुंबई आकर सिंगर बनना चाहता था। मुंबई आने के बाद वह गायब हो गया। डिप्रेशन में थी लाइशा। कभी सुसाइड की बात

करती, तो कभी बौद्ध भिक्षुणी बनने की।'' दोनों पार्किंग तक पहुंच गए। तनु ने चुटकी ली, ''तुम्हें इतना कुछ बताया उसने?''

''यही तो। अच्छा होगा कि तुम उससे ना मिलो। वैसे भी डरती है तुमसे।''

तनु चिहुंकी, ''मुझसे? तुमने उसे मेरे बारे में ऐसा क्या बताया?''

''मेरे बताने की क्या जरूरत? तुम खुद ही मारने दौड़ी थी।''

तनु चुप हो गई। फिर बोली, ''मैं मिलना चाहती हूं उससे। मैं इतनी बुरी भी नहीं। अर्रे, उस वक्त हमारी शादी को दिन ही कितने हुए थे? मैं पजेसिव थी तुम्हें ले कर।''

सुवीर ने मोटर साइकिल स्टार्ट करते हुए कहा, ''अच्छा चलो। पर तनु इतना मान कर चलो कि मेरा कोई लेना-देना नहीं है उससे। वह कभी-कभार मुझसे सलाह लेने के लिए फोन कर लेती है।''

''कहां रहती है वो?''

''ले चल रहा हूं ना। जगह का नाम बताने से समझ जाओगी क्या?''

''हां, बिल्कुल। दिल्लीवाली हूं। बताओ तो? वो कब से है यहां? किसके साथ रहती है? तुम अकसर मिलते हो क्या उससे।''

सुवीर ने जवाब नहीं दिया। बस मोटर साइकिल चलाने लगा।

जंगपुरा में भोगल के पास एक तिमंजिले घर में लोहे की सीढ़ियां चढ़ते हुए तनु को अहसास हुआ कि सुवीर उससे कुछ छिपाता है। अगर आज भी वह नहीं पूछती तो शायद नहीं बताता। इस समय वह लाइशा से मिलने के मूड में थी, सुवीर से लड़ने के नहीं। तीसरी मंजिल पर जिस आदमी ने दरवाजा खोला, वह खिचड़ी दाढ़ी वाला अजीब शक्ल का लंबा आदमी था। सुवीर को वह पहचानता था। गले लग कर मिला। सुवीर ने परिचय करवाया— माइ वाइफ तनु।

वो आदमी नमस्ते करते हुए आधा झुक गया। सुवीर ने तनु की तरफ देखते हुए कहा, ''ये मोहनजी हैं, लाइशा के बॉयफ्रेंड।''

तनु चौंकी। मोहन कुछ खिसियाए से खड़े हो गए। सुवीर ने पूछा, ''कहां गई, आपकी मित्र?''

मोहन दरवाजे से हटते हुए बोले, ''पूजा कर रही है। आप दोनों अंदर आइए। मैं चाय बनाता हूं।''

दो कमरे का ठीक सा घर था। कमरे में नीचे बिछे गद्दे। ऊपर पड़े रंग-बिरंगे कुशन। बिखरी हुई किताबें। जूठे कप। प्लेट में रखे अधखाए समोसे। कोने में जूट की दो कुर्सियां रखी थीं। मोहन ने कुर्सियों पर पड़े अखबार और कपड़े उठा कर गद्दे पर डाल दिया और उन दोनों से बैठने का इशारा किया।

सुवीर के अंदर जाते ही तनु शरू हो गई, ''तुमने मुझे बताया नहीं कि लाइशा का बॉयफ्रेंड भी है। लगता है तुम इन लोगों से बहुत क्लोज हो।''

सुवीर के कुछ कहने से पहले लाइशा आ गई। पहले से दुबली। नीले रंग के ढीले से किमोनो में थकी हुई सी। तनु को देख कर वह सकपकाई। फिर हाय कह कर गद्दे पर बैठ गई। सुवीर ने बातचीत शुरू की, ''तनु का मन था तुमसे मिलने का। कैसी हो? पढ़ाई कैसी चल रही है? नेट का फॉर्म भरा?''

लाइशा सिर हिलाने लगी। फिर एकदम से उठते हुए बोली, समोसा खाओगे? नीचे मिलता है। मैं अभी जाकर लेकर आती हूं।''

मोहन चाय बना लाया और लाइशा के समोसे का इंतजार करने लगे। मोबाइल वो घर पर छोड़ गई थी। आधे घंटे बाद मोहन ने कहा, ''मैं देख कर आता हूं। कई बार ये हलवाई इंतजार करवाता है।''

वह कुछ मिनटों में घर आ गया, यह कहते हुए कि लाइशा तो उसके पास गई ही नहीं। दो घंटे बीत गए। सुवीर और मोहन लाइशा को ढूंढने निकले। बहुत देर बाद सुवीर का फोन आया, ''तनु, तुम घर चली जाओ। मैं और मोहन पुलिस स्टेशन में हैं। लाइशा के मिसिंग होने की रिपोर्ट लिखवा रहे हैं। हो सकता है आने में देर हो जाए।''

15 सितंबर 2015

''क्या नाम बताया?''

''लाइशा...''

पुलिस वाले ने अबकी तनु की तरफ झुक कर पूछा, ''मैडम आप कैसे जानती थीं इनको...''

तनु ने दीवार से टेक लगाए सुवीर की तरफ देखा फिर धीरे से कहा, ''हम लेह में मिले थे। हम अपने हनीमून के लिए गए थे। उसी होटल में रहती थी।''

''दिल्ली आपके साथ आई?''

तनु को अपने गले में अजीब सुरसुरी महसूस हुई। सुवीर की तरफ देखते हुए कहा, ''मेरे हजबैंड... सुवीर बताएंगे...''

सुवीर की आंखें लाल थीं, गुस्से से भरीं। सुवीर लंबे डग भरता हुआ उसकी बगल की कुर्सी में आ कर बैठ गया। सुवीर की आंखें लाल हैं। बहुत गुस्सा है उनमें। वह तनु की तरफ देख भी नहीं रहा। मुट्ठियां भिंची हुईं। माथे पर पसीने की बूंदें। तनु का मन हो रहा है कि सुवीर के हाथ पकड़ ले। कहे कि तुम्हें कुछ नहीं होगा। तनु ने धीरे से सुवीर का हाथ छुआ, लेकिन उसने बेरहमी से झटक दिया। तनु उलझन में है। क्या उसने कुछ गलत कह दिया?

17 अप्रैल 2015

वो एक भीगी-सी शाम थी। बेमौसम बारिश। ठंड के दिन बस शुरू होने को थे। तनु बालकनी का दरवाजा खोल कर बाहर निकल आई। दोनों हाथों को जींस की जेब में डाल कर उसने झुरझुरी ली।

बालकनी सड़क की तरफ थी। बिल्डिंग में आने-जाने वाले साफ नजर आते। सड़क के उस पार सुवीर को देख कर वह चौंकी। आज ऑफिस से इतनी जल्दी आ गया? उसके पीछे-पीछे एक जाना-पहचाना चेहरा। मोहन। लाइशा का बॉयफ्रेंड मोहन। मोहन धीरे-धीरे चल रहा था।

लाइशा का इस तरह से गुम होना तनु को आतंकित कर रहा था। उसे लगता था कि वह अपनी मर्जी से कहीं गई है। तनु पिछले दो महीने से ना जाने कितनी बार सुवीर से पूछ चुकी थी लाइशा के बारे में। रोज अखबार खोलने से पहले उसे धुकपुकी-सी लग जाती। कहीं लाइशा के बारे में कोई खबर तो नहीं... सुवीर को लगता था कि वह नेपाल वापस चली गई है।

उन दोनों को देखने के बाद बालकनी से निकल कर तनु कमरे में आ गई। बाहर का दरवाजा खोल दिया। मन में शंका-सी उठी— सुवीर मोहन को ले कर घर क्यों आ रहा है? पर पता नहीं रास्ते में वह कहां रुक गया था? पंद्रह मिनट तक वह घर नहीं आया, तो तनु ने उसे फोन लगा दिया।

''कहां हो?''

सुवीर हड़बड़ा गया।

''मैंने कुछ देर पहले तुम्हें मोहन के साथ ऑटो से उतरते देखा। तुम लोग गए कहां?''

सुवीर ने संभल कर कहा, ''मैं आ रहा हूं। सब बताता हूं।''

उस दिन दूसरी बार तनु को लगा कि किसी के आप कितने भी नजदीक क्यों ना आ जाएं, कुछ परतें ऐसी होती हैं, जिनका सिरा आपके हाथ कभी नहीं लगता। सुवीर, जिसे वह अपने से भी अच्छी तरह जानती है, कितना अजनबी लगने लगता है कभी-कभी। जिस दिन उन्हें लेह से लौटना था, तब भी कुछ ऐसा ही लगा था उसे। आज भी। क्या दोनों का लाइशा से कुछ लेना-देना है?

लगभग आधे घंटे बाद सुवीर आया। उसके पास उत्तर तैयार था। मोहनजी को जंगपुरा वाला अपना घर छोड़ना पड़ा। मकान मालिक ने जाने को कह दिया। वह मेरे पास आया था, किराए पर घर के लिए। मैंने कहा अपनी बिल्डिंग में किसी रियल एस्टेट एजेंट से मिलवा देता हूं। मैंने वो सचदेवा है ना फर्स्ट फ्लोर वाला, उससे मिलवा दिया। अब वो

जाने, उसका काम जाने।

तनु ने कुछ हिचकते हुए पूछा, ''वो हमारी बिल्डिंग में क्यों रहना चाहता है?''

सुवीर ने कंधे उचकाए, ''उसे जहां घर मिल जाए। मैंने तो बस उसे एजेंट से मिलवाया है।''

''लाइशा का कुछ पता चला?''

सुवीर की आंखों में खालीपन था। उसने नहीं में सिर हिलाया और जूते उतार कर अंदर के कमरे में चला गया।

तनु और भी बहुत कुछ पूछना चाहती थी, पर चुप लगा गई।

15 सितंबर 2015

''लाइशा... ये असली नाम था उसका?'' पुलिस वाला सुवीर से पूछ रहा था।

सुवीर की आवाज में थोड़ा बदलाव आया, ''हां, उसने यही बताया था...।''

''उसका असली नाम मल्लिका था... वह नेपाल की नहीं थी। जैसा वो बताती थी। ...वो कोलकाता की थी। वो एक वांटेड नक्सलाइट थी। पिछले हफ्ते छत्तीसगढ़ में बारह सीआरपीएफ के जवान मारे गए थे... जगदलपुर के पास। उस केस में भी उसका नाम था...''

तनु कुछ पगलाई-सी पुलिस वाले की तरफ देखने लगी। क्या ये लोग उसी लाइशा के बारे में बात कर रहे थे, जो उसकी गोद में सिर रख कर खिलखिला कर हंसती थी?

सुवीर ने धीरे से अपना सिर मेज पर टिका दिया। पुलिस वाले ने दोनों का बयान लिया। उनके लिए चाय मंगवाई। और जाने को कह दिया।

16 सितंबर 2015

दिमाग में सबकुछ गड्डमड्ड हो रहा है। बस इतना याद है कि पुलिस स्टेशन से लौटने के बाद तनु इतना रोई, इतना रोई कि बस रोती रही। सुवीर ने डॉक्टर को बुलाया। उसे इंजेक्शन देकर सुला दिया गया। सुबह बहुत देर तक वह उसी नशे में रही। नींद खुली, पर आंखें नहीं। अब भी मन कुम्हलाया-सा है, डर-सा लग रहा है। ऐसा तो नहीं होना था। किसी को समझने में इतनी बड़ी भूल कैसे हो सकती है?

सुवीर उसके लिए सूप ले कर आया है। दोपहर के दो बज रहे हैं। धीरे से उसे उठा कर तकियों के सहारे बिठाया। मुंह में चम्मच से सूप पिला रहा है। तनु की आंखें भरी हुई हैं। सुवीर उसे थपथपा कर कह रहा है, ''सब ठीक हो जाएगा। इसे एक बुरा सपना समझ कर भूल जाओ... तुमने... हमने तो कुछ नहीं किया ना। फिर तुम इतना परेशान क्यों हो रही हो?''

शाम तक थोड़ा-सा संभल गई। नहा कर आई। ढीली सी शर्ट और पाजामा पहन कर बालकनी पर आ कर खड़ी हो गई। सुवीर उसके पीछे ही है। उसे बांहों में भर कर कह रहा है, ''चलो, थोड़ा नीचे टहल आते हैं। तुम्हारा मन बहल जाएगा।''

तनु ऊपर से एक शॉल ओढ़ कर सुवीर का हाथ पकड़ कर बिल्डिंग के नीचे चली आई। सुवीर के चेहरे पर कोई शिकन नहीं, वह चिंतामुक्त लग रहा था। तनु ने लंबी सांस ली—इस सुवीर के साथ वह निश्चित अपनी जिंदगी आराम से बांट सकेगी। अब दोनों के बीच कोई परदा नहीं, कोई दुराव नहीं।

पार्क के बीचोबीच बने बैंच पर दोनों बैठ गए। सुवीर के हाथों में उसका हाथ।

सामने सचदेवा आ गए, एजेंट।

सुवीर को देख कर बोले, ''पुलिस आई थी मोहन को ढूंढते हुए। वो तो कल रात ही फ्लैट खाली कर गया। देखिए, पुलिस वेरिफिकेशन भी करवाया था उसका किराए पर घर देने से से पहले। पर किसके बारे में क्या पता चलता है? मेरा तो नाम खराब कर दिया कमीने ने। आपको पता था?''

सुवीर ने तनु की तरफ देखते हुए नहीं में सिर हिलाया। सचदेवा सिर हिलाते हुए वहां से चले गए। तनु ने कुछ आश्चर्य से सुवीर को देखा। उसके हाथ से अपना हाथ छुड़ाते हुए उसे यकीन हो गया कि सुवीर को पता था...।

जी-1201, नीलपद्म-1, सेक्टर-5, वैशाली, गाजियाबाद-201010 (उत्तरप्रदेश)

कहानी

नजराना-ए-उल्फत

सुनीति रावत

कई पुरस्कारों से सम्मानित सुनीति रावत की कई पुस्तकें प्रकाशित। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेखन। स्वतंत्र लेखन में सक्रिय।

उन दिनों शहंशाह जहांगीर का निवास आगरे का किला था। मुस्लिम त्योहारों के दिन, महल से बाजार तक सब सजे हुए, मीना बाजार की सज-धज कुछ खास थी। शाही बेगमों, शहजादियों के लिए तरह-तरह के रत्नाभूषण सजे थे। कीमखाब और रेशमी पोशाकों की खूबसूरती देखते ही बनती थी, मीनाकारी और दस्तकारी की नायाब चीजें दिल लुभा रही थी। बाजार में सरसराती, महकती हंसी-ठिठोली करती कमसिन शहजादियां, खरीद-फरोख्त कर रही थीं।

बारादरी भी खूब सजी थी, अनेक शहजादे अमीर, उमराव भी अपनी पसंद की खरीदारी में मशगूल थे। रेशमी पगड़ियां, दस्तार, कामदार जूतियां, शाही पोशाकें, जड़ाऊ आभूषण, मोतियों के नायाब हार और भी न जाने क्या-क्या बाजार में था। बारादरी से गुजरते हुए शहजादे खुर्रम की नजर अचानक एक कमसिन किशोरी पर ठहर गई। देर तलक नजरें उस शोख हसीना का पीछा करती रहीं। हसीना जब मीना बाजार की ओर बढ़ रही थीं तो शहजादे ने अपने मित्रों से पूछा—"कौन है यह शोख शहजादी? देखा नहीं कभी पहले इसे।"

"कौन है यह तो पता नहीं शहजादे, पर है बला की खूबसूरत।"

"वल्लाह! इतनी हसीन, उस पर फबता हुआ रेशमी लिबास, उस पर जड़ाऊ हार-शृंगार। लगता है दूधिया चांदनी में नहाकर निकली है अभी-अभी।" शहजादे ने कहा।

चलते-चलते यह सब सुना शहजादी ने, एक नजर देखा भी शहजादे को, किशोरावस्था, मसें अभी भीगी भी नहीं... छरहरा बदन, मखमली पोशाक, गले में दमकते हीरे-जवाहरात, पैरों में जरीदार जूतियां—शहजादी तनिक मुस्कुराई और आगे बढ़ गई।

शहजादे को अब चैन कहां! दीवान से पूछा—"कौन है वह बला से भी खूबसूरत बला... आप जल्द पता लगाइए दीवानजी।"

"जानता हूं हुजूर! वह है साहिबे आलम के प्रधान, आसिफखान की बेटी, बानो बेगम।"

"बहुत खूब।" शहजादा मुस्कुराया।

शहजादा महल में लौटा तो बहुत बेचैन था। वह पहली नजर का प्रेम था। अर्जुमंद बानो शहजादे खुर्रम के दिल में गहरे पैठ गई थी।

बात जब जहांगीर तक पहुंची, तो वे शहजादे को बुलाकर बोले—"शहजादे, बेगम नूरजहां ने आपकी पसंदगी की बात बताई। यूं हमें भी कोई ऐतराज नहीं है क्योंकि अर्जुमंद बानो हमारे ही प्रधान की बेटी हैं, यानी सब तरफ से रिश्ता उचित है। पर अभी तुम दोनों ही कमसिन हो।"

खुर्रम ने एक बार पिता की ओर देखा, नूरजहां की तरफ देखा, नूरजहां मुस्कुराई—"शहजादे! अभी तुम भी कुल पंद्रह वर्ष के हो और अर्जुमंद महज चौदह वर्ष की। थोड़ा सब्र करो। तुम्हारा विवाह अर्जुमंद बानो से हो जाएगा, यह तय रहा।"

"जी अम्मीजान!" शहजादे ने राहत की सांस ली। वे जानते थे कि मां नूरजहां का दर्जा बड़ा अहम् था। अब्बा हुजूर भी उनकी बात टाल नहीं सकते थे, अतः खामोश मुस्कुराते रहे। जहांगीर कुछ गंभीर दिखाई दे रहे थे। शहजादे ने अब्बा हुजूर की तरफ नजरें उठाईं, तो शहंशाह बोले—"सुनिए शहजादे! हम आपसे अपने दिल की बात करना चाहते हैं, उम्मीद भी करते हैं कि आप अपने अब्बा हुजूर की बात टालेंगे नहीं।"

"जी, अब्बा हुजूर।"

"शहजादे कुछ राजनीतिक कारणों से हम आपका विवाह एक परशियन राजकुमारी से करना चाहते हैं, ताकि दो मुल्कों में दोस्ताना बढ़े। दो आला खानदानों का मिलाप हो, दो सल्तनतों का गठजोड़ हो, ताकि आने वाले समय में हमारी धाक दूर-दूर तक पहुंच जाए। फिर आपका विवाह अर्जुमंद बानो से भी करा दिया जाएगा, आप इतमीनान रखें।"

"जी शहंशाह! हम आपकी शान में भला गुस्ताखी कैसे कर सकते हैं! अब इजाजत दें, अब्बा हुजूर।"

"इजाजत है।" शहंशाह बोले।

कुछ दिनों बाद ही शहजादे खुर्रम का विवाह पूरे शाही ताम-झाम के साथ एक परशियन

राजकुमारी से कर दिया गया। चार-पांच वर्ष बाद ही लगभग बीस वर्ष की अवस्था में दूसरा विवाह, अर्जुमंद बानो से भी हो गया। बानो बेगम को महल में देखकर वे बोले– ''वल्लाह! आज हमारे नसीब का महाताब फलक से उतर कर हमारे पहलू में आ बैठा है। जगमगाने लगे हैं दरो-दीवार। या खुदा... अर्जुमंद आज हमारी बेगम बन गई।''

अर्जुमंद मंद-मंद मुस्कुराई–''मेरे सरताज, हमारी उल्फत को राह मिल गई। हमें भी आपकी पनाह मिल गई... जहे नसीब।''

बस फिर क्या था। ख्वाबों के दिन थे, महकती रातें, अजब सा आलम था। पहलू में चांद था। इसी तरह न जाने कब वर्ष बीत गया। वर्ष बीतते-बीतते अर्जुमंद ने पहली बच्ची को जन्म दिया हरून्निसा बेगम। दावतें हुईं। दूसरे वर्ष जन्मी जहांनारा बेगम, तीसरे ही वर्ष जन्मे शहजादा मोहम्मद दाराशिकोह, सल्तनत के वली अहद, खुशियों के चराग रौशन हुए। महल गूंजने लगा।

ये दिन दोनों के जीवन के सुनहरी दिन थे। जीवन जैसे बहारों की आहट सुना रहा था। यद्यपि उन दिनों शहंशाह जहांगीर का शासन सुदृढ़ता से नहीं चल रहा था। बादशाह शानो-शौकत और आरामतल्बी के शौकीन थे। अतः बेगम नूरजहां ही शासन संबंधी कामों को देखा करती थीं। जहांगीर अक्सर आगरा के उमस भरे मौसम से ऊबकर अन्य नगरों के लिए रवाना हो जाते थे। वे आगरा से काबुल, लाहौर निकल जाते या आगरा से श्रीनगर (कश्मीर) चले जाते। शहंशाह के राजधानी में न रहने के कारण चारों ओर से बलवे उठने लगे। बेगम नूरजहां अपने बेटे शहरयार (हजरत नाशुधानी) को मुगलिया सल्तनत का वारिस बनाना चाहती थी, जो निपट अयोग्य और विलासी प्रकृति का था। उसके विपरीत शहजादा खुर्रम जनप्रिय थे। वे बलवों को दबाने के लिए लगातार युद्ध क्षेत्र

मुमताज महल

में रहा करते थे। बेगम अर्जुमंद बानो भी सदा उनके साथ रहती थीं।

अचानक ही (1627 में) बादशाह जहांगीर की मृत्यु हो गई। चारों तरफ बलवों के कारण शासन की नींव हिलने लगी। ऐसे समय में शहजादा खुर्रम की उनके ससुर आसिफखान ने मदद की और आगरा की गद्दी पर खुर्रम गद्दीनशीन हो गए। धूमधाम से (1627 में) शहजादा खुर्रम की ताजपोशी हुई। उन्हें 'शाहजहां' का खिताब भी अता किया गया। उसी के साथ ही बेगम अर्जुमंद 'मुमताज महल' कहलाने लगीं।

शाहजहां योग्य शासक थे। उन्होंने अपने पितामह अकबर के विशाल साम्राज्य को विस्तार दिया। 1627-32 के मध्य मुगल सल्तनत अपने चरम उत्कर्ष पर आ गई। शाहजहां और मुमताज महल के ये वर्ष भी बहुत हसीन रहे। सुख था, साम्राज्य था, एक लोकप्रिय बादशाह था, एक जनप्रिय मलिका थीं, जो सत्रह-अठारह वर्ष के विवाहित जीवन में ही तेरह संतानों की मां बन चुकी थीं। मुमताज फिर गर्भवती थीं। इतनी संतानों

शाहजहां

के होने के कारण वह बहुत दुर्बल हो चुकी थीं, अतः शाहजहां मुमताज को लेकर कुछ दिनों के लिए लाव-लश्कर के साथ बरहानपुर रवाना हो गए।

सुहानी शाम थी। मंथर गति से हवा बह रही थी, फुर्सत थी और दोनों प्रेमी थे। अतः शतरंज का दौर चलने लगा। उनकी चौदहवीं संतान जन्म लेने को थी। सहसा मुमताज पेट दर्द से तड़पने लगीं। दर्द था कि भयानक रूप से बढ़ता जा रहा था। शाही हकीम, वैद्य, बांदियां सब सेवा में थे। किंतु मुमताज स्वयं हताश हो उठी। उनकी काया जर्द पड़ती जा रही थी। उन्हें लगने लगा कि अब जीवन जाने को है। मौत आना ही चाहती है। शाहजहां ने सभी जोड़-तोड़ किए, तांत्रिक-मांत्रिक, वैद्य हकीम, रियाया को धन-वस्त्र बंटवाए गए कि किसी की दुआ शायद काम आ सके। दर्द था कि घटने का नाम नहीं। कहते हैं न जब मृत्यु की घड़ी आती है तो सारी वैद्यगिरी धरी रह जाती है, धरा रह जाता है सब ठाठ, शाही खजाने और शहंशाही... वही हुआ। अपने जीवन से निराश मुमताज ने आंसू भरी आंखों से शाहजहां की ओर देखा और धीमे स्वर में कहा—''जहांपनाह! अब वक्त आ गया है जुदाई का, भयानक दर्द सहकर अलग होने का।'' शाहजहां ने कातर नजरों से अपनी प्रिया को देखा, उनकी आंखों के आंसुओं की झड़ी लग गई। मुमताज ने कंपकंपाते हाथों से शाहजहां के आंसू पोंछे—''आलमपनाह! मुझसे जो गलतियां हुई हों या जाने-अनजाने कोई अपराध... मैं उन्हें स्वीकार करते हुए आपसे माफी मांगती हूं, माफ कर दें शहंशाह मुझे। मैं बहुत दुःख के साथ मृत्यु के संसार में प्रवेश कर रही हूं, अतः इस अंतिम समय में, मैं आपसे जो विनती करूं, आप उसे मान लें।''

यह सुनकर शहंशाह जार-जार रोते हुए मुमताज के पलंग के पास ही जमीन पर बैठ गए। उखड़ती सांसों के बावजूद मुमताज ने अपने दामन से उनके आंसू पोंछे, फिर दोनों ने एक-दूसरे को गले लगाया। रोते हुए ही शाहजहां बोले—''मुमताज! आप निसंकोच अपनी इच्छा का खुलासा करें, हम आपकी अंतिम इच्छा अवश्य पूरी करेंगे।''

''जहांपनाह! आप हमें वचन दें कि आप सल्तनत के लिए या अन्य किसी कारण से अब कोई निकाह नहीं करेंगे।''

''बेशक नहीं, मेरी मलिका! और भी कोई ख्वाहिश हो तो कहो मुमताज।''

''आलमपनाह! मैंने कल ख्वाब में एक अद्‌भुत महल देखा, महल के आगे था एक खूबसूरत बाग। इतना सुंदर कि आज तक न किसी ने देखा होगा, न सुना होगा। हो सके तो ऐसा ही कोई नायाब महल मेरी याद में बनवाएं। बहुत खूबसूरत-दिलफरेब, जैसा कोई कहीं इस धरती पर न हो।''

बादशाह ने हामी भरी। कुछ पल बेगम को निहारा और कक्ष के बाहर आकर आंसू पोंछने लगे। बस उन्हीं पलों में जोर से चीखकर

मुमताज सदा के लिए खामोश हो गई।

दुख की उस भयानक घड़ी को वह संसार का शाह आंसू भरी आंखों से देखता रहा। रोते-रोते ही शहंशाह ने अपनी प्यारी बेगम को विदा किया। मुमताज को बरहानपुर के जैनाबाद बाग में अस्थायी तौर पर दफना दिया गया।

दूसरे दिन बादशाह स्वयं ताप्ती नदी को पार करके मुमताज की कब्रगाह में गए। उनकी आत्मा की शांति के लिए फातिहा पढ़ा। कब्र के कोने में माथा टिका कर बोले—''जाए मुमताज महल, जन्नतबाद।''

आगरा लौट तो आए शाहजहां, किंतु अपनी खुशी, अपनी मुस्कुराहट, जैसे कब्र में ही कहीं दफन कर आए। कई दिन तक शाही ताम-झाम सब त्याग दिया। न दस्तरखान बिछे, न कोई मनोरंजन हुआ। न गए दौलत खाना-ए-खास, न दरबारे-आम, सादा लिबास में वे कमरे में कैद हो गए।

पूरे दो वर्ष राज्य भर में शोक मनाया गया। बादशाह ने जब मौन तोड़ा और राज-काज में कुछ शिरकत करने निकले, लोग हैरान रह गए। पैंतीस वर्ष की कुल अवस्था में ही बादशाह बूढ़े लगने लगे। वे मुमताज की जुदाई के गम में बुरी तरह बिखर से गए।

दिनचर्या में अब किले के झरोखे से दूर बहती यमुना की जलधाराओं को ताकना शुमार हो गया। सुबहो-शाम यह सिलसिला चलने लगा। उन्हें लगता दूर जमुना किनारे आकाश को घेरे बदलियों के बीच से कहीं मुमताज उन्हें निहार रही है, कह रही हो जैसे... मेरे ख्वाब की ताबीर न हुई साहिबे आलम। उसे हकीकत में बदलें। शाहजहां सोचते कैसे बनाएं एक शानदार शाहकार मलिका की याद में, जो मुमताज के अंतिम बयानात की मानिंद हो।

जमुना किनारे दूर-दूर तक फैली जमीन पर उनकी निगाहें टिक जातीं, यहीं-कहीं बने मुमताज की आरामगाह कि झरोखे से निहार सकूं जिसे रोज, अपने जीते जी... आखिर वह जमीन है किसकी, अगर उसे हासिल कर लूं तो आगे कुछ बात बने—सोचकर शाहजहां ने पहला कदम उठाया। फरमान जारी किया कि यमुना किनारे की वह जमीन, जिसकी भी हो उसे बादशाह के रूबरू किया जाए। जल्दी ही जमीन के मालिक का पता चल गया। वह जयपुर के राजा मानसिंह के पोते जयसिंह के नाम थी। जयसिंह हाजिर हुए... ''शहंशाह! आपको मजार के लिए वह जमीन नजर करता हूं। आपने हमसे कुछ चाहा, यह हमारा सौभाग्य है।''

बादशाह ने शुक्रिया अदा किया, ''राजाजी, आपने भूमिदान करके जो उदारता दिखाई, वह काबिले तारीफ है। आपकी इस उदारता के लिए हम भी आपकी नजर चार हवेलियां करते हैं। यह न भूमिदान का मोल है न बदले में दी गई अदायगी, है तो बस हिंदोस्तां के बादशाह की एक नन्हीं सी भेंट।''

राजा जयसिंह भला बादशाह द्वारा नजर की गई हवेलियां कैसे नजरअंदाज करते।

बादशाह को मनचाही जमीन मिल गई थी जहां वह एक शानदार आरामगाह बनाना चाहते थे अपनी मलिका के लिए। शाही खजाना था, मलिका की ख्वाहिश थी, बस न था तो ताबीर के लिए एक शानदार नमूना जो बादशाह के मन को भा सके। शाहजहां ने फिर फरमान जारी किए। देश-विदेश के फनकार नक्शानवीस आगरा निमंत्रित किए गए। कितने ही नक्शे सामने आए पर कोई बादशाह के दिल को छू न सका। बादशाह उदास हो गए।

बहुत दिनों के बाद एक नक्शानवीस दरबार में पहुंचा, वह नक्शा ही नहीं लकड़ी का बना सुंदर नमूना भी साथ लाया था। बादशाह के होठों पर मुस्कुराहट तैर गई... हां! यही तो है वह शाहकार। अगरचे मलिका उसका पूरा खुलासा न कर सकीं... यही होगा मलिका का ख्वाब... कुछ पल वे नमूने को निहारते रहे, फिर पूछा—''तुम्हारा नाम क्या है फनकार!''

''बादशाह सलामत! मैं हूं उस्ताद ऐसाअफांदी। तुर्की का रहने वाला हूं। शाहे आलम, आपको नमूना पसंद आया... शुक्रिया!''

''हां! अब हमें भी कुछ सुकून मिला है उस्ताद अफांदी। उम्मीद जगी है कि बन पाएगा एक अद्‌भुत सा शाहकार, मलिका की याद में, जो इस संसार की रानी थी। साकार करो उसका सपना। बनाओ एक दिलफरेब आरामगाह! शाही खजाने के दरवाजे खुले हैं उस्ताद।''

''खुदा आपकी मुराद पूरी करे शहंशाह।'' कोशिश बजाकर ऐसाअफांदी चला गया।

बादशाह ने फिर जमुना तट देखा। नमूने को देखा और बुदबुदाए—''ऐ मेरी जन्नतनशीं मलिका, अब होगी तुम्हारे ख्वाब की ताबीर पूरी! मेरी मुमताज, संसार उसे ताजमहल कहेगा।''

शीघ्र ही आगरा शहर के दक्षिणी छोर पर, जहां पानी कुछ उथला था, उथले पानी की एक स्वच्छ झील सी लहरा रही थी। वहां बादशाह ने स्वयं नींव का पत्थर रखा। शीघ्र ही जमीन तक बिखरे छिछले जल की खुदाई शुरू हो गई। बुनियाद को मिट्टी और पत्थरों से भर दिया गया। जब बुनियाद की ऊपरी ठोस सतह, शेष जमीन के समानांतर तैयार हो गई तो वहां एक विशाल चबूतरा बनाया गया। उसे नाम दिया गया 'चमेली फर्श'। इसी चबूतरे के मुख्य द्वार पर मकबरे की नींव रख दी गई।

फनकार, देश-विदेशों से निरंतर आगरा पहुंचते रहते। शाहजहां, स्वयं फनकारों के चुनाव में शामिल होते। ऐसाअफांदी तो प्रमुख नक्शानवीस थे ही, अनेक उस्तादों की भी अलग-अलग फनकारी व उस्तादी चाहिए थी। इसी चुनाव में, कश्मीर के प्रसिद्ध बागसाज रनमलजी को, बाग-बागीचों का काम सौंपा

गया। दिल्ली के मुख्य लक्कड़साज 'पीरा' को लकड़ी के दरवाजों, झरोखों का काम दिया गया। गुंबदसाजी के उस्ताद, इस्माईल खान 'रूबी' को गुंबदसाजी सौंपी गई, 'कादिर जमान खान' को मुख्य संगतराश चुना गया जिनकी देख-रेख में पत्थरों की कटान, मेहराब, महीन जालियों की कारसाजी सौंपी गई। भवन निर्माण कला के उस्ताद मुहम्मद हनीफ चुने गए और अमानत खान शिराजी को प्रमुख तुरगानवीस (पत्थरों पर कलात्मक लेखन) का काम सौंप दिया गया। आगरा में उस्ताद आते गए, उनके संरक्षण में कामगार जुटने लगे।

धीरे-धीरे जमुना तट पर उस्तादों, कामगारों की एक विशाल नगरी-सी बस गई। नगरी भी ऐसी कि लगभग बाईस हजार कामगार, मजदूर व उस्तादों का एक मानवीय दरिया सा तट पर लहराने लगा। ये उस्ताद समरकंद, बगदाद, कश्मीर, लाहौर, बुखारा, मुल्तान, दिल्ली, आगरा आदि शहरों व देशों से बुलाए गए। ताजमहल के निर्माण के लिए संग-ए-मरमर पत्थर भी दूर-दराज क्षेत्रों से मंगवाए गए। संग-ए-मरमर पत्थरों की कटान, मेहराब, जालियां इनमें बेशकीमती रत्न जड़े गए। सफेद शीशे सा चमकता संग-ए-मरमर मकराना की प्रसिद्ध खानों से जुटाया गया। लाल पत्थर फतेहपुरी सीकरी, तानपुर, पहारपुर आदि स्थानों से मंगाए गए। प्रवेश द्वार व अन्य द्वारों के लिए विशेष इमारती लकड़ी, साल, सागौन, शीशम, आबनूस, चंदन, साखू और अन्य चुनिंदा इमारती लकड़ियां मंगवाई गईं। उस्तादों और फनकारों के निर्देश के अनुसार लगभग बाईस हजार कारीगर, मुमताज की आरामगाह बनाने में जुटा दिए गए। फनकारों के लिए रहने के लिए उम्दा प्रबंध किए गए। कामगारों के लिए भी शाही खजाने से ऊंचे वेतन और शाही भोजन की व्यवस्था शुरू हो गई। शाहजहां, अक्सर स्वयं व्यवस्था पर नजर रखते। उन्हें मलिका का ख्वाब जमीन पर उतारना था जिसकी ताबीर के लिए सब कुछ चुनिंदा था।

मुख्य नमूने के अनुसार पूरी जमीन को तीन भागों में बांटा गया। पहला भाग मस्जिद से चमेली फर्श तक, अर्थात् मुख्य चबूतरे व विशाल गुंबदें थीं, दूसरे भाग में शाही बागान, नहरें, बाग, बाग में बना कमल ताल और फव्वारे रखे गए, तीसरे भाग में मुख्य प्रवेश द्वार, द्वार की बुर्जियां, बागों के दालान, खवासपुर, बावर्चीखाना, निवास कक्ष, सराय और बाजार का काम रखा गया।

धीरे-धीरे ताजमहल का अद्भुत रूपाकार उभरने लगा। दूर से ही चमकने लगी मकबरे की मुख्य गुंबद, संग-ए-मरमर के स्तंभ, संग-ए-मरमर की चारों कोनों पर खड़ी मीनारें, ऊंची मीनारों के कलश, बाग के मध्य कमल ताल, ताल के चारों ओर पानी की छटा बिखेरते चौबीस फव्वारे, चमेली फर्श उसके सामने के पांच अन्य फव्वारे, नहरें, हरे-भरे दालान, खुशनुमा बागीचे।

ताज के मुख्य गुंबद का अंदरूनी भाग लाल पत्थरों से सजा, अंदरूनी भागों में महीन पच्चीकारी होने लगी। विशाल गुंबद के ऊपर भी अमरूद के आकार का एक अन्य गुंबद

बना जो अमरूदी गुंबद कहलाने लगा। जिसके मध्य भाग में सोने से मढ़ा कलश आज भी दिपदिपाता है। मुख्य विशाल कक्ष में चारों खूंटों पर चौखटें (चार वर्गाकार) कक्ष बने, उनके किनारों पर भी चार अन्य कक्ष बनाए गए।

पूरे मकबरे के मध्य भाग में दो कब्रें एक जैसी चारों ओर महीन कारीगरी, सोने की जाली पर रत्नजटित कामगारी, झूमते हुए जड़ाऊ फानूस, फानूसों पर सोने और कांच की महीन कारीगरी, छत पर मानो कई सितारे जगमगा रहे हों। इस तल के नीचे भी इसी तरह की कब्रगाह बनवाई गई एक-दूसरे की अक्स जैसी। मजार के दरवाजों पर सोना-चांदी तथा बहुमूल्य रत्न जड़े, आईना महल का मनमोहक कांच का काम। ताज की दीवारों पर कुरान की पवित्र आयतें और सफेद स्तंभों पर पीले व काले संग-ए-मरमर की सजावट। मकबरे के पूर्वी छोर पर मेहमानखाना, बाग, नहर फव्वारे, पूर्वी-पश्चिमी छोर पर बने 'ऐवान' भवन के चार किनारों पर बने वर्गाकार कक्षों से जुड़ी हुई चार नशेमन तथा सात छतरियां।

मुख्य द्वार के चारों ओर बनी नगरी, जिसे 'मुमताजाबाद' कहा गया, आजकल यह 'ताजगंज' कहलाता है। खवासपुर, मेहमान कक्ष, सराय, बाजार, उफ! सब कुछ अद्‌भुत!

ताजमहल! जमुना तट पर बना ऐसा शाहकार, जैसे धरती और आसमान के बीच किसी चित्रकार ने एक विशाल फलक पर जड़ दी हो कोई कलाकृति। यमुना की जल लहरियों पर झिलमिलाता ताज का अक्स, चांदनी रातों में मुस्कुराता ताज, जैसे दरिया के किनारे उतरा हो कोई 'जन्नत महल', जिसे देखा था कई वर्षों तक बनते-संवरते स्वयं शाहजहां ने।

शाहजहां का यह सपना लगभग बीस वर्षों में साकार हुआ। देखकर शाहजहां बोले— ''मुमताज! अपने समय की विलगिस! उनका यह ताज जिसकी सुंदरता बयान नहीं की जा सकती है। वह जो सारे संसार की मलिका थी, यह है उसकी अंतिम आरामगाह।''

शाहजहां लगभग बीस वर्ष तक इस सपने को संवरते देख अपनी महबूबा की यादों के साए में रहे। उन्होंने अपनी वसीयत में लिखा—-मैं न रहूं तो मेरे वजूद को भी मुमताज महल के पहलू में दफन कर दिया जाए। उस शानदार जोड़ा मकबरे में जिसमें एक में मुमताज सो रही हैं, दूसरे में उनके आलमपनाह हों, कि वे एक-दूसरे से कभी जुदा न हों। शाहजहां की इस अंतिम ख्वाहिश को भी, उन्हें मलिका के पहलू में दफना कर पूरा किया गया।

सदियों से खड़े ताजमहल को देखकर कविवर रवींद्रनाथ टैगोर भी कहे बिना न रह सके—

''एक बिंदु नयनोनीर जल, कालेर कपोल तले, शुभ्रा-समुज्जवल।''

(ताजमहल समय के गाल पर ठहरा हुआ एक बूंद आंसू)।

सी-वन/590, पालम विहार,
गुड़गांव-122017 (हरियाणा)

तीसरा

मूल : प्रेमकुमार हरियब्बे
अनुवाद : डी. एन. श्रीनाथ

सुप्रसिद्ध लेखक-अनुवादक डी.एन. श्रीनाथ की कन्नड़ से हिंदी अनुवाद की साठ से अधिक पुस्तकें प्रकाशित। कई पुरस्कारों से सम्मानित।

एंबेसी पाइंट में यकायक जो लड़का सामने आया, वह अनिरुद्ध ही है। वह तो हजारों किलोमीटर दूर पर है, यहां कैसे प्रत्यक्ष हुआ? एक पल के लिए मन में खलबली मच गई। सुधाकर ने कुछ सेकेंड उसी को एकटक देखा। कई बार सड़क पर जाते वक्त ऐसा होता है कि सामने आने वाला अपरिचित आदमी उस पल के लिए ऐसा लगता है कि इसे कहीं देखा है, यही दशा उसकी भी हुई। उसके हंसमुख चेहरे को देखकर उसने भी अपने चेहरे पर हंसी की रेखा का आवाहन करने की कोशिश की और उसी की ओर ताकता रहा। मगर उस लड़के ने तुरंत अपनी नजर बदलकर कहीं और देखते हुए आगे चल पड़ा। इस अपरिचित लड़के ने एक पल के लिए ऐसा भाव पैदा किया था कि जैसे अपना बेटा अनिरुद्ध ही सामने आ गया है। कुछ कदम आगे चल कर, फिर मुड़ कर देखा। न जाने किस सोच में जा रहा था, तभी उस लड़के ने उस पल मात्र के लिए बेटे को, जिसे वह भूल गया था, लाकर उसके मन की भित्ति पर बैठा दिया था।

अनिरुद्ध को न्यूजर्सी गए पांच साल हो गए हैं।

''एक ही साल वहां काम करके लौट आऊंगा। तब तक आप किसी तरह अकेले मैनेज करें। घर बनाने की चिंता अभी नहीं करें। जब मैं आऊंगा, एक बने-बनाए घर को ही खरीद लूंगा...।'' बेटे को इस बात में यह विश्वास था कि पैसे के रहने से सब कुछ आसान हो जाता है। मगर बेटा अब लौट कर आने की बात ही नहीं कर रहा है। सप्ताह में एक बार जो ई-मेल भेजता है, उसमें भी आने की बात नहीं होती है। बदले में, ''जेन्नि आपको देखने की बात कहती है। एक बार तो यहां आइए। कब आएंगे? आप कहे तो एयर टिकट भिजवा दूंगा। एक महीने के लिए मौका निकाल कर आइए'' बस, यही बात होती थी। ई-मेल में पुनरावर्तन होता था।

ई-मेल में भी अपनापन नहीं था। यह उसकी गलती नहीं थी, गलती उसकी अंग्रेजी की थी। कई बार लगा है कि वह जब यहां था और जो बातें करता था, उसी को रोमन स्क्रिप्ट में लिख कर ई-मेल करता तो वह बात मन और सीने के समीप आती थी। मगर उसे कैसे बताया जाए? एक महीने का मौका निकाल लें, इसका मतलब क्या है? आप सिर्फ एक महीने तक यहां रह सकते हैं, यही इसका मतलब है? वह यह नहीं कह रहा कि यहीं आ जाइए। लगता है कि वह धीरे-धीरे उससे दूर होता जा रहा है। उसी के बारे में सोचता है तो आखिर में एक प्रकार की उदासीनता स्थायी रूप में रह जाती थी। अनिरुद्ध की शादी हो जाने के बाद वह उसके लिए बाहर का व्यक्ति हो गया, यह बात उसे बार-बार सता रही थी। बेटे और बहू के बीच में, मैं तो तीसरा ही हूं न, यही भावना दृढ़ हो जाती थी।

जब जानकी चल बसी थी, तब अनिरुद्ध अठारह साल का था। पहले घर में तीन थे, अब दो रह गए। मां को बेटे ने खो दिया है, इसी भाव में बेटे को सांत्वना देने की कोशिश कर ही रहा था लेकिन अनिरुद्ध ने ही पिता को सांत्वना दी। तब बेटे में सांत्वना देने की जो मनःस्थिति थी, अब नहीं है। अब उसकी उम्र अट्ठाईस है। शादी हुई है। बेटा कहता है कि उसकी पत्नी गर्भवती है। अगर अनिरुद्ध और उसकी बीवी यहीं रहते और जानकी का निधन न होता? तब जीवन कैसा होता, यह बात जब भी मन में आती तो एक प्रकार का सुख का अनुभव होता था। मगर यह सब कल्पना है, यह बात याद आते ही सच्चाई पर उतर पड़ता था। दूसरे ही पल मन में यह बात पक्की हो जाती थी कि वह अकेला है। दिन बीतते-बीतते अकेलापन और गहरा होता जा रहा है, यह बात आते ही दुःख और जोर से जकड़ लेता था।

इंग्लैंड मूल की बहू ने उससे एक-दो बार फोन पर कुछ ही बातें की थी, इसके अलावा वह अपरिचित ही थी। उसने क्या कहा, यह उसे ठीक से समझ में ही नहीं आया था। मेल से अनिरुद्ध ने जो फोटो भेजे थे, उससे पता चला कि वह सुशील है। यही तसल्ली की बात थी।

''अनिरुद्ध का उपनयन करना मत भूलिए'' मरने के एक दिन पहले शाम को जानकी ने तीन बार कहा था। मगर उसकी आखिरी इच्छा वह पूरी न कर सका। जब भी उपनयन की बात आती, अनिरुद्ध कहता, ''उपनयन

के लिए जल्दी क्या है? आगे किया जा सकता है। पहले भविष्य देखूं।'' और उसने पिता का मुंह बंद कर दिया था। शादी के वक्त उपनयन किया जा सकता है, उसने सोच लिया था। मगर मौका ही नहीं मिला। जब लगा कि उपनयन, शादी, बहू के बालों की मांग का संस्कार, पोते का नामकरण आदि करने का मौका ही नहीं है, तो एक प्रकार का विषाद घेर लेता।

शादी कर लेने की बात को भी अनिरुद्ध ने ई-मेल द्वारा ही सूचित किया था—''यहां पर मेरी गर्ल फ्रेंड है, जेन्नि नाम है उसका...। पिता इंग्लैंड से हैं, मां अमेरिकन है। कई सालों से यहीं रह रहे हैं। मैंने फैसला किया है कि जेन्नि से शादी कर लूं। शादी करूं तो इस देश की सिटिजनशिप मिल जाएगी। लगता है, इस शादी से मैं सुखी रहूंगा। शादी के वक्त आप यहां नहीं रहेंगे, यह दुःख है मुझे। कल सुबह यहां आर्य समाज के रीति-रिवाज के अनुसार शादी होगी। मेरे दोस्त आशुतोष ने सारी व्यवस्था की है। सुबह 9.37 का मुहूर्त है। आप वहीं से आशीर्वाद दें। अगली गर्मी में, मैं और जेन्नि इंडिया आएंगे।''

ई-मेल दो दिन पहले ही किया था।

उसने यह नहीं कहा कि एक अलग देश की, अलग धर्म की लड़की से शादी कर रहा हूं आप उसे एक बार देखें और अनुमति दें। मेरी शादी है, फैसला भी मेरा है—उसने ऐसा बर्ताव किया था।

अनिरुद्ध की शादी को दो साल बीत गए हैं। दो गर्मियां बीत गई हैं, तीसरी कदम रख रही है। वह भी नहीं है, उसकी अंग्रेज बीवी भी नहीं है। मगर अब एक एंगल में यह लड़का जो उसके सांचे जैसा है, यहां दिखाई पड़ा और उस पल को जिसे वह भूल गया था, याद दिलाकर उसके सीने का भार बढ़ा दिया है, ऐसा उसे लगा। वह संभल कर 'सिटी रेस्टुरा' में आकर बैठ गया, जो चर्च स्ट्रीट में था। वह लड़का जो पंद्रह-बीस मिनट ही दिखाई पड़ा था और चला भी गया था, सारा दिन याद आता ही रहा। वह यह सोच कर व्यग्र हुआ कि उसे रोक कर उसके बारे में अधिक जानकारी हासिल करनी चाहिए थी। कल इसी वक्त पर एंबेसी पाइंट पर जाने से क्या वह दिखाई देगा, सोच कर उसे कुछ तसल्ली हुई। वह इस शहर के लिए नया निकला तो? उसने सोचा तो मन भारी हुआ और आखिर खाली भी हो गया।

सुबह जब वह ऑफिस आया तो टेबल पर एक अंतर्देशीय पत्र पड़ा मिला। उस पत्र का रंग उड़ गया था। उसने उस पर लिखा हुआ पता देखा। उसे लगा कि अक्षर उसके जान-पहचान के हैं। इधर कई साल हुए, उसे किसी ने पत्र नहीं लिखा था। उसे भी पत्र लिखने की आदत छूट-सी गई है। कई सालों के बाद यह पत्र उसे आया है, इसमें कोई विशेषता होगी।

जब उसने पत्र उठा लिया तो लगा कि पत्र शायद उसका होगा, मन में धीरे से उत्तेजना उभर कर आई। पत्र पर जो पता था, उसे फिर से देखते हुए उस पर कोमलता से उंगलियां फेर दी...

''...नमस्कार''

इस शब्द से पत्र शुरू हुआ था। आगे पढ़ने से पहले उसने आखिरी पंक्ति के नीचे जो हस्ताक्षर था, देखा। उसका अनुमान सही था। उसकी ही चिट्ठी थी। तुरंत एक हल्का उद्वेग दिखाई पड़ा और छाती की धड़कन बढ़ गई।

पत्र में कुशल-मंगल पूछने के बारे में एक ही शब्द था—''कैसे हैं?'' आगे लिखा था, ''बहुत सालों के बाद लिख रही हूं... अगले महीने चेन्नई में एक सेमिनार है। हैदराबाद सवेरा होटल ग्रुप के अखिला गोविंदरेड्डी ने जो पीआरओ हैं, फोन किया था। उन्होंने निमंत्रण दिया है। बेंगलोर से चेन्नई आने-जाने के लिए एयर टिकट भेजने की बात कही है। सेमिनार किस विषय पर है, यह बात कहूं तो आपको शायद हंसी आएगी।

सवेरा ग्रुप के मैनेजमेंट ने फैसला किया था कि दक्षिण भारत के परंपरागत नाश्ता-रसोई की चीजों से नई पीढ़ी के ग्राहकों का परिचय करवाया जाए। इससे जुड़ा सेमिनार है। बाद में एक छोटा-सा डेमो भी है। कहा गया है कि वहां कोई नमकीन या मिठाई तैयार करके दिखाएं। मैंने कोई सात-आठ साल पहले एक पत्रिका में एक लेख लिखा था जो 'आपका स्वाद' विभाग में छपा था। कहते हैं कि उस पत्रिका वालों ने मेरा नाम सजेस्ट किया है। दो बार फोन पर आग्रह किया है कि आपको आना ही चाहिए। इसलिए जाने के लिए सोच लिया है।

बैंगलोर आने पर आपसे मिलना है। बहुत साल हो गए, बैंगलोर आ नहीं सकी। मैं तो सब कुछ भूल गई हूं। मुझे एयरपोर्ट से जाने के लिए आपकी मदद चाहिए। उससे भी ज्यादा, मुझे आपसे बातें करनी है। सेमिनार से भी बढ़कर मुझे आपसे बातें करनी है।

''उनके चले जाने के बाद मैं एक प्रकार की विचित्र मानसिक-अवस्था से गुजर रही हूं... बेटा आस्ट्रेलिया में है। मुझे भूल ही गया है। बाग उजड़ रहा है। हाथियों का उत्पात चलता रहता है। पड़ोसी हमारे बगीचे का हिस्सा हड़प रहा है। इन सबसे निपटने की शक्ति मुझमें नहीं है। बगीचा बेचने के बारे में सोच रही हूं। बेचने के बाद आगे क्या करूं, समझ में नहीं आ रहा है। अकेली होकर जीना मुश्किल है, यह परिस्थिति मेरे दुश्मन को भी न मिले।''

इस प्रकार उसने व्यक्तिगत कठिनाइयों का संक्षेप में जिक्र किया था। साथ में पत्र के आखिर में अपना फोन नंबर देकर यह भी लिखा था कि अब घर में फोन है, हो सके तो बात करें।

पत्र पढ़ने के बाद वह कुछ देर खामोश बैठा रहा। एक घंटा बीत जाने के बाद मन सहज-अवस्था में आया। फिर उसने चैन की सांस ली...।

वह उसकी सहेली थी। सिर्फ सहेली ही नहीं, कॉलेज में जब नए-नए भर्ती हुए थे, यौवन के आकर्षण से दोनों ने एक-दूसरे को पसंद भी किया था। मगर प्यार का सुखांत नहीं हुआ। उसके पिता ने उसकी शादी कर दी और दोनों विपरीत दिशा में चल सके, इस पर पूरा ध्यान भी दिया।

उसके बाद उनकी जिंदगी दो दिशाओं में चलती गई। दोनों ने अलग-अलग दिशा में कदम रखा। दोनों उस दिशा में ही चलते गए और नए लोगों से परिचय करते-करते पुराने लोगों को नेपथ्य में ढकेल दिया। मगर दोनों पुरानी मधुर यादें भूल न सके। मन की दीवार में उन क्षणों को कैद कर लिया जिन्हें उन्होंने एक साथ बिताया था। उसने अपनी बीवी से बातें करते समय अपने पुराने साथियों को याद करने के बहाने सिर्फ एक बार उसका नाम बताया था। उसने भी सोचा कि यह एक सपना है और मन के कोने में उसका चित्र बिना मिटाए रखा था। अब दोनों दो विपरीत दिशा में खड़े हैं। बीच में एक बार एक विचित्र परिस्थिति में दोनों की भेंट हुई और दोनों ने अपना-अपना अस्तित्व जताकर अपने-अपने पते की अदला-बदली की थी।

यह उस समय की बात है जब वह जानकी को अस्पताल लेकर आया था। उसी वक्त उसका पति जो शिकार खेलने गया था और जंगली सूअर से घायल उसी अस्पताल में भर्ती हुआ था। दोनों दुःख की हालत में आमने-सामने हुए थे। अब उसकी चिट्ठी आई है। दोनों अब अकेले हैं। दोनों के बेटे दूर देश में हैं। उनकी अपनी ही जिंदगी है।

हाईस्कूल की पढ़ाई के बाद जब वह पीयूसी कॉलेज में भर्ती हुआ, पहले दिन ही उसे महसूस हुआ था कि बिना अंग्रेजी सीखे यहां जीना मुश्किल है। उसने एक इंग्लिश स्पीकिंग कोर्स में दाखिला लिया, जिसे रेमन डिसोजा नामक मंगलोर वाले अध्यापक चला रहे थे। उसने उसे पहले वहीं देखा था। वह लंबी नाक वाली और शहद-रंग की आंखों वाली लड़की थी। पहली नजर में ही भा गई थी। जब उसे पता चला कि वह अमीर है, तभी उसे याद आया था कि वह गरीब है। दूसरे ही दिन कक्षा में जब एक लड़की ने जोर से उसका नाम पुकारा, तब उसे बड़ी निराशा हुई थी। मन में आया था कि लड़की अपनी ही जाति की होती तो कितना अच्छा था। वह आखिरी बेंच के छोर पर बैठता था, वह कभी-कभी मुड़कर उसकी ओर देखा करती थी, इतना ही परिचय आगे के दिनों में और बढ़ गया। मैंने भी उसे बार-बार देखा। वह सिर्फ जाति से ही नहीं उसका धर्म भी अलग है, इस सच्चाई को

पचाने में कई दिन लगे। उसने मन में सोच लिया था कि सिर्फ दोस्ती को बनाए रखने में कोई खासियत नहीं है, मगर दिल ने उसकी यह बात नहीं सुनी। दोनों ने पसंद किया। सपना देखा कि शादी करके एक साथ जिएंगे। फैसला किया कि पढ़ाई पूरा करने के बाद जब नौकरी लग जाएगी तभी शादी करेंगे। उनकी पुरानी प्रेम कथा बस यही है।

वह डिग्री पढ़ने के लिए मंगलोर चला गया। और उसने पीयूसी पूरा करने में दो साल लिए। एक दिन जब वह दूसरे साल की डिग्री में था, उसकी शादी का निमंत्रण पत्र आया। साथ में एक पत्र भी था–

''पिताजी ने मेरी शादी तय कर दी है। लड़का हमारे रिश्तेदार का है। वे हमसे भी ज्यादा अमीर हैं। कल रात मैंने पिताजी के सामने हमारी सारी बातें कह डाली और कहा कि मुझे यह शादी नहीं करनी है। मगर उन्होंने मेरी बात ही नहीं सुनी। कह दिया कि हमारा धर्म उसे नहीं स्वीकारेगा। अगर तुम मेरी बात की उपेक्षा कर उससे शादी कर लोगी तो समझ लो कि मैं तेरे लिए मर गया... तुम मेरा शव पार कर उससे शादी कर सकती हो...। मैं पिताजी की बात का उल्लंघन नहीं कर पा रही हूं... क्या करूं... मुझे क्षमा कर दो...।''

उसने जिद नहीं कि वह मुझसे ही शादी करेगी। अन्य जाति और धर्म के लड़के को गले बांधकर जिंदगी भर तकलीफ उठाने से बेहतर है कि अपनी ही बिरादरी के लड़के से शादी कर रोल्स रायस में सफर करना आसान है, क्या उसने इस प्रकार का फैसला कर लिया? या वह सचमुच असहाय थी? उसने सोचा।

ऐसी ही परेशानियों ने उसे कई दिन सताया। अगर वह छोड़कर आती... तब वह जिस हालत में था, क्या उसमें शादी करना मुमकिन था? उसने अपने आप से सवाल पूछे थे। वह भी असहाय था। क्या पढ़ते समय शादी मुमकिन थी? क्या घर में मां और पिता मान लेते थे? या मैं जानबूझकर पीछे हटा था?

घर छोड़कर आ जाओ। शादी करके सबका सामना करेंगे, यह कहने का साहस क्यों नहीं हुआ? ये सवाल कई दिनों तक उसे सताए। मगर सोचा कि उसके लिए भविष्य की

बाजी लगाना बेवकूफी है, यहां व्यावहारिक मनःस्थिति ने ही जीत हासिल की। उसकी शादी हुई, जो अपने लिए एक बड़ी रिलीफ की बात हुई, इस भावना से कुछ दिन बिताए। मगर यह मनःस्थिति ज्यादा दिन तक ठहर नहीं सकी।

उसकी शादी होने पर तत्काल उसे यह भावना सताने लगी थी, कि अब मैं उसके लिए 'बाहर वाला' हूं। क्या उसके मन में मेरे लिए जगह होगी, यह सवाल पूछ कर जवाब ढूंढने की कोशिश की। मगर उससे खलबली मच गई। दिन भर ऐसे ही विचार आने लगे। वह दूसरे की बीवी बनी, इसके लिए मैं ही जिम्मेदार हूं, इस अपराध भावना से छटपटाने लगा। दूसरे की बीवी के बारे में सोचना अनैतिक है, यह भावना अपने में जाग्रत कर लेने का प्रयत्न किया मगर यह भावना जितनी बढ़ जाती वह और ज्यादा मन में भर जाती थी। उसके साथ बिताए पल, बातें, सपने-इनसे वह बाहर आ नहीं सका। दूसरे साल की डिग्री में सब विषयों में फेल हो गया। उसके मन में यह भावना स्थायी रूप से घर कर गई कि उसने भविष्य बनाने के व्यावहारिक भावना की वजह से अपने प्यार की बलि दे दी।

पढ़ने में मन नहीं लगता था। कॉलेज छोड़ कर गांव चला गया। एक साल तक वहीं रहा, खेत की देखभाल की। पुरानी बातों को भूलने लगा। मन सहजावस्था में आया। मगर फिर भी वह याद आती थी। उन्हीं दिनों उसके पिताजी का देहांत हो गया। उसने सोचा कि मेरा फैसला सही है। फिर वह कालेज में भर्ती हुआ। जिद से पढ़ने लगा। एम.ए. पास किया और एक बड़ी कंपनी में काम करने लगा। दूसरे ही साल रिश्तेदार की लड़की जानकी से शादी कर ली। सब कुछ ठीक हुआ। ऐसा लगा कि चांदनी के प्रकाश में बैठ कर मधु से बनाई गई रोटी को दूध में भिगोकर खा रहा है। शादी के दूसरे साल ही अनिरुद्ध पैदा हुआ। दूसरे ही साल पता चला कि जानकी को एक अनोखी बीमारी है। डॉक्टरों ने कहा कि दस लाख लोगों में एक को यह बीमारी होती है। जानकी का परीक्षण विशेषज्ञ डॉक्टरों से करवाया गया। उन्होंने आश्वासन दिया कि हम उसका इलाज करेंगे, उसे चंगा करेंगे। इस प्रकार उन्होंने उसमें आशा पैदा कर दी।

खुले मैदान में जलाया हुआ दिया बुझ न जाए—अगले पंद्रह साल उसने अपनी बीवी की सेवा इस प्रकार की। अनोखी बीमारी वाली बीवी की बच्चे की तरह देखभाल की। बेटे को भी बढ़ा किया। कमाई के बड़े हिस्से को उसकी चिकित्सा में खर्च किया। उसने शादी के बाद पहले तीन साल तक बीवी के साथ जिंदगी बिताई। बाद में फिर अकेला हो गया। अब वह यादों का गट्ठर है।

जिस दिन जानकी को अस्पताल लाया गया था, उसी दिन उसे वहां एक विचित्र हालात में देखा। वह काख में बच्चे को बांधकर अपने रिश्तेदारों के साथ स्पेशल वार्ड के सामने खड़ी थी। उसकी असहाय अवस्था देखकर वह कांप गया। वह भी असहाय था। दोनों एक विचित्र संदर्भ में समय के शिशु बन गए थे। उसके पति को अस्पताल में भर्ती हुए जब आठ दिन हो गए, सुबह के वक्त उसने इस दुनिया से विदा ले ली। ''तुम्हारा पति जिएगा, घबराओ मत, सातों दिन वह अस्पताल गया और उसे इस प्रकार से धीरज बंधाकर आया। उसने भी कहा, ''तुम्हारी बीवी भी ठीक हो जाएगी। उसके लिए मैं प्रार्थना करूंगी।''

लेकिन वह पति के शव के साथ चली गई थी। तीन महीने के बाद उसने एक चिट्ठी लिखी थी। दुःख व्यक्त करते हुए जो पत्र लिखा है, उसके जवाब में जो पत्र लिखा जाता है, वैसा ही पत्र लिखा। वह भी तीन पंक्तियों का पत्र... अब फिर पत्र लिखा है।

पत्र को कई बार पढ़ा। उसने इस पत्र की प्रतीक्षा नहीं की थी। उसने सोचा था, कि सब कुछ खत्म हो गया। मगर फिर कहीं से अंकुरित होने वाले रिश्तों के समान... कम से कम तीस वर्षों से आंखों से जो ओझल हो गई थी, उसने फिर पत्र लिखा था और पुरानी बातों की याद दिलाई थी।

वह असहाय स्थिति में है। मन की भावनाओं को अपनों से कह देने से मन हल्का हो जाता है, वह शायद ऐसी स्थिति में आई है। अकेले में जीना कितना मुश्किल है, यह वह भी जानता था। उसके लिए समाधान या परिहार नहीं है। बाग को बेचने के बाद आगे क्या किया जाए? उसके इस सवाल का जवाब देने वाला है उसका बेटा। उसके लिए मेरे पास जवाब नहीं है। उससे कहना है कि आस्ट्रेलिया जाकर बेटे के साथ रह जाओ। उसने सोचा, जब वह यहां आएगी, ऐसा ही कहना है। दूसरे ही पल उसे लगने लगा कि क्या यह उसे मालूम नहीं है। सेमिनार के लिए चेन्नई जाने की अपेक्षा आपसे बातें करना महत्व की बात है, इसका मतलब क्या है? असंभव लगने वाली कई संभव बातें सामने आकर अदृश्य हो गईं।

अस्पताल में जब देखा, तभी वह बड़ी औरत हो गई थी। आंखों में जो चमक थी, गायब हो गई थी। शरीर मोटेपन में कदम रख रहा था। यौवन में खूबसूरत थी बस, अब इतनी सी झांकी रह गई थी। न जाने अब कैसी है! सांत्वना देने वाला बेटा हजारों किलोमीटर दूरी पर है। क्या वह बेटे के पास जाने के लिए छटपटा रही है? शायद उसे पैसे की कमी नहीं होगी। पति के जाने पर दिन कैसे काटे? बेटे को कैसे बढ़ा किया? पति के मरने पर उसने जो पत्र लिखा था, जवाब देकर सांत्वना देनी चाहिए थी। मगर यह सोच कर पीछे हटा था कि सांत्वना की बातें लिखने के पीछे उसका स्वार्थ है, ऐसा वह सोचेगी, यह संभावना भी है। मगर अब उसने खुद अपनी समस्या का जिक्र कर सलाह मांगी है। मेरी समस्याओं के समाधान सुलझाने का अधिकार तुम्हें है, यह सोचकर उसने पत्र लिखा होगा? उसकी समस्याओं के लिए स्पंदन करना मेरा कर्तव्य

नहीं है? वह सोचने लगा। कभी संबद्ध रूप से, कभी असंबद्ध रूप से कई बातें दिमाग में दौड़ने लगीं...।

जब से पत्र पढ़ा उसका चैन छिन गया। अनिरुद्ध मन से गायब हो गया। अब उसकी जगह वह आई थी। उसने भरसक कोशिश की, मगर विचारो का दमन नहीं कर सका। फिर उसके साथ... इस प्रकार जो संभावनाएं नहीं हैं, उनके बारे में सोचने लगा। मगर किसी के लिए भी स्पष्ट आकार नहीं मिल पाया। उसे लगने लगा कि मैं यों ही सोचते जाऊंगा तो मन का चैन खो जाएगा।

अगले महीने जब वह यहां आएगी, आमने-सामने उसकी बातें सुनने से पहले फोन पर बात करूं, उसने सोचा। वह इस निश्चय पर पहुंचा कि सामने बैठ कर जो बातें की जाती हैं, तब कुछ असंबद्ध रूप से कहने के बजाय फोन पर बातें करना ही उचित है। मगर जब फोन के पास गया तो मन पीछे हट गया। रिसीवर उसी ने उठा लिया तो ठीक है। घर में जाने और कौन है? वे अगर यह पूछे कि आप कौन है, तो क्या जवाब दूं...? दिनभर इसी चिंता में डूबा रहा। पहले पहल जब उसका नया परिचय हुआ था, उसके बारे में उसने जो-जो बातें सोची थी, अब उनकी कल्पना करने लगा। मगर कुछ भी स्पष्ट नहीं हो रहा है। बिना नींद के करवटें बदलता और सुबह के वक्त नींद की गोद में चला जाता था, तभी उसने एक सपना देखा– ...उसके साथ वह फिर से घर बसा रहा है... बिना शादी किए एक साथ रहने वाले आधुनिक लोगों के जैसे... कुछ ही पलों का छोटे क्षणों का सपना... अनिरुद्ध और जेन्नि घर आए हैं। अनिरुद्ध ने कहा, ''पिताजी, आपने बड़ा अच्छा काम किया है... इस उम्र में अकेले रहने के बजाय... यही ठीक है... मुझे तो बड़ी खुशी है।''

जो देखा था, वह सपना था यह सच्चाई समझ में आई। यह भावना नहीं रह पाई कि हमारे रिश्ते के लिए अनिरुद्ध ने स्वीकृति दी। ऐसी एक संभावना का उसने जाग्रतावस्था में भी अनुमान लगाया था। मगर उसके लिए एक स्पष्ट आकार नहीं मिल सका था...।

दूसरे दिन जब वह ऑफिस आया, उसके टेबल पर एक पत्र था। यह उसी का पत्र है, उसे लगा। पत्र सचमुच उसी का था। सहजता और धीरे से पत्र खोला–

''इस पत्र को एयरपोर्ट से लिख रही हूं। पिछले सप्ताह बेटा आस्ट्रेलिया से आया। मैंने बाग बेच दिया। अब बेटे के साथ आस्ट्रेलिया जा रही हूं। फिर इंडिया आऊंगी या नहीं, पता नहीं। आपके साथ बातें करने की आशा थी, यह आशा ऐसे ही रह गई। ''मुझे जन्म-जन्मांतरों में विश्वास नहीं है... इस जन्म के लिए बस इतना ही काफी है। मुझे क्षमा करें...।''

नवनीत, सेकंड क्रास, अन्नाजी राव लेआउट,
फर्स्ट स्टेज, विनोबा नगर,
शिमोगा-577204 (कर्नाटक)

लगा हुआ दरबार

प्रा. प्रेमचंद सोनवाने

प्राध्यापक के पद से सेवानिवृत्त प्रेमचंद सोनवाने की अर्थशास्त्र के ऊपर पुस्तकें तथा एक उपन्यास प्रकाशित हो चुका है। वर्तमान में स्वतंत्र लेखन।

शारदीय नवरात्र में, लगा हुआ दरबार
मां का मंडप सज रहा, झलके तोरण द्वार
माता तब दरबार में, दर्शन को जब आए
करो कामना पूर्ण तुम, जनम सफल हो जाए
सकल शक्ति माता तुझे, भजते दिन औ' रात
हाथ जोड़ विनती करें, सुधरे बिगड़ी बात
शैलपुत्री माता सती, शिव के बैठी वाम
तेरे दर पर हम खड़े, पूर्ण करो सब काम
कड़ी तपस्या से किया, शिव का पूजन मात
ब्रह्मचारिणी नाम है, सारे जग को ज्ञात
मस्तक पर है चंद्रमा, चंद्रघंटा है नाम
दर्शन को हम आ गए, तेरे मंगल धाम
सृजन किया संसार का, कुष्मांडा है नाम
बालक सब मिलकर करें, माता तुझे प्रणाम
कार्तिकेय की मात तू, जननी जगदाधार
स्कंदमाता नाम है, सबका कर उद्धार
कात्यायन की पुत्री मां, कर जग का कल्याण
जननी तुझसे क्या कहें, हम बालक नादान
करती संकट नाश तू, पार्वती का रूप
कालरात्री भी नाम है, दुर्गा रूप-स्वरूप
गौर वर्ण के कारणे, मां का गौरी नाम
नत मस्तक पूजन करें, आकर तेरे धाम
भक्तिपूर्ण पूजन करो, सिद्धि मिले तत्काल
सिद्धिदात्री तब नाम मां, जग में रहे सुकाल।

**गुरुनानक वार्ड, गणेश नगर,
गोंदिया-441601 (महाराष्ट्र)**

धूप खिलने वाली है

डॉ. ब्रह्मजीत गौतम

कई पुरस्कारों से सम्मानित डॉ. ब्रह्मजीत गौतम की आठ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। वर्तमान में स्वतंत्र लेखन में सक्रिय।

आपकी बात ही निराली है
आज होली तो कल दिवाली है
मुंह से चर्चा सदा उसूलों की
हाथ में हर समय दुनाली है
बात खेलों की हो कि फौजों की
हो रही हर जगह दलाली है
जीभ अड़ती है सत्य कहने में
प्रेम से झूठ की जुगाली है
स्वप्न कैसे सुनहरे वे देखें
भूख से पेट जिनका खाली है
बाग पूरा भरा है कांटों से
फूलों की एक भी न डाली है
'जीत' चिंता न कर अंधेरों की
सुबह की धूप खिलने वाली है।

दिलों में फासले बढ़ते रहे

चांद-सूरज की तरह बढ़ते रहे
जिंदगी की मूर्ति हम गढ़ते रहे
प्यार के मानी समझ पाए नहीं
बे-सबब ही पोथियां पढ़ते रहे
मर गया वो मुफलिसी में चित्रकार
चित्र जिसके स्वर्ण से मढ़ते रहे
भाइयों में यूं तो थीं नजदीकियां
पर दिलों में फासले बढ़ते रहे
कर हमें उपयोग सीढ़ी की तरह
वे प्रगति की मंजिलें चढ़ते रहे
रौंद डाला मालियों ने ही चमन
आंधियों पर तुहमतें मढ़ते रहे
पश्चिमी तहजीब को क्या दोष दें
'जीत' हम खुद उस तरफ बढ़ते रहे।

बच गया ईमान

वक्त के तूफान में डूबे सभी अरमान
देखते ही रह गए हम डूबता जलयान
लोग पाला छोड़कर कूदे तुरंत उस ओर
हम उसूलों से सदा चिपके रहे नादान
चढ़ गए वे शीर्ष पर, चलकर हवा के साथ
जूझते उससे रहे हम किंतु सीना तान
सीख दी हमको बुजुर्गों ने हजारों बार
धार के विपरीत चलना है नहीं आसान
यों, हमें भी थे मिले अवसर प्रगति के खूब
किंतु अपनी मान्यताएं बन गईं व्यवधान
हम भी लेते जी-हुजूरी की कला जो सीख
चढ़ चुके होते सफलता के कई सोपान
है नहीं हमको जरा भी रंज या अफसोस
'जीत' क्या कम है कि अपना बच गया ईमान।

**युक्का-206, पैरामाउंट सिंफनी क्रॉसिंग रिपब्लिक,
गाजियाबाद-201016 (उत्तरप्रदेश)**

जानवर

हरीलाल 'मिलन'

कवि कथाकार हरीलाल 'मिलन' की कईं पुस्तकें प्रकाशित। कई पुरस्कारों से सम्मानित। सरकारी सेवा में कार्यरत।

उसने
बकरे की गर्दन पर
छुरी चलाई
बकरा मिमियाया
छटपटाया
शांत हो गया
एक जानवर
इनसान में खो गया।

बाल श्रमिक

होटल में
रेस्टोरेंट में
विवशता के गर्म तवे पर
रोटी-सी सिंक रही है
एक जिंदगी
खुलेआम बिक रही है।

भूकंपों!

भूकंपों!
कहर मत ढाओ
बस्ती को
कब्रिस्तान मत बनाओ
धरती पर
प्यार की नदियां बहने दो
उम्र भर
इनसान को जिंदा रहने दो।

भीतर का इनसान

इनसान के
भीतर का इनसान
रो रहा है
क्योंकि बाहर का इनसान
लाशें ढो रहा है।

सांप

उस दिन आग में फंसा सांप
गिड़गिड़ाया
मैंने उसे बचाया
सांप था फुंफकार कर बोला
'डसूंगा तुम्हें'
मैंने कहा
रहम कर
ईश्वर से डर
सांप फिर बोला—
'रे मनुष्य
अब कौन ईश्वर से डरता है
आजकल
मनुष्य भी
ऐसा ही करता है।

मृत्यु

मैं मृत्यु हूं
तुम्हारे महल में
कब से खड़ी हूं
चिकित्सकों ने
घेर रखा है तुम्हें
शुभकामना, वरदान, आशीर्वाद
सब कुछ तो है तुम्हारे पास
यहां
भीड़ बहुत है
मेरा दम घुट रहा है
तुम्हारे पास नहीं आ पा रही हूं
किसी झोंपड़ी में जा रही हूं।

**300-ए/2, (प्लॉट-16बी), दुर्गावती सदन,
हनुमंत नगर, नौबस्ता,
कानपुर-208021 (उत्तरप्रदेश)**

जलने लगे अलाव

चक्रधर शुक्ल

दोहा, गजल, व्यंग्य, बालगीत विधा में लेखन करने वाले चक्रधर शुक्ल की एक पुस्तक प्रकाशित हो चुकी है। फिलहाल स्वतंत्र लेखन।

कोहरे ने अनशन किया, जलने लगे अलाव
सूरज से नाराज हो, चंदा लड़ा चुनाव
पाला में तुलसी गई, अरहर, मटरा-फूल
बर्फीली इस ठंड में, काटा गया बबूल
पंख फुलाकर पेड़ में, बैठे हैं चुपचाप
पक्षी व्याकुल ठंड में, भजन करें दिन-रात
मौसम में पक्षी करें, अपने को अनुकूल
छाया दिन में कोहरा, गए रास्ता भूल
बम की बातें छोड़कर, लेकर चलो वसूल
नया साल संकल्प का, उपजाओ वन-फूल
ऐसा आया जलजला, कांप गए सब लोग
धरती डोली रात-दिन, भूकंपी संयोग
पानी का दोहन करें, काटे पेड़ हजार
मानव अब भी चेत जा, नश्वर है संसार
कहीं-कहीं बादल फटा, कहीं तरसते लोग
कहीं बाढ़, सूखा कहीं, ये भी इक संयोग
बादल सूरज को ढके, दिखा रहे हैं शान
बरस गए तो मिट गया, उपजा हिय अभिमान।।

बेटी एक : रूप अनेक

(1)

बेटी
घर में
आशा की किरण बनी
नवरात्रि में
देवी की शरण में
जगमग ज्योति जली!

(2)

बेटी
मां-बाप का
बुढ़ापे में
सहारा बनी
जीवन की बगिया खिली!

(3)

बेटी
नीलगगन में
उड़ान भर रही,
अपने पैरों–
खड़ी हो रही!

(4)

बेटी
दोनों परिवारों का संबल
दोनों को संभाले
कल के लिए
कोई काम नहीं टाले!

(5)

बेटी,
मां, पत्नी, भाभी, बहन का
रोल ही नहीं निभाती
जिंदगी की नाट्यशाला को
हकीकत बनाती!

**एल.आई.जी.-01, सिंगल स्टोरी,
बर्रा-06, कानपुर-27 (उत्तरप्रदेश)**

हम भरोसे के तलबगार रहे

अनिरुद्ध सिन्हा

कई पुरस्कारों से सम्मानित अनिरुद्ध सिन्हा की अब तक ग्यारह पुस्तकें प्रकाशित। वर्तमान में सरकारी सेवा में कार्यरत।

हम तो हर बार भरोसे के तलबगार रहे
एक तुम हो कि हवाओं में गिरफ्तार रहे
सूर्ख फूलों की तरह जिस्म जहां बिकते हों
कौन कहता है कि भारत में वो बाजार रहे
हम अभी से ही यही सोच लें तो बेहतर है
धर्म या जात सियासत का न औजार रहे
सरहदी कौम को जाकर ये कोई कह आए
गम सही दिल में मगर हाथ में तलवार रहे
भीग जाएगा बदन और उड़ेगी खुशबू
खिड़कियां खोल न बारिश की जहां धार रहे।

टूटते रिश्तों को मेरे नाम कर दे

बहुत मशहूर हो जाएगा इतना काम कर दे
बिखरते टूटते रिश्तों को मेरे नाम कर दे
शिकायत ही सही लेकिन मुझे मंजूर है ये
वो मेरे रू-ब-रू रहकर सुबह से शाम कर दे
खुशी तो तब है अपने पांव की मिट्टी से इक दिन
गमों की धूप में इस कैद घर को धाम कर दे
ये माना आंधियों ने की खता कल साथ उसके
जरूरी तो नहीं मौसम को ही बदनाम कर दे
न इतना रो कि तेरे आंसुओं को हंसते-हंसते
सभाओं में कहीं जाकर न वो नीलाम कर दे।

नाम तेरा लिख दिया है

कौन जाने क्या मिलेगा इस नए उन्वान पर
नाम तेरा लिख दिया है कांच के गुलदान पर
रात की गहराइयों में उसने जब आवाज दी
ख्वाब के तारे उतर के आ गए दालान पर
कल किया था ख्वाब को नीलाम अपनी बात से
आज उसकी आ गई है बात अपनी जान पर
राहजन हर मोड़ पर छुप कर चले हैं साथ-साथ
इस सफर में क्या भरोसा हम करें अंजान पर
वो जहां जाएगा उसके साथ जाएगी गजल
लम्स की खुशबू अभी तक है मेरे दीवान पर।

गुलजार पोखर, मुंगेर-811201 (बिहार)

सदियों से वह भाग रही है

डॉ. राजीव गुप्ता

विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में विविध विषयों पर स्वतंत्र लेखन के साथ ही डॉ. राजीव गुप्ता चिकित्सक के रूप में कार्यरत।

सदियों से वह भाग रही है
औरत भी अब जाग रही है

ऊपर से वह शांत-सौम्य है
अंदर से वह आग रही है

हर अवसर पर सजग खड़ी है
गोली तक तो दाग रही है

उत्पीड़ित बेबस थी अब तक
हक अपना अब मांग रही है

हर पल बुनती रहती खुशियां
वासंतिक अनुराग रही है

तन-मन से भावुक है नारी
गीत, गजल और फाग रही है

अनुकृति है वह पार्वती की
प्रेम-तपस्या-त्याग रही है।

धोखा देना इनकी फितरत नहीं

परिंदा अपने घर से जब चला होगा
मन में उसके कितना हौसला होगा

वह हिंदू है या है मुसलमान बोलो
उसके मजहब का क्या फैसला होगा

एक बुलबुल ने गुलशन में आते ही कहा
मेरी खातिर ही यह फूल खिला होगा

कुछ तो सोचो इन्हें मिटाने से पहले
कितनी मुश्किल से यह मासूम पला होगा

दाने बिखरा कर आंगन में जरा देखो
तुझे सकून तो इनका भी भला होगा

धोखा देना इनकी फितरत में नहीं है
जाहिल इंसान ने सौ बार छला होगा

नीड़ मत उजाड़ो घर बसाने दो इन्हें
इनकी मुहब्बत का मासूम सिला होगा।

5/11, बाग कूंचा फर्रुखाबाद-209625 (उत्तरप्रदेश)

मूक पेड़ों की टहनियां

वैशाली एक्सप्रेस

रणविजय राव

विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कहानी, कविता, समीक्षा और साक्षात्कार प्रकाशित होने के साथ ही रणविजय राव का एक कविता संग्रह भी प्रकाशित।

ऊबे हुए दिन
और ठहरी हुई रातों में
बतियाती हैं
मूक पेड़ों की टहनियां

विकास का जाला
बुनता आदमी
लिख रहा है
चतुर्दिक ध्वंस की इबारत

इसी तरह यदि चलता रहा
विकास का क्रम
और दिए जाते रहे पेड़ों को
मानवता के घाव
तो दुर्लभ ही हो जाएगा
टहनियों-सी कांधों पर
फुदकती गिलहरियों को देखना
कठफोड़वा की ठक्-ठक्
आम की डालियों पर
कोयल की कूक
मंद-मंद बहती हवा में
अठखेलियां करती पत्तियों को देखना
दुर्लभ ही हो जाएगा।

ऊबे हुए दिन
और ठहरी हुई रातों में
बतियाती हैं
मूक पेड़ों की टहनियां।

प्लेटफार्मों पर
भीड़ न खत्म होने वाला सिलसिला है
गाड़ी आ गई है प्लेटफार्म पर
भीड़ भाग रही है
बच्चे को लादे महिला
भाग रही है हांफती हुई
घूंघट में सकुचाई दुल्हन का हाथ थामे
भाग रहा है उसका शौहर
फंस गई हैं सवारियां दरवाजे पर
चढ़ने वाले
न चढ़ पा रहे हैं
उतरने वाले
न उतर पा रहे हैं
सिर के ऊपर नाच रहे हैं
बिस्तरबंद और ट्रंक
लथपथ हैं पसीने से
सभी के शरीर

चीख रहा है बच्चा
फंस गया है लोगों की टांगों के बीच
भीड़ चढ़ गई है
खिड़कियों को उलांघकर।
रेंगने लगी है गाड़ी
चीख रही हैं लटकी हुई सवारियां
अंदर वाले नहीं हो रहे हैं टस से मस
नहीं उतरना चाहती है भीड़
बीच रुकी किसी भी स्टेशन पर
उतरने से नहीं पहुंच पाएंगे
अपने-अपने गांव

प्यास लगी है, पर नहीं पिएंगे पानी
जानते हैं अगर एक बार निकलेंगे
नहीं घुस पाएंगे दोबारा गाड़ी में

रुक गई है गाड़ी किसी छोटे स्टेशन पर
धड़ाधड़ निकल रही है शताब्दी, राजधानी
देख रही भीड़ टुकुर-टुकुर
उन गाड़ियों को जाते हुए
कोस रही है भीड़

बैठा वृद्ध व्यक्ति देखकर यह सब
अवाक् और स्तब्ध है
आखिर कहां जाती है इतनी भीड़
क्यों जाती है इतनी भीड़ एक साथ
आखिर कब तक जाती रहेगी भीड़ इसी तरह।

एक्स-वाई-47, सरोजिनी नगर,
नई दिल्ली-110023

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

सदस्यता शुल्क फार्म

प्रिय महोदय,

कृपया गगनांचल पत्रिका की एक साल/तीन साल की सदस्यता प्रदान करें।

बिल भेजने का पता

.....
.....
.....
.....

पत्रिका भिजवाने का पता

.....
.....
.....
.....

विवरण	शुल्क	प्रतियों की सं.	रुपये/ US$
गगनांचल वर्ष.....	एक वर्ष ₹ 500/- (भारत) US$ 100 (विदेश) तीन वर्षीय ₹ 1200/- (भारत) US$ 250 (विदेश)		
कुल	छूट, पुस्तकालय 10 % पुस्तक विक्रेता 25 %		

मैं इसके साथ बैंक ड्राफ्ट सं..... दिनांक.....

रु./US$..... बैंक.....भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली के नाम भिजवा रहा/रही हूं।

कृपया इस फार्म को बैंक ड्राफ्ट के साथ
निम्नलिखित पते पर भिजवाएं :

वरिष्ठ कार्यक्रम निदेशक (हिंदी)
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्,
आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट,
नई दिल्ली-110002, भारत
फोन नं.- 011-23379309, 23379310

हस्ताक्षर और स्टैंप .....
नाम.....
पद.....
दिनांक.....

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

प्रकाशन एवं मल्टीमीडिया कृति

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् का एक महत्वाकांक्षी प्रकाशन कार्यक्रम है। परिषद् पांच भिन्न भाषाओं में, एक द्विमासिक - गगनांचल (हिंदी), दो त्रैमासिक - इंडियन होराइज़न्स (अंग्रेजी), तक़ाफत-उल-हिंद (अरबी) और दो अर्ध-वार्षिक - पेपेलेस डी ला इंडिया (स्पेनी) और रेन्कोत्र एवेक ला ऑद (फ्रांसीसी), पत्रिकाओं का प्रकाशन करती है।

इसके अतिरिक्त परिषद् ने कला, दर्शन, कूटनीति, भाषा एवं साहित्य सहित विभिन्न विषयों पर पुस्तकों का प्रकाशन किया है। सुप्रसिद्ध भारतीय राजनीतिज्ञों व दार्शनिकों जैसे महात्मा गांधी, मौलाना आजाद, नेहरू व टैगोर की रचनाएं परिषद् के प्रकाशन कार्यक्रम में गौरवशाली स्थान रखती हैं। प्रकाशन कार्यक्रम विशेष रूप से उन पुस्तकों पर केंद्रित है जो भारतीय संस्कृति, दर्शन व पौराणिक कथाओं, संगीत, नृत्य व नाट्यकला से जुड़े होते हैं। इनमें विदेशी भाषाओं जैसे फ्रांसीसी, स्पेनी, अरबी, रूसी व अंग्रेजी में अनुवाद भी शामिल हैं। परिषद् ने विश्व साहित्य के हिंदी, अंग्रेजी व अन्य भातीय भाषाओं में अनुवाद की भी व्यवस्था की है।

परिषद् ने भारतीय नृत्य व संगीत पर आधारित डीवीडी, वीसीडी एवं सीडी के निर्माण का कार्यक्रम भी आरंभ किया है। अपने इस अभिनव प्रयास में परिषद् ने ध्वन्यांकित संगीत के 100 वर्ष पूर्ण होने के अवसर पर दूरदर्शन के साथ मिल कर ऑडियो कैसेट एवं डिस्क की एक श्रृंखला का संयुक्त रूप से निर्माण किया है। भारत के पौराणिक बिंबों पर ऑडियो सीडी भी बनाए गए हैं।

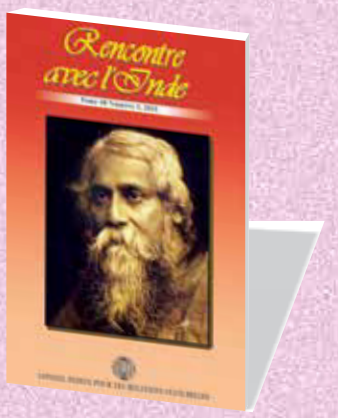

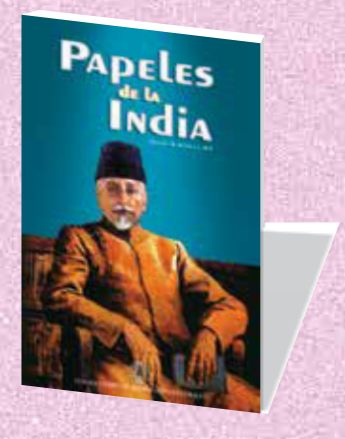

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् के प्रकाशन

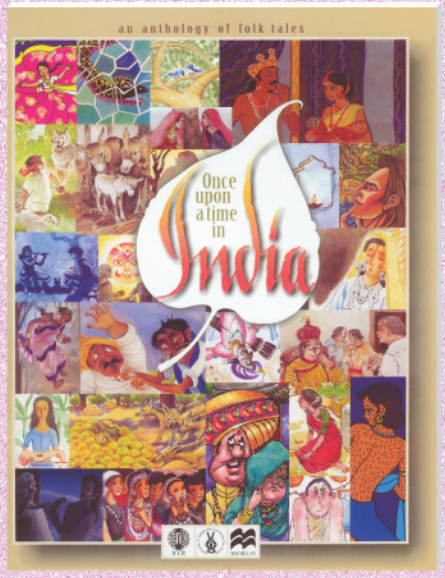

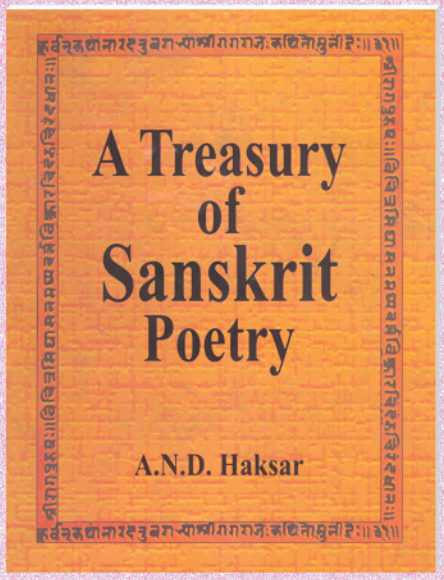

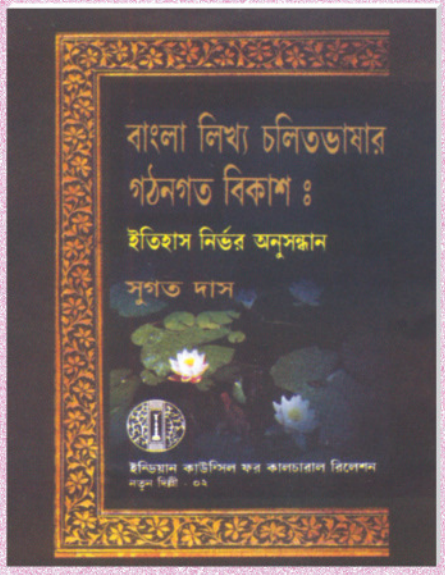

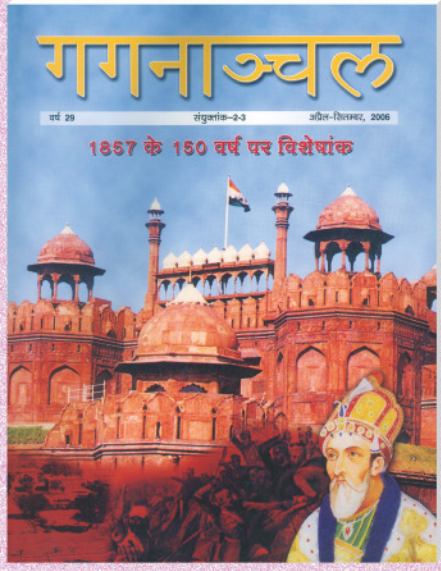

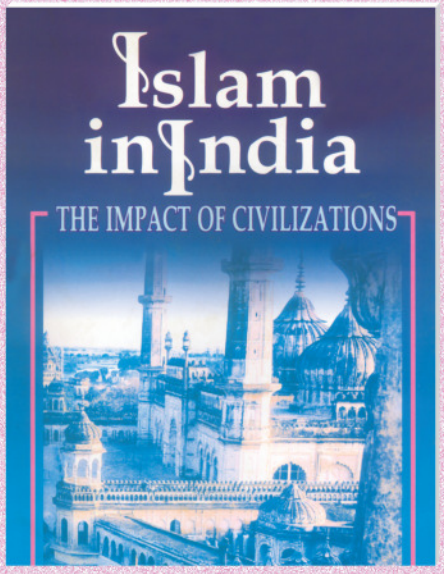

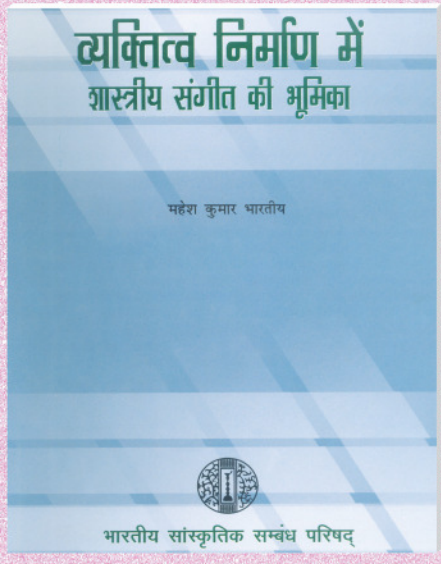

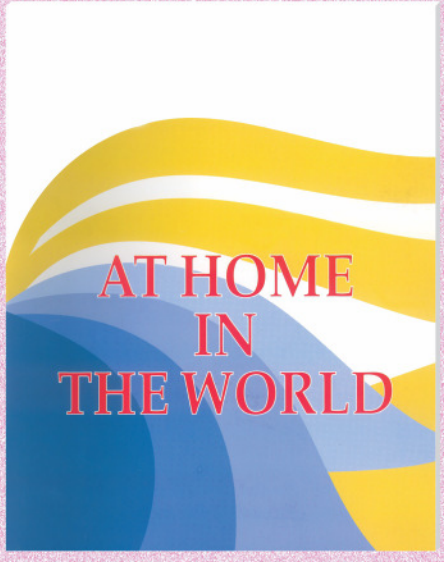

पंजीयन संख्या, आर. एन./32381/78
ISSN-0971-1430

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् के प्रकाशन

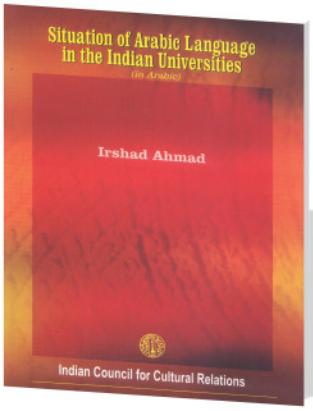

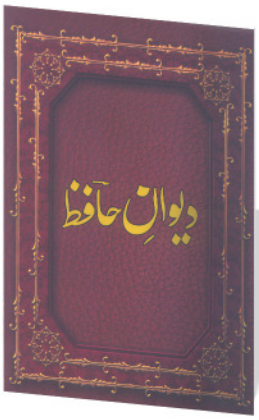

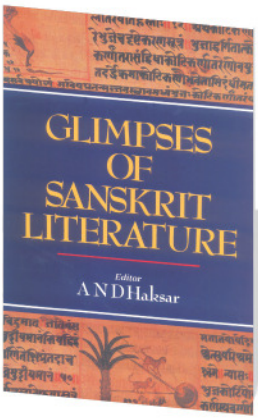

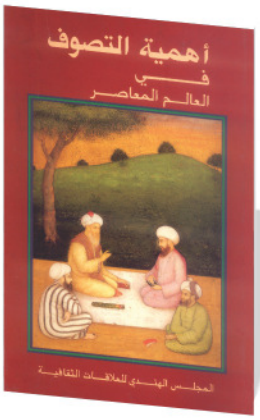

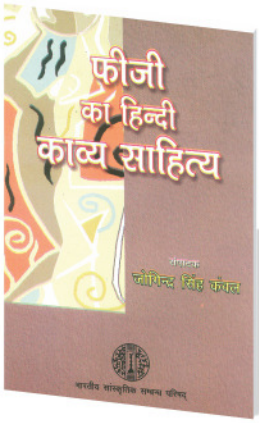

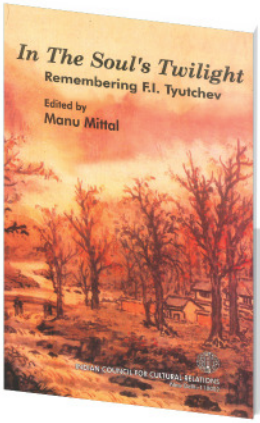

Indian Council for Cultural Relations
भारतीय सांस्कृतिक सम्बंध परिषद्

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्
फोन: 91-11-23379309, 23379310
फैक्स: 23378639, 23378647, 23378783
ई-मेल: pohindi.iccr@nic.in
वेबसाइट: www.iccr.gov.in